* श्री जिनेन्द्रायनमः *

जैनाचार्या श्री १००८ श्री मतीपार्वतीजी के

जीवनचारित्र का

प्रथम भाग।

अर्थात्

मनुष्यमात्र का जीवन सुधार अध्यात्मिक शिक्षाओं का भण्डार

और सत्यासत्य की परीक्षा के लिये कसौटीवत् है।

जिसको

ला० रल्लाराम साहब आनरेरीमैजिस्ट्रेट जालन्धर के

सुपुत्र ला० पन्नालाल ने सं० १९७० वि० में उर्दू में लिखा।

और

ला० निहालचन्द के सुपुत्र ला० दयालचन्द ने

उर्दू से हिन्दी में अनुवाद कराया।

और

रायकोट निवासी स्वर्गीय लाला रल्दुमल की

पुत्रवधु वैरागन बाई पार्वती ने निज द्रव्य से

सं० २४५० श्रीमहावीर, सं० १९८० वि० में,

पारस मैशीन प्रेस लाहौर में मैनेजर [illegible] चन्द [illegible] के

अधिकार से छपा कर प्रकाशित किया।

प्रथमवार १०००] सन् १९२३ ई० मूल्य)

प्रथम भाग सूची-पत्रम् ।

विषय — पृष्ठ

विषय पृष्ठ

विषय पृष्ठ

प्रस्तावना

* ॐ असि आउसाय नमः *

धन्य है यह भारत खण्ड की आर्य्य देश भूमि कि जिस में सहस्रों महा पुरुष हो चुके हैं जिनमें से कई एक महा पुरुषों के जीवन चरित्र भी विद्यमान हैं जिन से हमको बडी २ उच्च धार्मिक शिक्षाए मिलती हैं और उनसे आत्माका उद्धार होताहै इसलिये ऐसे समय में जब कि स्थान स्थान यत्रालय विद्यमानहैं जिनके प्रयोगसे प्रत्येक मतके शास्त्र व प्रत्येक मतके विद्वानोंके जीवन चरित्र प्रकाशित हो रहे हैं तो फिर हमको भी उचित है कि किसी धर्मात्मा भक्त जन अथवा सत्पुरुष व सत्यवती स्त्रियों का जीवन चरित्र पुस्तक रूपमें लिख कर प्रकाशित करें जिनका जीवन आत्मिक शिक्षाओं का लाभदायक हो जैसा किसी कविने कहा भी है—

जने तो जननी भक्त जन, या दाना या सूर ।
नहीं तो वध्या ही भली, काहे गवावे नूर ॥

इसका अर्थ यह है कि मातायदि सतानको जन्म दे तो ऐसी सतान हो कि या तो परमात्माकी भक्त हो या दातार हो या शूरवीर हो अन्यथा वध्या ही भली है, अपना यौवन भी क्यों गवावे क्योंकि ; मूर्ख सन्तान अपने पूर्वपुरुषों के नामको भी कलंकित कर देती है इस लिए आवश्यकहै कि प्रत्येक मनुष्य अपनी माताके जन्म देनेको सफल करे अर्थात् इन तीनो गुणो से युक्त हों परन्तु इन तीन गुणों वाला बनना कोई सहज बात नहीं है किन्तु अत्यन्त कठिन है इस लिए बुद्धिमान् मनुष्यों को चाहिए कि इन तीनों गुणों के साधन के लिये प्रयत्न करें । सब से पहला साधन यह है कि जो महा पुरुष इन तीनों गुणोंसे युक्त थे और हैं उन के जीवन चरित्रों को बडे विचार के साथ पढे और सोचें कि किस २ प्रकार इन महापुरुषों ने अपने जीवनको सुधाराहै किन्तु जीवनचरित्रका पढना एक साधारण विषय नहीं है प्रत्युत असरय लाभ पहुचाने वाला है । महापुरुषोंका

जीवन पाठकों के हृदय पर इतना प्रभाव डालता है कि उनकी प्रकृति स्वयमेव सद्गुणोंकी ओर प्रवृत्त हो जाती है और वह साधनाओं द्वारा शनैः २ महान् पद को प्राप्त करनेके योग्य हो सकते हैं क्योंकि जीवन चरित्र के पाठसे सांसारिक और धार्मिक दोनों प्रकार की शिक्षाएं मिलसकती हैं इस लिये महा पुरुषों का जीवनचरित्र पढ़ना अत्यन्त आवश्यक है।

बड़े हर्ष का विषय है कि इस समयमें भी जिसको कि कलि युग कहा जाता है अद्वितीय पण्डिता ज्ञानामृत वर्षिणी वाणी मती परम उपकारिका भक्त पद दातार पद और शूर पद की धारिका सत्यधर्म उपदेशिका बालब्रह्मचारिणी जैनाचार्य्या श्री १००८ महासती श्रीमती पार्वतीजी का जीवन इस भारत भूमिको पवित्र कर रहा है और भारत वर्षके नर नारियोंके हृदयोंको सत्य ज्ञान के प्रकाशसे मोक्षके योग्य बना रहा है, आपके भक्तिपदका वणन करना तो लेखिनी की शक्ति से बाहर है क्योंकि आपने बालक पनसे ही अपना जीवन परमेश्वर की भक्तिमें अर्पण किया हुआ है, और आपका दातार पदतो जगत् प्रसिद्ध है कि आप राजाओं से लेकर रंक जनो तक निःस्वार्थ और निरीह भावसे सत्य ज्ञान जैसे अमूल्य पदार्थका प्रतिदिन दान करती हैं और शौर्य्य भावका वर्णन करने में तो मेरी जिह्वा शक्ति से हीन है अर्थात् आप बाल्यावस्था से ही शीत, ताप, मान, अपमान आदि सहन रूप कठिन वृत्तिओं का साधन करती हुई संयम पालरही हैं और स्त्री हो कर भी पुरुष व स्त्रियोंकी सभा में निर्भय हो कर जिनेन्द्र भाषित सत्य ज्ञानका इस वीरतासे प्रकाश करतीहैं कि श्रोताजन अति आश्चर्यको प्राप्त हो कर धन्य२ करतेहैं और बहुतसे कवियोंने आपकी भजनोंमें भी प्रशंसा की है। एक कविके भजनका एक पद मैं पाठकोंकी भेंट करता हूं। पद " चौंकी पर बैठिओंको देखो जैसे सिंह संधूर सुनो " अर्थात् जब आप चौकी पर व्याख्यान देने को बैठती हैं तो आप सिंह संधूर अर्थात् शेर बबर की न्याई शोभा पाती हैं निस्सन्देह यह सत्य है इसमें तनक भी झूठ नहीं यदि इससे भी बढ़ कर उपमा दी जावे तो भी उचितहै। इस पंचम दुखम कालमें आपने सच्चे सुखको प्राप्त किया है और भव जीवों को सच्चा सुख प्राप्त कराने का उपाय

ऐसे सरल मनोहर प्रभावशाली मीठे वचनों में कथन करती हैं कि जिससे अनेक भद्र पुरुषों व स्त्रियोंने सांसारिक सकल क्लेशों को और विषय सुखों को छोड़ कर अपना सारा जीवन परमेश्वर की स्मृति में अर्पण कर दिया है और बहुत से पुरुष व स्त्रियोंने गृहस्थ में रह कर ही दया दानादि धर्म धारण किया है बहुत लोग कुमार्ग से हटकर सुमार्ग पर चलने लग गये हैं यहां तक कि कई कसाई और झटकई जैसे निर्दयी पुरुषों के हृदयभी पिघल गए अर्थात् बहुत लोगोंने हिंसा, मिथ्या, चोरी, शिकार, मद्य, मांस भक्षण आदि पापोंका परित्याग कर दिया है तथा आपने अपने पवित्र और उच्च विचारोंको कई पुस्तकों द्वारा भी प्रकाशित किया है जिनकी सूची आपको इसी पुस्तकमें मिलेगी, किं बहुना, आपके पवित्र उपदेशों से भारतीय नर नारियों को धर्म सम्बन्धी अनेक लाभ हुए हैं और हो रहे हैं और होएगे, यथा दृष्टान्त जैसे राजा महाराजा अपनी प्रजाकी रक्षा व सुख के कारण लाखों रुपया खर्च करकर के जिन्ह हिंसा, झूठ, चोरी, जूआ, जिनाकारी (व्यभिचार) आदिक पापों के करने से रोकते हैं। उन्ही पापों का आप अपने प्रभाव शाली उपदेशों और वैराग्य भरे शब्दों से ऐसा खण्डन करती हैं कि सैकड़ों क्या सहस्रों पुरुषों ने सर्वथा इन पापों का त्याग कर दिया है, इस के अनन्तर आपके उपदेशों में एक यह भी बड़ी महिमा है कि जिस पुरुष ने पूर्वोक्त कर्मों का त्याग कर दिया है, फिर उन कर्मों का करना तो एक ओर रहा प्रत्युत मन से भी उन कर्मों की घृणा करने लगजाता है, (किन्तु) राजाओं के प्रबन्ध। (इन्तिजामों) से डरते हुए तो लोग प्रकट पाप नहीं कर सकते, परन्तु प्रच्छन्न (पोशीदा) पापों से नहीं भी हटते, और जो सत्य शास्त्रों के सुनने वाले हैं अर्थात् सच्चे गुरु जोधन और कामिनी के त्यागी हैं (आलम अमल हैं), इन के समझाये हुए अर्थात् परमेश्वर और परलोक को मानते हुए प्रकट तो कहां, प्रच्छन्न (छिपकर) भी पाप नहीं करते, इत्यर्थं धन्य है यह आर्यदेश, और धन्य है आपका नगर, कुल, वंश जिस में आप जैसी श्रेष्ठ पुत्री उत्पन्न हुई ॥

लाला रलाराम जी आनरेरीमैजिस्ट्रेट जालन्धर नगर के सुपुत्र लाला पन्नालालजी ने आपके उपरोक्त गुणों को देखकर

विचार किया कि ऐसी महान पवित्र आत्मा का पूर्णतया जीवन चरित्र अवश्य होना चाहिये, जिससे कि बहुत मनुष्यों का उद्धार हो सुतरां इन्होंने जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री महासती पार्वती जी महाराज की शिष्या श्री सती श्रीमती भगवान देवी जी तस्याः शिष्या श्री सती श्रीमती द्रौपदीजी ने जो सं० १९६८ वि० तक का आपका जीवन चरित्र लिखा था और रावलपिण्डी के भाइयों ने सं० १९६६ में छपाया था, उसको पढ़ा, वह अत्यन्त सूक्ष्म (छोटा) था इसलिये लाला पन्नालाल जी ने उसको पूरा करने के लिये फिर बड़े प्रयत्न से उर्दू में लिखा जिसमें श्री महासती पार्वतीजी महाराज के जन्म सं० १९११ वि० से लगा सं० १९७० वि० तक का वर्णन है, इस पुस्तक में श्री महासती जी की बाल्यावस्था, विद्याभ्यास, संयम वृत्ति का धारण करना अर्थात् अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्म-[च]र्य्य, निर्ममत्व, इन पांच महाव्रतों का आजीवन धारण करना और [जी]न की फकीरी की कठिन साधनाओं को सहर्ष सहन करना और [दे]श देश, नगर नगर, गाओं गाओं में जैन वृत्ति के अनुसार पैदल [च]ल कर सत्य उपदेश का पवित्र दान करना जिससे अच्छे अच्छे [उ]च्च कुलों की सुशीला महिलाओं का योग वृत्ति का धारण करना, और भिन्नमतों के पुरुषों के प्रश्न और महासती श्री पार्वती जी महाराज के यथार्थ उत्तर, इत्यादिक वर्णन संक्षेप से लिखे गये हैं। इसके अनन्तर जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री महासती पार्वती जी महाराजकी रची हुई कई उपयोगी पुस्तकें भी विद्यमान हैं यथा—

(१) "ज्ञानदीपिका" जिसके प्रथम भागमें, संवेगी श्री आत्मारामजी कृतजैन तत्वादर्श ग्रन्थ में से कई एक मिथ्यावादों के खण्डन हैं। द्वितीय भाग में संक्षेप मात्र देव गुरु धर्म के लक्षण और साधु धर्म व गृहस्थ धर्म के साधन की विधि तथा सामायिक का पाठ और सामायिक की विधि, और स्त्री व पुरुषों के लिये यत्न विवेक के विषय में हित शिक्षायें भी लिखी हैं, प्रथमा वृत्ति सं० १९४८ वि० में छपा, कीमत ॥।)

(२) "जैन धर्मके १० दस नियम" पुस्तकाकार जिसमें संक्षेप से जैन धर्म के मन्तव्य और कर्तव्य दिखलाये हैं जो बालकों को कण्ठस्थ कराने के योग्य हैं प्रथम वार सं० १९४९ वि० में छपा।

(३) "सम्यक्त सूर्य्योदय जैन" जिसमें ईश्वर को कर्ता मानने में ईश्वर मे चार दोष सिद्ध करके दिखलाये गये हैं और प्रारब्ध कर्म में कर्म कर्ता और क्रियमाण कर्म में जीव कर्ता है ऐसा अनेक प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया गया है और साथ में पदार्थ ज्ञान (सायंस) अर्थात् जड चेतन का विचार (फिलास्फी) (सम्यक्त का मूल तत्व का विचार) भी कुछ लिखा है और नास्तिकत्व आस्तिकत्व का खण्डन मण्डन भी लिखा है स० १६६१ वि० में छपा, कीमत १) रुपया।

(४) "सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन,' जिसमें जैन सूत्रानुसार ४ निक्षेपों का स्वरूप दिखला कर दृष्टान्त सहित जड मूर्ति पूजा का खण्डन और दया सत्यादि धर्म का मण्डन किया है, स० १६६१ वि० में छपा कीमत ।॥) आने॥

(५) "गोरक्षा उपदेश" जिसमें अनुकम्पा का स्वरूप भली भान्ति दिखलाया है, प्रथम वार स० १९६७ वि० में छपा।

(६) "कुव्यसन निषेध" जिसमें जूआआदि सात कुव्यसनों का भिन्न २ स्वरूप और उन दुष्कर्मों के दुष्फल दिखलाये हैं यह पुस्तक बालकों तथा नव युवकों को अवश्य पढने के योग्य है जिस से वे अपने अमोलक जन्म को पवित्र बनाये रखें सं० १६७२ वि० में छपा।

(७) "मुक्ति निर्णय प्रकाश" जिसमें जैन मतानुसार मुक्ति का स्वरूप और मुक्ति की साधना का सक्षेपत. यथार्थ दृष्टांत सहित वर्णन किया है स० १९७३ वि० में छपा।

(८) "श्री नेमिनाथ राजीमती जीवन चरित्र" जिसमें २२ वें जैन धर्मावतार श्री भद्भगवान् नेमिनाथ और श्रीमती राजीमती जी के दया, वैराग्य और ब्रह्मचर्य्य आदि परमगुण अतिमनोहर शब्दों में लिखकर दिखलाये हैं, स० १६७५ वि० में छपा।

(६) "ब्रह्मचर्य्य विधि" जिसमें ब्रह्मचर्य्य और ब्रह्मर्य्य की साधना का स्वरूप दृष्टान्त सहित, स्त्री व पुरुषों के हृदय में दर्पण के समान झलकाया है इस ग्रन्थ के देखने से स्त्री व पुरुषों को विशेष करके धर्मात्माओं को भली भांति ब्रह्मर्य्य परम धर्म के पालने की रुचि होगी, स० १६७६ वि० में छपा।

(१०) "वैराग्य प्रकाश" जिसमें वास्तविक राग और वास्तविक वैराग्य का स्वरूप दृष्टान्त सहित दिखलाया है. प्रथमबार सं० १९६९ वि० में उर्दू में छपा, फिर श्री महासती जी ने हिन्दी में अनुवाद किया जिस में अनुभव ज्ञान व वास्तविक वैराग्य का स्वरूप दृष्टान्त सहित कथनोपकथन दिखलाया है, सं० १९७८ वि० में छपा कीमत ।)

मिलने का पता—

निहालचंद दयालचंद जैनी,

भैरों बाजार जालंधर नगर (पंजाब) ।

और इस पुस्तक में आपको जैनाचार्य्या महासती श्री पार्वतीजी महाराजके आत्मचेतन के संबंधमें आध्यात्मिक शिक्षायें और दया, क्षमा, सत्यादि धर्म के विषय में अनेक पवित्र हितोपदेश भी मिलेंगे जिनके पढ़ने और सुनने से पाषाण हृदय मनुष्य भी एक बार तो निकृष्ट कर्मों से अवश्य ही घृणा करेंगे और श्रेष्ठ कर्मों की ओर (तर्फ) झुकेंगे, इस लिये सब सज्जन पुरुष व स्त्रियों की सेवा में मेरी सविनय प्रार्थना है कि इस पुस्तक को स्वयं पढ़ें और अपने सुहृदय सखा (मित्र) व सखियों (साथनों) को पढ़ने की प्रेरणा करें जिस से वे सद्गुणों के पात्र बन कर उभय लोक के सुख प्राप्त करने का लाभ उठावें ॥

आपका—**मिलखीशाह पन्नालाल,**

स्यालकोट नगर निवासी ।

इस पुस्तक को पन्नालाल सुपुत्र रलाराम साहब आनरेरी मैजिस्ट्रेट जालंधर नगर निवासी ने सं० १९७० वि० में उर्दू में लिखा

और

पन्नालाल सुपुत्र मिलखीशाह स्यालकोट नगर निवासी ने सं० १९७१ में उर्दू में छपा कर प्रकट किया।

पुनः बहुत पुरुष व महिलाओं (स्त्रिओं) ने अपनी इच्छा प्रकट

की कि यदि यह पुस्तक हिन्दी मे लिखा कर छपवाया जाये तो विशेपतया स्त्रिओं के लिये बहुत उपयोगी होगा, क्योंकि स्त्रियें उर्दू भाषा का पढना कम जानती हैं और इसके अतिरिक्त यह भी सार्थक है कि उर्दू भाषा तो प्राय पञ्जाब प्रान्त में ही प्रचलित है परन्तु मारवाड, मेवाड, मालवा, दक्षिण आदि प्रान्तों में बहुत कम है किन्तु हिन्दी के पठिन अधिकतर हैं इस लिये लाला दयालचन्द्र ने इस पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद कराया और छपाने को तैयार थे इतनेमें बाई वैरागन जो कि, रियासत पटिआला निवासी लाला रामशरण जी ओसवाल (भावडा) की पुत्री, लाला रोशनलाल की भगिनी (वहन) और जिला लुद्दिहाना नगर रायकोट निवासी ला० रलदूमल्ल की पुत्रवधू बाल विधवा बाई पार्वती श्रमणो पासिका जो चिरकाल से जैन दीक्षा धारण करने के भाव रखती थी अस्तु जैनाचार्य्या श्री १००८ श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज की शिष्या श्री १०८ श्री राजमतीजी महाराज की सेवा में स० १९७९ वि० मे नगर जालधर में दीक्षा धारण करने के लिये उपस्थित हुई और ला० दयालचन्द्र बुकसैलर (पुस्तका वाले) से कहा कि आप जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री महासती पार्वती जी महाराज का जीवन चरित्र हिन्दी में छपवादें तो बडा उपकार होगा और उसमें जितना द्रव्य व्यय (खर्च होगा वह सब मैं अपने पाससे देना स्वीकार करती हू, तब ला० दयालचन्द जीने बडे उत्साह से धर्मोपकार जान कर वि० स० १९७९ में श्री मङ्गवान महावीर २४४९ मे छपाना आरम्भ कर दिया, अस्तु यह सब उपकार तो वैरागन बाई पार्वती जी का है कि जिन्हों ने १००० (एक सहस्र) रुपया इस पुस्तक के छपाने को दान किया और नगर जालधर मे उदार चित से अपने दीक्षा महोत्सव पर तथा दानमानादि में ४ हजार रुपया खर्च करके स १९७९ के मृगशिर शुदी १५ सोमवार शुभ मुहूर्त में सब सासारिक सुख धन पदार्थ आदिकों को त्याग कर जैनयोग वृत्ति (दीक्षा) धारण की। परन्तु इस पुस्तक का अल्पसा मूल्य इस लिये रख दिया गया है कि यदि विना मूल्य यह पुस्तक बाटा जायगा तो लेने वाले शायद पठन करे अथवा न करें परन्तु यदि मूल्य दे कर लेंगे तो ख्याल रहेगा कि हमने एक पुस्तक खरीदा है एक बार पढ कर तो देखलें कि इसमें क्या कथनहै परन्तु इसके मूल्य का जो द्रव्य प्राप्त

होगा उससे जैनाचार्य्या महासती श्री १००८ श्रीमती पार्वती जी महाराज का जीवन चरित्र ही तथा इन्हीं की रची हुई पुस्तकें छपवाई जाया करेंगी और उनमें वैरागन बाई पार्वती जी का नाम भी लिखा जाया करेगा इस लिये मैं वैरागन बाई पार्वती जी का हार्दिक (दिली) धन्यवाद करता हूं ।

शुभं भूयात्

श्रीसंघका हितेच्छु—

१ ज्येष्ठ १९८०

लाला दयालचन्द्र का सुपुत्र
रत्नचन्द्र जैनी ।

श्रीवीतरागायनमः

जैनाचार्य्याश्रीमतीपार्वतीजीका

जीवनचरित्र

भारत वर्ष के संयुक्त प्रान्त (आगरा व अवध) में आगरा के निकट पुनीत खेड़ा भोड़पुरी नामका एक गांव वसता है. यहां चौहान राजपूत अधिकतर वसते हैं. इस कारण इस गांवको चौहानो का गांव भी कहते हैं.

महासती पार्वतीजी का जन्म इसी गांवमे हुआ. इनके पिता वलदेवसिह जी एक प्रतिष्ठित ज़मींदार थे. इनकी माता का नाम धनवन्ती जी था; जो कि साक्षात् पतिव्रतधर्म की मूर्त्ति थी.

महासतीजी के माता पिता सौभाग्य; सदा चार और विद्वान भी थे वहां के निवासी उनके गुणो पर प्रसन्न होकर उनकी प्रशंसा किया करते थे. कि यह प्रीति और प्रेमकी जीवित व जाग्रत युगल छवि हे. इसी कारण इनका घर सदेव आनन्द और उल्लास से भरपूर रहता था. क्यो ना

रहे जिस घर में स्त्री और पुरुष दोनों प्रेमके रंगमें रचे हों; वहां बारहों मास आनन्द बसता है.

यथा श्रीमान् जीवानन्द भट्टाचार्य्य विद्यासागरजी ने अपने चाणक्यशतक कलकत्ता सरस्वती यन्त्रे मुद्रित ईस्वी १८८६ पृष्टि २५ वीं श्लोक १०वें में लिखा है:—

सुभिक्षं कृषके नित्यं, नित्यं सुख मरोगिणि.
भार्य्या भर्तुः प्रिया यस्य, तस्य नित्योत्सवं गृहम्.

अर्थः—समय पर वर्षा होजाने से कृषिकारों को सुख होता है. निरोगी मनुष्य को सदैव सुख है. तथा जिसके घरमें पति पत्नी का परस्पर प्रीति-भाव है; उस घर में सदैव आनन्द व मंगल है.

इसके अतिरिक्त श्रीमहासतीपार्वतीजीका इस गृह में जन्म होना था; फिर क्यों न आनन्द होता.

दोहा—ज्यों वृष्टि के आदि में, घटा होत सुखकार.
उदय चन्द्र की आदि तिथि, शुक्ला नाम विचार.

अर्थात्—जैसे वृष्टि होने से कुछ समय पहले काली घटा प्यासे और सूखे नेत्र तथा हृदयों को सुख देती है और जिस प्रकार चन्द्रमा द्वितीया को दृष्टि गोचर होता है. परन्तु प्रातिपदा (एकम्) भी शुक्लापक्षकी ही पहली तिथि गिनी जाती है. उसी

प्रकार महा सतीजीके जन्म से पूर्व ही यह घर सुख और आनन्द से परिपूर्ण था.

दोहा.

तारीकी जाती रही पहले ही यह मान.
सूर्य्य अभी निकला नहीं रौशन हुआ जहान.

श्रीमहासतीजी का जन्म और नाम संस्कार

श्री महासती पार्वतीजी महाराजका जन्म श्रीमती धनवन्तीजी की कुक्षि से सं० १९११ विक्रमी मे हुआ. महासती के जन्म होने पर उनके माता पिता और सम्बन्धियों को बड़ी प्रसन्नता हुई आपके पिताजी ने आपके जन्म के कुछ दिन पश्चात् एक योग्य ज्योतिषी को पूछा कि इस कन्या का नाम क्या रखना चाहिये.

ज्योतिषी ने विचार करके उत्तर दिया कि इस कन्याके जन्म ग्रह के अनुसार तथा लक्षणों से ऐसा जान पड़ता है कि यह बड़ी गुणवती होगी मेरी सम्मति में इसका नाम (पार्वती) रखना चाहिये. यह सुन कर आपके माता पिता बड़े प्रसन्न हुए और इसी नाम से कन्या का नामकरण संस्कार

कर दिया जो कि सूर्य्य की न्याई आज संसार में प्रकाशित हो रहा है.

महासती जी की एक ज्येष्ठा भगिनी भी थी जिनका नाम बीबी प्रेमकोरजी था.

तथा श्रीमान् मुरलीधरसिंह और श्रीमान् खुशीरामसिंह दो भाई भी थे.

महा सती जी अपने माता पिता की इन सब से अधिक प्रेम पात्रा थीं. आपके माता पिता आपकी पालना और रक्षामें तन्मय रहते थे और आपकी आयु शुक्लपक्ष की चन्द्रकला के समान नित्य नई बढ़ने लगी. पांच छे वर्ष की आयु में जब कि आप पिता जीके साथ धर्म्मशाला. गुरुद्वारे बाज़ार में जाने के लिये बाहर निकलतीं तो लोग आपकी भोली भाली व शान्त माधुरी छविको देख कर पूछते थे कि यह कन्या किसकी है. तो आपके पिता जी उत्तर देते कि ईश्वर की कृपा से मेरी है. यदि कोई पण्डित देखता तो ऐसा कहता कि इस कन्या के शुभ लक्षणों से जान पड़ता है कि यह बड़ी विदुषी पण्डिता होकर अपने वंश और माता पिता के नामको महाश्रेष्ठ कर्म्मों से विख्यात करेगी.

श्रीमतीजी की आयु जब लगभग सात वर्ष की होगई तो उन दिनों में आपके पिताजी का किसी सहवासी के साथ भूमि के विषय में झगड़ा होगया; और विवाद बढ़ते २ अदालत तक पहुंच गया. आगरे में आपके पिताजी का एक मित्र था: उसका नाम भी बलदेवसिंह था; जो जाति का अग्रवाल दिगम्बर जैन मत का अनुयायी था; जब आपके पिताजी ने अभियोग (मुक़द्दमा) का समग्र वृत्तान्त अपने मित्र बलदेवसिंह से कहा. तो वह बोले कि मैं आपकोएकसदुपायबतलाताहूं. आजकलयहां पर श्री श्री श्रीस्वामीरत्नचन्दजी महाराज श्वेताम्बरी जैनमुनिके शिष्य श्रीस्वामी कँवरसेनजी महाराज पधारे हुए है. वह बड़े विद्वान् और पण्डितराज हैं. अपने और अन्य मतो के शास्त्रों मे पूर्णतया पारंगत हैं; तथा ज्योतिप शास्त्र में भी बडे कुशल हैं. यद्यपि मे दिगम्बरी हूं परन्तु मैं इन महात्माओ का भी सेवक हूं यदि आप उनके दर्शन करें और वह महात्मा आपके पुण्योदय से कदाचित् कुछ कहें तो सम्भव हैकिआपका मनोरथ सिद्ध हो जाये. आपके पिताजी इस बात पर अतीव प्रसन्न हुए और उसके साथ स्वामीजी महाराज के दर्शनो के लिये उनके स्थान पर गए.

स्वामीजी महाराज के मस्तक पर एक असाधारण शान्त तेज था. आपके पिताजी ने जाते ही उनके चरणों में यथाविधि प्रणाम किया और बड़ी श्रद्धा से प्रार्थना की कि महाराज ! मैं एक बड़े संकट में पड़ा हूं. स्वामीजी ने सहज भाव से कहा कि भाई चिन्ता न कर. संकट भी दो तीन दिन में कट जाने वाला है. यह सुनकर आपके पिताजी को पूर्णरूप से सन्तोष हुआ और प्रणाम करके अपने घर चले आये.

दैव वशात् तीन ही दिन में अभियोग का निर्णय होगया; और विजय लक्ष्मी आपके पिता जी को प्राप्त हुई (मुक़दमा फते होगया) आपके पिताजी को उसी समय निश्चय होगया कि जैन मुनियों का वचन सत्य और निर्भ्रान्त होता है.

यह पहली घटना थी; जिसने आपके पिता जी के हृदय में जैन धर्म का बीज बोदिया. इसके पश्चात् वह समय मिलने पर स्वामीजी महाराज के दर्शनों के लिये जाते रहे.

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा.

एक दिन श्रीमती महासती पार्वतीजी महाराज के पिताजी आपको भी आगरे में अपने साथ ले गए और स्वामी कँवरसेनजी महाराज के दर्शनार्थ गए. स्वामीजी ने उनके साथ आपको देखकर पूछा कि यह कन्या किसकी है. आपके पिताजी ने उत्तर दिया कि आपकी कृपा से मेरी है इस पर स्वामीजी महाराज ने श्रीमतीजी के हाथकी रेखाओं को दूर से ध्यान पूर्वक देखा और विचार करके कहा कि इस कन्या में कई लक्षण तो ऐसे पायेजाते हैं जो शास्त्रों में पुण्यवान् प्राणियों के अर्थात् राजा महाराजाओं के अथवा योगियों के प्रतिपादन किये है. इसलिये ऐसा प्रतीत होता है कि यह कन्या पुण्यवती है. या तो यह कन्या राज्य करेगी अथवा योग वृत्ति मे पूर्ण होगी. फिर सोचकर बतलाया कि स्त्री को राज्य मिलना तो कठिन सी बात है परन्तु (योगवृत्ति) होजाय तो अच्छा है जिससे परलोक भी सुधर जाता है. यदि यह कन्या योगवृत्ति को धारण करेगी तो यम नियम को पूर्णतया पालन करेगी. इसलिये यह कन्या बड़ी गुणवती विदुषी और पण्डिता होगी. और इसकी

सेवा भक्ति में बहुत लोक पुरुष व स्त्रियें सदैव उपस्थित रहा करेंगे. आपके पिताजी स्वामीजी महाराज के इन अमृतोपम मधुर वचनों से बड़े प्रसन्न हुए और बोले कि स्वामीजी महाराज जो कुछ आपने कहा है. सत्य है परन्तु अपनी सन्तान को साधु बनाना यह अत्यन्त कठिन है स्वामीजी बोले अच्छा इस कन्या को विद्याभ्यास तो कराओ फिर जैसा होगा देखा जायगाः इस पर श्रीमतीजी महाराज के पिताजी ने कहा. आपका कथन सत्य है परन्तु पढ़ावें किससे. स्वामीजी बोले हम पढ़ा सकते हैं. बलदेवसिंहजी ने कहा बहुत अच्छा इस की माता के साथ विचार करके देखा जायेगा.

आपके पिताजी श्रीस्वामीजी महाराज को प्रणाम करके चले आये. और उपरोक्त सब वृत्तान्त श्रीमती धनवन्तीजी को कह सुनाया. इस विषय पर आपके माता पितामें कुछ समय तक विचार होता रहा और अन्त में यह निश्चित हुआ कि राज्य हो वा त्याग हो यह सब प्रारब्ध के हाथ में है परन्तु विद्या का पढ़ाना तो प्रत्येक अवस्था में आवश्यक है. इसलिये उन्होंने अपने मन में यह दृढ़ संकल्प कर लिया कि जिस प्रकार भी होसके इस

कन्या को विद्या पढ़ाने का प्रयत्न किया जाये.

सुतरां एक शुभ मुहूर्त्त पर आपको श्रीस्वामी जी महाराज के चरणों में लेगये. उस समय आप की आयु सात वर्षके लगभग थी. बलदेव सिंहजी की प्रार्थना पर स्वामीजी महाराजने आपको पढ़ाना स्वीकार तो करलिया; परन्तु यह कहा; कि हम जैन मुनि हे. दिनके समय तो इस कन्याको पढ़ा सकेंगे; परन्तु रात्रिके समय स्त्री मात्र हमारे स्थान पर नही रह सकती. और यह और भी कठिन है; कि इतनी छोटी बालिका अपने गाओसे जो यहांसे चार कोस दूर है प्रति दिन आया जाया करे. इस लिये यदि आपकी इच्छा हो तो यह कन्या रात्रिके समय श्री मती हीरांदेवीजीके पास जो हमारे ही सम्प्रदायकी आर्य्या हें; रहा करे और वह आर्य्या स्वयं भी बड़ी विदुषी हे श्रीमान् बलदेवसिंहजी बोले: कि यह कन्या तो हमे प्राणोसे भी प्यारी है इसको यहां कैसे छोड़ जायें हां यह होसकता हे कि मैं जो यहां कोतवाली मे नौकर हूं; कार्य्यवशात् प्रति दिन इधर आता हूं इसे भी साथ ले आया करूंगा स्वामीजीने कहा; मैं पहले भी कह चुका हूं; कि कन्या छोटी हे इसका प्रति दिन घरसे आना जाना कठिन हे परन्तु यहां

आपके मित्र बलदेवसिंहजी का भी तो घर है; क्यों न आप इसको उसके हां रख देवें. आपके पिताजी ने स्वामीजी की इस बात को स्वीकार करलिया. और आपका अपने मित्र बलदेवसिंहजीके हां रहने का प्रबन्ध करदिया.

पाठक यह तो भली भान्ति जान गए होंगे कि जैन मुनि श्रीस्वामी कँवरसेनजी महाराज जैन शास्त्र तथा अन्य धर्मोंके शास्त्रोंमें एक अद्वितीय पण्डित थे उनकी पाठक विधिने श्रीसतीजीके हृदय की विद्वत्ताके संस्कारों को थोड़े ही दिनोंमें जागृत करदिया जब आपने स्वामीजी महाराजसे सं०१९१८ वि०में पढ़ना आरम्भ किया, तो आप साधारण पढ़ना लिखना तो थोड़े ही समयमें सीख गईं क्योंकि आप की बुद्धि अत्यन्त तीक्ष्ण और निर्मल थी जो संथा आप उनसे लेती थीं, उसे तत्काल कण्ठस्थ कर लेतीं थीं. जिन श्लोकों का अर्थ आप स्वामीजीसे सुनतीं थीं, उन श्लोकों का अन्वयार्थ अपने आप करके स्वामी जीको सुना देती थीं जिन्हें सुनकर स्वामीजी अत्यन्त प्रसन्न होते थे. आपकी अवस्था के साथ साथ आप की बुद्धि, विद्याभ्यास और विद्याप्रेम भी शनैः २ बढ़ता गया यहां तक कि आपके पिताजी जब कभी

आपको घर जानेके लिये कहते तो आप यह उत्तर देती कि घर जानेसे मेरे पढ़नेमें हानि होगी. इस लिये मेरा यहां रहना ही उचित है. एक दिन आप के पिताजीने यह भी कहा. कि बेटी ! बस इतना ही पढ़ा बहुत है. चिट्ठी पत्री का पढ़ना तो सीख चुकी हो. और पुस्तकें भी पढ़ सकती हो तथा भक्तामर आदि का पाठ भी कर लेती हो अब और अधिक पढ़कर क्या करोगी, आपके पिताजीके यह वचन आपको ऐसे दुखदाई प्रतीत हुए जैसे कोई किसी प्यासे को अमृतके पीनेसे रोकता है. इधर स्वामी कँवरसेनजी महाराजने भी जो आपका विद्या में इतना प्रेम देखकर प्रसन्न हो रहे थे और जिन को विश्वास था. कि श्रीमती पार्वती जी विद्या पढ़नेके योग्य हैं. और इनको विद्या का दान देना, मानो एक कल्पवृक्ष को सींचना है जब आप बड़ी होंगी. निस्सन्देह आप एक कल्पवृक्षके समान गुणों की देने वाली होंगी अर्थात् स्वयं धर्मकी मूर्ति बनकर और अनेक प्राणियों के हृदयों में धर्म का भाव उत्पन्न करेंगी इस विचारसे आपके पिताजी को बोले "अरे बलदेवसिंह ! अभी इस बालिका को तू यहीं रहने दे". स्वामीजीके इन वचनोंको आपके पिताजी अस्वीकार

न करसके और बोले "बहुत अच्छा महाराज" स्वामी जीने बड़ी प्रसन्नतासे इनको विद्या पढ़ाई इस प्रकार छे वर्षके निरन्तर विद्याभ्यासने आपको एक प्रवीण पण्डिता बना दिया. जिन ग्रन्थोंको आपने स्वामी जी महाराजसे इस अवसरमें पढ़े उनके नाम यह हैं.

(१) नव तत्त्व पदार्थ. (२) प्रतिक्रमणा सूत्र. (३) चौबीस डण्डकका विचार. (४) अमरकोष. (५) दसवें कालिक सूत्र. (६) उत्तराध्ययन सूत्र. (७) वीर स्तुति. (८) नमी प्रवर्ज्या. इत्यादि.

——:·:——

वैराग्य उत्पत्ति.

श्रीमहासतीजीके हृदयमें शास्त्रोंके पढ़ते २ स्वयमेव वैराग्यकी उत्पत्ति हुई अर्थात् आपके मनमें यह भाव उत्पन्न हुआ; कि ऐसे उपाय सोचने चाहियें. जिनसे चौरासी लाख योनियों से मुक्ति मिल सके. सांसारिक सुख अस्थिर होनेके कारण असत्य हैं. नित्य सुख उसी आनन्दका नाम है, जो इस आवागमन से निकल कर मोक्ष पदमें प्राप्त होता है. पाठक! इतनी छोटी आयु में ऐसे महान् और उच्च विचारों का विकास होना, एक आश्चर्य्यजनक और कठिनतर बात है परन्तु घट में (कुम्भ) में जैसी वस्तु

रखो उसमें वैसीही गन्धि होजाती है इस लिये श्रीमती पार्वतीजी महाराजने स्वयमेव मिथ्या सांसारिक सुखोंकी इच्छा न करके; अपने माता पिता से योग वृत्तिके धारण करनेकी आज्ञा मांगी क्योंकि जैन धर्म्म के नियमो के अनुकूल वैरागी को अपने माता पिता की आज्ञा लेना आवश्यक है. आपके माता पिता आपके मुखसे इन वचनोको सुनते ही अधीर होगये किन्तु कौन चाहता है कि उसके हृदयका टुकड़ा जो इतने प्रेम और परिश्रम से पाला गया हो, साधु हो जावे और सांसारिक सुखों से वञ्चित रह जावे तथा उन कठिनाइयों को सहे जिनको कि साधुही समझसकते और सहसकते हे तथापि आपके पिताजी बोले "पुत्रि! अभी तेरी आयु छोटी हे जैन नियमानुसार संयम वृत्तिके साधन वहुत कठिनहे,तृ इन कष्टों को कैसे सहन कर सकेगी और तूने साधु वनकर लेना ही क्या है खाओ, पीओ, खेलो अच्छा घर देखकर तेरा विवाह कर दिया जायेगा वस सावधान रहे! फिर कभी साधु वनने का नाम न लेना.

परन्तु श्रीमती पार्वतीजी महाराजका हृदय वैराग्य की तरल तरंगों से तरंगित होरहा था इसलिये हाथ जोडकर वोलीं 'पिताजी! सांसारिक सुख तो अज्ञा-

नियों को अच्छे लगते हैं ज्ञानियों के लिये तो विष सम्पृक्त अर्थात् विष मिले अन्नके समान त्याग करने के योग्य हैं आपके मातापिता इस उत्तर से आश्चर्य और दुःख में भरकर अवाक् (चुप) रह गये फिर बोले 'पुत्रि! यह तू सत्य कहती है परन्तु साधुत्व भी तो अति कठिन है, अर्थात् कौड़ी पैसा पास न रखना; संसार के भोगों से तटस्थ रहना भूख लगे तो गृहस्थियों के घर से निर्दोष भिक्षा लाकर खाना यह काम ऐसे हैं जैसे जीते जी मर जाना है और इस छोटी अवस्था में तेरे लिये तो महा असह्य हैं इस लिये हम तुझे कभी आज्ञा न देंगे क्या हमनें तुझे इतने दुखों से इसी लिये पाला है, कि तू हमें छोड़ कर साध्वी बन जाये ?

श्रीमती जी महाराजने अपने माता पिता के इन स्नेह युक्त वचनों को सुन कर. नम्रता पूर्वक कहा 'पिता जी ! देह धर्मके साधन, खान पान. भोग विलास तो हम प्रत्येक जन्ममें अनादि कालसे ही करते आये हैं. ऐसे सुखों का ज्ञान तो पशुओं तक को भी प्राप्त है. परन्तु ज्ञान वैराग्य संयम आदि आत्म धर्मके साधन तो मनुष्य देह की प्राप्ति पर आप जैसे आर्य्य कुल में ही उत्पन्न होकर किये

जा सकते हैं अर्थात् वास्तविक सुखकी उपलब्धि केवल धर्म कार्य्य से ही हो सकती है. और अन्य सांसारिक सुख तो नश्वर हैं इसी प्रकार नाना प्रकार के प्रश्नोत्तर परस्पर होते रहे फलत ! श्रीमती जी महाराज इस वार्तालाप से वैराग्य में और भी दृढ़ होगई सत्य है. जिसके हृदय मे सत्य धर्मका प्रकाश होचुका हो उसको असत्य धर्म्मका अंधकार कब दबा सकता है.

यथा दृष्टान्त—प्राचीन समयमें भारतवर्षमें वसन्त पुर नामक एक नगर था. उस नगर का निवासी एक धनदत्त सेठ था उसका एक पुत्र जिसका नाम देवदत्त था देवदत्तकी आयु छोटी ही थी कि उसका पिता कालवश होगया और धनदत्त की मृत्यु से उसके घर का सब प्रबन्ध बिगड़ गया कार्य्य व्यवहार नियम पूर्वक न रहने से दरिद्र देवने अपनी सत्ता आ जमायी अपितु देवदत्त पैसे पैसे को, तरसने लगा. और दीन दुर्बल दुखिया होकर मन मारकर बैठ रहा एक दिन वह अपने सखाओं के साथ खेलने गया. तो वे हंसकर उसे कहने लगे कि "क्या तेरी मां तुझे दूध नही पिलाती ? जो तू इतना दुर्बल हो रहा है".

देवदत्त बोला "दूध क्या होता है" ? उन्होंने कहा "सफ़ेद सफ़ेद" उस दिन देवदत्त ने घर आकर मां से दूध मांगा परन्तु माता उसकी अब दरिद्रा वस्था को प्राप्त होरही थी दूध दे कहां से प्रत्युत सुनते ही अधीर होकर आंसु भर लाई और मन में सोचने लगी. कि यह अबोध बालक अपने दुर्भाग्य को नहीं जानता. इस लिये दूध मांग रहा है जब घरमें दूध था तो उस समय बालक नहीं था अब बालक हुआ तो दूध न रहा. इस विचार ने उसे शोक के समुद्रमें डुबो दिया माताने देवदत्तको बहुत समझाया. परन्तु देवदत्तने अपने हठको न छोड़ा जब कुछ बन न आई. तो माताने आटेको जलमें घोल कर दे दिया देवदत्त बालक उसका रंग सफेद देख कर और दूध समझ कर पी गया अस्तु उस दिनसे जब कभी बालक दूध मांगता. तो उसकी माता उसे आटा ही घोल कर दे देती. एक दिन देवदत्त अपने एक मित्र के घरचला गया मित्रकी माताने जब अपने पुत्र को दूधका ग्लास दिया. तो देवदत्त को भी एक ग्लास दूधका दे दिया. जब देवदत्त ने दूध पीया तो उसका स्वाद ही अनोखा पाया अत्यन्त प्रसन्न हुआ और मन में विचारा कि जो

दूध मेरी मां मुझे देती रही है. उसका स्वाद तो बुरा था और जो दूध मैंने आज पिया है इसका स्वाद बहुत अच्छा है अतः मुझे आज निश्चय हुआ कि वास्तव में दूध यह है और यही बल देने वाला तथा देह के पुष्ट करने वाला है, अस्तु वह तुरन्त अपने घर गया, और रीति पूर्वक अपनी माँ से दूध मांगा तो उसने भी पूर्ववत् आटा घोलकर देदिया देवदत्त तुरन्त बोल उठा "माताजी! आज मैं असली दूध पीकर आया हूं, अब बनावटी दूध कदापि नहीं पी सकता. अर्थात् अब मुझे विश्वास होगया है कि यह दूध नहीं है प्रत्युत आटे का धोवन है. अब मैं इसे नहीं पी सकता हूं.

इसी प्रकार जब श्रीमती पार्वतीजी महाराज ने ज्ञानमय अमृतरूप वास्तविक दुग्ध का पान कर लिया तो फिर उन्हें आटे के धोवन के समान मिथ्या और नाशवान् सांसारिक सुख कैसे पसन्द आसकते थे, इसलिये श्रीमतीजीमहाराज सर्वथा प्रकार श्रीमुख से वैराग्य की ही बडाई करती रहीं, जब आपके पिता जी ने आपको वैराग्य मे दृढ़ पाया तो उस समय उन्हें स्वामी कँवरसेनजी के वे वचन स्मरण हुए कि "यह कन्या संयमव्रतलेगी' अस्तु कुछ तो स्वामीजी के वचन पर विश्वास करके और कुछ श्रीमती महासतीजी

महाराज के पूर्व जन्म के पुण्योदय से बलदेवसिंहजी आपको संयमी व्रत लेने से रोक न सके प्रत्युत प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा देदी.

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज अपने माता पिताकी आज्ञा लेकर श्रीमती हीरांदेवीजी महाराज के पास उपस्थित हुई और श्रीमती सती हीरांदेवी जी भी इस शुभ समाचार को सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं.

आपका संयमव्रत धारण

श्री श्री श्री सती हीरांदेवीजी महाराजने श्रीमती पार्वतीजी को वैराग्य में दृढ़ पाकर उनको दीक्षा देने के लिये आगरे से यमुना पार की ओर विहार कर दिया, और विचरती हुईं अल्लम गांव जो मुज़फ्फ़र नगर के जिले में कांधला के पास है वहां पधारीं, उन दिनों वहां पर श्री श्री श्री स्वामी जीवनरामजी महाराज जैनमुनि के शिष्य आत्मा रामजी जो पश्चात् पीताम्बरीवेष धारणकरके आनन्द विजयजी के नाम से प्रसिद्ध हुए थे विराजमान थे, और श्री श्री श्रीस्वामी रत्नचन्दजी महाराज के शिष्य श्री

श्री श्रीस्वामी चतुर्भुजजी महाराज भी विराजमान थे. अस्तु अलम गाओंके श्रावकोंने प्रसन्नतापूर्वक श्रीमती पार्वतीजी महाराज का दीक्षा महोत्सव करना अपने ही गांओं में स्वीकार किया और आपके साथ निम्नलिखित तीन और बालब्रह्मचारिणी वैराग्यवती श्रीमतियों की भी दीक्षा थी.

(१) बीबी मोहनियांजी. (२) बीबी सुन्दरियाजी (३) श्रीमतीपार्वतीजी महाराज के–

सगे चचा सुखदेवसिंहजी की कन्या बीबी जीवोजी. इन चारो श्रीमतियो की दीक्षा सँ० १९२४ चैत्रशुदि २ के दिन की नियत हुई. अलम गाओ के भाइयों ने उस शुभ अवसर पर अनेक नगरो के श्रावक और श्राविकाओं को आमन्त्रित किया, उस समय वहां साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका चारों तीर्थ उपस्थित थे और एक दर्शनीय दृश्य था.

उस समय केवल उन वैराग्यवती श्रीमतियों के दर्शन ही कोटानुकोट पापों के दलों को क्षय करने वाले थे, क्योंकि वैराग्य मे निर्मल और धर्म में चढ़ते पर नाम दीक्षा लेने के समय साधु महाराज व आर्य्याजी महाराज के जितने उत्साह में होते हैं, उतने किसी अन्य अवसर पर होने दुर्लभ हैं क्योंकि

वैरागी पुरुष दीक्षा लेने के समय परनामों की निर्मलता होने के कारण सातवें गुण स्थान पद को प्राप्त करते हैं. विशेष वैराग्य को प्रकट करने वाली जो जो घटनाएं दीक्षा के समय हृदयों में उत्पन्न होती हैं, उनका अन्य अवसरों पर उत्पन्न होना अत्यन्त कठिन है. धर्मात्मा पुरुष इस बातको अवश्य स्वीकार करेंगे कि दीक्षा लेने के समय वैराग्यवान् पुरुष व स्त्रीओं के गुणों का अनुमान लगाना कठिन ही नहीं वरञ्च असम्भव है और इसीलिये दीक्षा लेने के समय साधु साध्वी श्रावक श्राविका चार तीर्थों के एकत्रित होने की प्रणाली आदि से ही चली आती है. वास्तव में देखा जाय, तो धर्म का महोत्सव दीक्षा से बढ़कर और कोई नहीं है. इसलिये इसको जितने आनन्दसे मनाया जाये, उतना ही थोड़ा है, उस समय श्रीमतीजी महाराज की आयुका चौदहवां वर्ष आरम्भ ही हुआ था आपने उस समय तीन अन्य श्रीमतियों सहित जैन दीक्षाको धारण किया अर्थात् सम्पूर्ण सांसारिक व्यवहारों का परित्याग करके जैन नियमों के अनुसार आजीवन संयमव्रती में रहना स्वीकार किया अर्थात् दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह इन पांच महाव्रतों को धारण किया.

पाठक ! वह समय भी कैसा शुभ होगा,जब आपको दीक्षा का पाठ चारो तीर्थो के मध्य में पढ़ाया गया होगा. अपितु वहुत ही शुभ होगा पस इस प्रकार महोत्सव के अनन्तर श्रीमती हीरां देवीजी महाराज ने आपको साथ लेकर वहां से विहार कर दिया.

प्रारम्भिक पांच चातुर्मास्य में जैन सूत्रों की शिक्षा.

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज का पहिला चातुर्मास्य जिला मुज़फ्फरनगर के गंगेरु नामक गाओं मे अपनी गुरुयाणीजी की सेवा मे व्यतीत हुआ उस में आपने कुछ ग्रन्थ पढ़े. चौमासा के पश्चात् आप गुरुयाणाजी के साथ विचरती हुई आगरे मे विराजमान् हुई वहां पर आपने श्रीस्वामी कँवरसेनजी महाराज से श्रीआचाराङ्गव सुयगड़ाङ्ग (शूत्रीकृताङ्ग) आदि कई सूत्रों को पढ़ा और सूत्र ज्ञान को प्राप्त करने के लिये आपने सं० १९२५ से सं०१९२८ तक के चार चौमासे निरन्तर आगरे मे ही किये.

एक दिन श्रीस्वामी कँवरसेनजी महाराज का

एक भक्त जो ८०) रु० मासिक का सरकारी नौकर था, दर्शनों को आया और श्रीमती महासतीजी महाराज की तीक्ष्ण बुद्धि को देखकर बोला कि "आर्या जी ! आपने सांसारिक सुखों से तो मुख मोड़ ही लिया है, परन्तु मेरा विचार है कि यदि आप अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करलें और डाक्टरी परीक्षा पास करके युरोपियन सिस्टरों व मिस्सों की न्याई काम करें तो आपको चार पांचसौ रुपया की मासिक आय (आमद) भी होजाये और उपकार भी बड़ा हो "श्रीमहासतीजी महाराज ने उत्तर दिया कि" भाई ! मैं तो परमात्मा की सेवा करके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि रोगोंकी चिकित्सा सीखना और सिखाना आवश्यक समझती हूं जिससे आत्मा को सदा के लिये आनन्द(वास्तविक)सुखकी प्राप्ति होसके और जो यह बाह्य रोग हैं सो तो शरीर के साथ ही उत्पन्न होते हैं और साथ ही नष्ट होजाते हैं परन्तु काम क्रोधादि उपरोक्त व्याधियां तो परलोक में भी दुःख देती हैं. तथापि किसी विद्या का प्राप्त करना तो अच्छा ही है आप मुझे अंग्रेजी पढ़ादेवें. सुतरां उसने कँवरसेनजी महाराज की आज्ञा लेकर श्रीमतीजी महाराज को पढ़ाना आरम्भकर दिया परन्तु थोड़ी सी अंग्रेजी पढ़ने

पर ही आपकी गुरुयाणीजी महाराज ने आपको कहा कि जितना समय तुम अंग्रेज़ी की पढ़ाई पर लगाओगी उतनीही सूत्रों की पढ़ाई में क्षति (हानि) होगी. क्या तुमने अंग्रेज़ी पढ़कर नौकरी करना है वस मत पढ़ो.

श्रीमहासतीजी महाराज वड़ी शुशील और साधु स्वभाव थी. इसलिये गुरुयाणीजी महाराज के आदेश से अंग्रेज़ी पढ़ना तत्काल छोड़ दिया.

यह वात वर्णनीय है कि आपकी शिष्या की शिष्या श्रीद्रौपदीजी महाराज आपके जीवन चरित्र में शोक प्रगट करती हुई लिखती हैं और मेरा भी यही विचार है कि आपने उस समय अंग्रेज़ी की पढ़ाईको क्यों छोड़ दिया यदि आप थोड़ा थोड़ा समय भी अंग्रेज़ी पढ़ने पर लगाती, तो जो वर्तमान समय में अंग्रेज़ी भाषा एक विश्वव्यापी होरही है, आप अपनी प्रभावशाली लोक प्रिय वाणी से अंग्रेज़ी भाषा द्वारा, अंग्रेज़ी विद्वानो के हृदयो में भी दया सत्य आदि धर्म्म का वीज विशेषत्र वो सकती. अस्तु अव भी सव कुछ हो सकता है हम श्रावको को चाहिये कि इन के रचे हुए ग्रन्थों को अंग्रेज़ी भाषा में अनुवाद करा करके उन को अंग्रेज़ी के विद्वानों तक

पहुंचावे और समस्त साधु जी महराज व साध्वी जी महाराज अपने शिष्य व शिष्यायों का ध्यान इस ओर लगावें, ताकि भविष्यत में किसी ऐसे शोक का अवसर न मिल सके. अस्तु—

आप उन चातुर्मास्यों में जड़ चेतन लोक परलोक और बंध मोक्षादि पदार्थों के स्वरूपके विचार में अपनी बुद्धि से विवेचना करती हुई, जैन शास्त्रों के अभ्यास का यथाशक्ति लाभ उठाती रहीं.

वैराग्य वृद्धि के साधन.
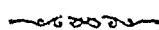
श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने थोड़े समयके लिये यह प्रतिज्ञा (अभिग्रह) धारण किया कि सूर्य्यास्त होने के समय अर्थात् आवश्यक (प्रतिक्रमणा) करनेके पश्चात् एक आसनपर पलङ्कासन बैठकर अनुमान दो घण्टा तक नमोत्थुणं सूत्रकी माला पढ़ना। इस प्रकार आपका समय जप तप नियम आदि में व्यतीत होता रहा.

एकदिन रात्रि के अन्त में आपने यह स्वप्न देखा— कि एक विस्तृत मैदान है, उस में बड़ा ही सुन्दर गोल कल्प वृक्ष की जाति का एक दरख्त है. जिस के नीचे में अर्थात् पार्वतीजी महाराज पलङ्कासन

अर्थात् चौकड़ी लगाकर बैठी हुई हैं. उस वृक्ष के नीचे जितना स्थान है. उस पर केसर, जावित्री, लौंग, वादाम आदि वृक्ष से वर्स रहे हैं; जिससे चित्त को वड़ा आनन्द होरहा है. श्रीमहासतीजी महाराजने जागने पर भी अपने चित्तको आनन्द मय पाया और अपने स्वप्नको स्मरण करके विचारा कि इसका फल मुझे अधिकतर धर्म्म की शरण के सम्बन्ध मे होगा. तव आपने अपनी गुरुयाणीजी महाराजके चरणों में यह प्रार्थना की कि आप देश विदेश विचर कर मुझे ज्ञान और क्रिया अर्थात् संयमवृत्ति के विशेष जानने और पालने का लाभ दिलाने की कृपा करे. इस पर आपकी गुरुयाणीजी ने यह कहा कि मुझ से तो विहार नहीं होसकता, इसलिये मेरा जाना दुष्कर है इन शव्दों को सुनकर श्रीमती पार्वतीजी महाराज सोचने लगीं, कि मैंने घरके सम्वन्धी भी छोड़े और संयम का पूर्ण आनन्द भी प्राप्त न होसका तो क्या मेरा समग्र जीवन यूं व्यर्थ ही व्यतीत होगा इस विचारने आपको गहरी चिन्तामें डाल दिया. और आप कोई ऐसा उपाय सोचने लगीं कि जिससे सूत्रानुसार संयम वृत्ति सहित देश विदेश विचर कर अपने जीवन को परो-

पकार द्वारा सफल कर सकें और मनोवाञ्छित मुक्ति पद का साधन साध सकें.

श्रेष्ठ विचार.

इन दिनों नयनसुखजी जति की भगिनी श्रीमती जयदेवीजी आगरा निवासिनी का श्रीमती पार्वती जी महाराजके साथ सूत्र ग्रन्थ भजन आदि पठन पाठन के कारण बड़ा ही प्रेम भाव था. श्रीमती जयदेवीजी ने आपके उपदेश से श्रीमती सती सुख देवीजी के पास जो श्रीनागरमलजी महाराज के सम्प्रदाय की आर्य्या थीं. दीक्षा भी धारण करली थी सं०१९२९ वि० में आप श्रीमती जयदेवीजी के उपकार से श्रीमती सुखदेवीजी के पास लोहारा सराय गांव ज़िला मेरठमें पधारीं, और इस वर्ष उन्ही आर्य्याओं के साथ वहीं चातुर्मास्य किया, इस चातुर्मास्य में वहां पर दया, दान, जप, तप आदि धर्म्म ध्यान का महान् उपकार हुआ और आपके व्याख्यान में सैकड़ों की संख्या में श्रोताजन उपस्थित होते थे.

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने एक दिन कई एक धर्म्म के हितैषी श्रावकों से यह पूछा कि

आप वतलाएं, कि जैन धर्म्मके किस किस सम्प्रदाय के साधुओं व आर्य्याओं के आचार विहार की साधना विशेपतर है. उन्होने उत्तर दिया कि जैन में मूर्त्तिपूजक जतियों के ८४ गुच्छ हैं और वीतराग परमेश्वर के गुणो के ध्याता जेन मुनियो के २२ टोले हैं. इनमें निम्नलिखित २ टोले अधिक क्रिया पात्र हैं.

(१) मारवाड़ी श्रीपूज उदयसागरजी महाराज का टोला

(२) पञ्जावी श्रीपूज अमरसिंहजी महाराज का टोला.

इन दोनों सम्प्रदायों के साधुओ व आर्य्याओं का आचार विहार सूत्रानुसार उत्कृष्ट सुना जाता है.

यह सुनकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज ने कहा कि मेरी इच्छा यह है कि मे किसी अति श्रेष्ठ आचार विहार युक्त आर्य्याजी को अपनी गुरुयाणीजी वनाऊँ, और उनकी शरणागत होकर संयमवृत्ति का पालन करूँ. इसमें आपकी क्या सम्मति है ?

श्रावक वोले—आप तो सूत्रानुसार स्वयमेव संयम पालने में समर्थ है आपकी सलज्ज सौम्य दृष्टि

और आपका सरल स्वभाव ही वतला रहा है कि आप संयमवृत्ति का भली भांति निर्वाह कर सकती हैं.

इस पर श्रीमती महासतीजी महाराजने कहा कि जैन सूत्रानुसार जिन आज्ञा के पालन करने वाली आर्य्या के लिये तो यही योग्य है कि वह किसी प्रवर्तनी श्रेष्ठ आचार वाली गुरुयाणीजी का शिर पर हाथ रखाकर उनके अंकुशमें होकर विचरें.

श्रावक आपका यह वचन सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, और बोले कि निस्सन्देह आपका कथन सत्य है. आप जैसे भाग्यवान् पुरुषों के लिये तो सूत्रों के अनुसार ही संयमवृत्ति पर चलना योग्य है और हम लोग भी ऐसे ही उत्तम पुरुषों के सेवक हैं. जो जैन सूत्रों के अनुसार भगवान् की आज्ञा के आराधक हों. पुनः उन श्रावकों ने श्रीमहासती जी महाराज के चरणोंमें यह प्रार्थना की, कि देहली में जो यहां से बीस कोस के अन्तर पर है. श्री श्री श्री महासती खूबांजी महाराज व श्री श्री श्रीमहासती मेलोज़ी महाराज व श्रीश्रीश्रीसती चम्पाजी महाराज जो देहली वाले भाई रूपचन्द बाना वाला जौहरी की पुत्री है, और गुलाबचंद जौहरी की पुत्र वधु है जिसने अभी छे मास हुए दीक्षा धारण की

है. इन तीन आर्य्याओं का चातुर्मास्य है और वह श्री श्री श्री १००८ महाभागवान् पञ्जावी पूज श्रीअमरसिंहजी महाराज के सम्प्रदाय की आर्य्या हैं; यदि आज्ञा हो तो हम इस विषय मे श्रीमहासती खूबांजी महाराजके चरणों में प्रार्थना करें. श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने उत्तर दिया 'यह ठीक है" बस आपकी अभिलाषा को जानकर वहां के श्रावक श्रीमहासती खूबांजी महाराजके चरणों में इस विषय की प्रार्थना करने को उद्यत हुए.

महासतीजीका श्रीपूज अमरसिंहजी महाराजके सम्प्रदायमें सम्मिलित होना.

लोहारा गांवके चार श्रावको ने देहली जा कर श्रीमहासती खूबांजी महाराजके चरणों मे प्रार्थना की. कि श्रीस्वामी रत्नचन्दजी महाराज के सम्प्रदाय की एक आर्य्याजी आगरे मे श्रीसती सुख देवीजी के पास पधारी हुई हैं उनका नाम श्रीमती पार्वतीजी महाराज है उनका चातुर्मास्य हमारे गाओं लुहारा में है. और आप बड़ी ही गुणवती हैं, उनके गुणों का पूर्णरूप से वर्णन करना हमारी शक्ति से परे है. यदि आप आज्ञादें तो उन्हें आपके सम्प्रदाय

में सम्मिलित करा दिया जाये वहआप के टोलेको और आपके नाम को सूर्य्यवत् दशों दिशाओं में प्रकाशित करने के योग्य हैं.

श्रीमहासती खूबांजी महाराज इन शब्दों को सुनकर अतीव प्रसन्न हुई और कहा कि हम उन की प्रतीक्षा में इसी स्थान पर ठहरेंगी; आप उन को चातुर्मास्य की समाप्ति पर इधर को विहार करादें. अस्तु चारों श्रावकोंने वापिस आकर यह समाचार आपको सुना दिया. और चातुर्मास्य समाप्त हो जाने पर श्रीमती पार्वतीजी महाराज श्रीमती महा सती खूबांजी महाराज के चरणों में उपस्थित हो गई, उन्होंने आपको एक बड़ी गुणवती आर्य्या समझ कर मार्गशीर्ष (मग्गर) वदी १३ सं० १९२९ वि० को श्री महासती तपस्विनी मेलोजी महाराज के नाम पाठ पढ़ा दिया. उस समय से आप सत्य धर्म्म का उपदेश करती हुई देश देशान्तर पर्य्यटन करके लोगों के हृदयों से असत्यान्धकार का इस प्रकार नाश करने लगीं, जिस प्रकार सूर्य्यदेव रात्रि के अन्धकार का नाश करता है.

अर्थात् पूज अमरसिंह जी महाराज के सम्प्रदाय ग्रहण करने के पश्चात् आपने श्री

श्री १००८ श्री सतीखूवां जी महाराजके साथ देहली से पञ्जाब को विहार कर दिया; और रोहतक, हांसी हिसार, सरसा, रियासत फरीदकोट, ज़ीरा, पट्टी, अमृतसर, पसरूर और सियालकोट आदि स्थानों में विचरती हुई रियासत जम्मू मे पधारी और संवत् १९३० का चतुर्मास्य रियासत जम्मू मे ही किया इस चातुर्मास्य में आपकी गुरुयाणी जी श्रीमहासती मेलो जी महाराजने ३३ दिन का एक व्रत किया अर्थात् ३३ दिन निरन्तर जल के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का न खाना न पीना और श्रीपार्वतीजी महाराजने भी आठ दिनका एक व्रत उपरोक्त विधि के अनुसार किया. इसके अतिरिक्त आपने तीन तीन चार चार दिनके व्रत भी किये. श्रावक व श्राविका जम्मू वालों ने भी दया दान तपस्या आदि का यथाशक्ति बड़ा उद्यम किया और वड़े उत्साह से चौमासा समाप्त हुआ.

जम्मू से विहार करके आप स्यालकोट, पसरूर अमृतसर, जण्डियाला और जालन्धर के आस पास घूमकर धर्म्मोपदेश करती हुई. टांडा ज़िला हुश्यारपुर मे पधारी वहां पर श्रीमहासती खूवांजी महाराज को श्वास रोग ने आ दवाया. इस

लिये आपका सं० १९३१ का चातुर्मास्य उनकी सेवा में टांडा ही हुआ.

आपका सं० १९३१ वि० का चातुर्मास्य टांडा ज़िला हुश्यारपुरमें हुआ. जिसमें आपने बेले बेले उपारना की तपस्या की (दो दिन कुछ न खाना तीसरे दिन भोजन करके फिर दो दिन का व्रत कर देना) इत्यर्थः—

—०—

आपका आत्माराम साधु से भक्ष्याभक्ष्य विषय पर

लिखित शास्त्रार्थ.

वह आत्मारामजी जो पहले श्रीस्वामी जीवनरामजी महाराजके चेले थे, और पश्चात् संवेगी हुए थे. इन दिनों हुश्यारपुरमें ठहरे हुए थे. उस समय उनके मुख पर जैन मुनियों का सनातन चिन्ह (मुख वस्त्रिका) भी यथा रीति विद्यमान् था परन्तु श्रद्धा उनकी मूर्त्तिपूजन की होचुकी थी, यद्यपि पीताम्बरी वेष को अभी धारण नहीं किया था, इन दिनों आपका लिखित शास्त्रार्थ जो पत्रों द्वारा आत्माराम जी से हुआ वह अधोलिखित प्रकार से है—

प्रश्नः स्वामी आत्मारामजी संम्वेगी—

हे साध्वि तुम इस बाल्यावस्था में संयमका भार निभारही हो और वेले वेले उपारना कर रही हो परन्तु तुम को भक्ष्याभक्ष्यका तो ज्ञान है ही नहीं जिस के खाने से महां कर्म्म वन्ध होता है यथासूत्र आवश्यकमें २२ अभक्ष्य लिखे हैं उनको तुमलोग ग्रहण करतेहो यदि तुमको परलोक सुधारना है तो पहले अभक्ष्योंको त्याग दो।

उत्तरः महासतीपार्वतीजी—आवश्यक सूत्रमे तो मैंने कहीं २२ अभक्ष्यलिखे नहीं देखे

प्रश्न स्वामीआत्मरामजी—आवश्यक सूत्रमें तो नहीं है आवश्यक्की निर्युक्तिमें हैं

उत्तरः महासती पार्वतीजी-आपनेतो आवश्यक सूत्र लिखा था, इसका क्या कारण था पहले निर्युक्ति का ही नाम क्यों न लिखा यदि इस वातको आप भली भान्ति जानते थे कि आवश्यक्की निर्युक्तिको यह लोक नहीं मानते हैं तो फिर निर्युक्तिके स्थान में जानबूझ कर सूत्र आवश्यक लिखदेना इसका कारण क्या था"

परन्तु आप लोक तो निर्युक्तिको मानते ही हैं इसलिये आप पर शोक है. कि आप निर्युक्तिको

मानते हुए भी उपरोक्त २२ अभक्ष्योंमें से कई अभक्ष्योंको खाजाते हो यथा, वहां २२ अभक्ष्योंमें सब प्रकारकी मिट्टीको अभक्ष्य लिखा है तो क्या तुमलोग खानका निकाला हुआ सैन्धवादि लवण नहीं खाते अथवा वहां आलू, हल्दी, अदरख आदि सब प्रकारके कन्द मूल अनन्तकायको भी अभक्ष्य लिखा है तो क्या आप शुण्ठि और हल्दी नहीं खाते हो और क्या हल्दी, लवण, शुण्ठिको दाल आदिमें से किसी विशेष विधिसे निकाल दिया करते हो यदि आप उन अभक्ष्योंके निकाले विना ही खाते हो तो आप स्वयमेव अभक्ष्यके भक्षण करने वाले ठहरे और वहां नवनीत (माखन) को भी अभक्ष्य लिखा है तो क्या आप लोग माखन अथवा माखनकी वनी हुई वस्तु अर्थात् घृत नहीं खाते आशा है सर्वसाधारण लोग भी आपके इस विचार पर अवश्य हंसेगे कि देखो माखन जैसी उत्तम वस्तुको भी अभक्ष्य लिखते हैं जान पड़ता है कि आपने भक्ष्याभक्ष्य के विषय पर सूक्ष्म दृष्टि से विचार ही नहीं किया यही कारण है, कि आप केवल निर्युक्तिके लिखे पर ही रीझ बैठे हैं आपको उचित था कि किसी प्रमाणिक सूत्रका प्रमाण देते"

प्रश्नः स्वामी आत्मारामजी–ठानाङ्ग सूत्रके चतुर्थ ठानामें माखनको अभक्ष्य लिखा है।

उत्तरः महासती पार्वतीजी–ठानाङ्ग सूत्रमें माखनको अभक्ष्य शब्दसे कहीं भी नहीं लिखा है

प्रश्नः स्वामी आत्मारामजी–क्या आप नहीं जानती हो कि इस सूत्रके चतुर्थ ठानाके दूसरे उदेशे मे चार महां विघे लिखे हैं मांस, मदिरा, शहद, माखन अव देखिये. इस स्थान पर मांसके साथ माखन लिखा हुआ है इसलिये माखन भी अभक्ष्य हुआ।

उत्तरः महासती पार्वतीजी–ओ हो, यह वात तो आपने वड़ी भूलकी लिखी है कि कोई अच्छी वस्तु किसी वुरी वस्तुके साथ लिखनेसे ही वुरी समझी जावे. पब्लिक भी आपकी ऐसी कच्ची युक्ति को जो असत्य और सूत्रोंके विरुद्ध हो, कैसे मान सकेगी, कि माखन जैसी उत्तम वस्तु केवल इस कारणसे अभक्ष्य हो गई. कि उसका वर्णन मांसके साथ आया है हा ! आपको तनक विचार तो करना चाहियेथा कि इसी स्थान पर और कौन कौनसे पदार्थ किस २ पदार्थके साथ लिखे हुए हैं। अर्थात् वहां चार गोरस विघे भीतो लिखे हैं–(१)दूध(२)दही(३) माखन (४) घी, और वहां चार स्निग्ध विघे भी लिखे हुए हैं।

(१) तेल (२) घी (३) चर्वी (४) माखन।

अब आप पक्षपातको त्यागकर तनक न्याय से कामलेवें कि जो माखन है जिसको आप निर्युक्ति के अनुसार अभक्ष्य मान रहे हो और यह भी मान रहे हो, कि जो पदार्थ अशुद्ध पदार्थोंके साथ वर्णन किये गए हों वे अशुद्ध मानने चाहिये तो माखनके साथ दूध दही घी भी अभक्ष्य हो जायेंगे और तेल घी का वर्णन माखन और चर्वी के साथ आनेसे वह दोनों वस्तुएं भी अभक्ष्य ही हो जायेंगी, नहीं नहीं कदापि नहीं अस्तु अब जो इन चौभङ्गियों का तात्पर्य्य सूत्रानुसार है, वह मैं आप को बतलाती हूं।

स्थानङ्ग सूत्रके चतुर्थ स्थान के द्वितीय उद्देशकमें

श्रीमद् भगवान महावीर स्वामीजी महाराजने पूर्वोक्त जो चार गोरस विघे कहे हैं, जिनमें गो भैंस आदिसे उत्पन्न होनेके कारण गोरसका गुण लिया गया है और चार ही स्निग्ध विघे कहे हैं जिनमें चिकनाई का गुण लिया गया है इसी प्रकार चार महा विघे कहेहैं जिनमें बलका गुण लिया गया है इसालिये गौ से उत्पन्न होनेके कारण तो माखनको गोरस विघोंमें रखा गया है, और चिकनाईके कारण माखनको स्निग्ध

विघोंमें सम्मिलित किया गया है तथा वल विशेष के कारण माखनको महा विघोंमें रखा गया है इत्यर्थः अव कहिये माखनको अभक्ष्य किस प्रकार से माना जासकता है अस्तु यह सिद्ध हुआ कि माखन कदापि अभ्यक्ष्य नहीं है यदि आप माखन को केवल इस विचारसे ही अभक्ष्य मान वैठेहो कि यह मांसके साथ लिखा हुआ है तो चर्बीके साथ घी और तेल भी तो लिखा हुआ है फिर आपको घी और तेल भी अभक्ष्य ही मानना पड़ेगा।

इसका उत्तर आत्मारामजीने कुछ न दिया। सुतरां चातुर्मास्यमें धर्म्मका उद्यम टांडेके भाईयोंने यथा शक्ति अच्छा किया पश्चात् चातुर्मास्यके आपने हुश्यार पुरको विहार कर दिया और हुश्यार पुरके प्रियधर्मी श्रावक और श्राविकाओंने महासतीजीके पधारे ने का वड़ा हर्ष प्रकट किया और व्याख्यानमें श्रोताओंको उस स्थानमें स्थलभी दुष्कर मिलताथा फेर अनेक नगरोंमें दया धर्म्मका प्रकाश करती हुई आप रोपड़ जिला अंवालामें पधारीं और सं० १९२२ वि० का चातुर्मास्य रोपड़का ही स्वीकृत हुआ।

—:०:—

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने सं० १९३२ वि० का चातुर्मास्य रोपड़ ज़िला अम्बालामें किया वहांके श्रावक और श्राविकाओंको धर्म्मकी बड़ी रुचि थी आपके उपदेश वहां प्रतिदिन होते रहे.

पाठकवर्य्य ! यह बात विशेष वर्णनीय है कि इन दिनोंमें आत्माराम सम्वेगी जो सूत्रोंके विरुद्ध मूर्तिपूजनको एक धार्म्मिक प्रथा कहकर उसका जैन में प्रचार करनेके लिये यथा साध्य प्रयत्न करनेमें लगे ही थे कि एक अन्य मनुष्य अपने आपको ऋग्, यजुः, साम, अथर्व, वेदोंके अनुसार चलने और चलाने वाला सिद्ध करता हुआ देश विदेशमें मूर्त्ति पूजाकी प्रथाको हानिकारक सिद्ध करता था, उस का नाम स्वामी दयानन्दजी था उसने अपने उपदेशों से यह भली भांति सिद्ध करादिया कि मूर्त्तिपूजन वेद विरुद्ध है.

जनता अपनी ऐतिहासिक स्थिति पर विचार करके, भली भान्ति समझ गई और लोग स्वयमेव भी कहते थे, कि हम लोग पंद्रह सौ वर्षसे दुःख और विपत्ति उठारहेहैं यथा—भारतवर्षके इतिहासमें महमूद गज़नवीका १७ बार आकर भारतको लूटना, और

यहांकी जनताका संहारकरना स्त्री,पुरुष औरबालकों तकको पकड़कर ग़ज़नीमें ले जाना दो दो रुपये पर उनको नीलाम करदेना, यह सब मूर्त्तिपूजाके ही फल थे, तो परलोकमें उसके फल कैसे होंगे।

इस लिये लोग भली भान्ति जान गए, कि मूर्त्तिपूजा न तो जैन सूत्रोंमे है, और नाही वेदोंमें है, इस लिये बहुतसे शिक्षित मनुष्य स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी की शरणमें चलेगये। और जो दूरदर्शी जैनी थे, वे जैन मुनियों और श्रीमहासती पार्वती जी महाराजके उपदेशसे आत्मारामजी के जालसे बचे रहे, और कई एक फंस भी गये।

यह बात भी छुपी न रहे, कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने जैनको भी मूर्त्तिपूजाके रोगसे ग्रस्त पाया तो उनका विचार जैनके सम्बन्धमें भी अच्छा न रहा, परन्तु हमें आश्चर्य्य है कि उन्होंने मूर्त्तिपूजक जैनको बुरा कहते हुए, जैनमे जो मूर्त्तिपूजासे रहित शुद्ध थे न जाने उनपर क्यो अनुचित आक्षेप किये है देखो सत्यार्थ प्र० स० १२वां इसलिये स्वामी दयानन्द सरस्वतीजीका यह विचार सत्य और निष्पक्ष नहीं था इस कारण स्वामीजी और उनके समाजका थोड़ा सा चरित्र भी पाठकोको भेट किया जाता है। आशा

है कि पबलिक पक्षपात छोड़कर इसे ध्यानपूर्वक पढ़ेंगे ।

मुझे एक बार स्वामी दयानन्द सरस्वती प्रवर्तक आर्य्य समाज़के जीवनचरित्रके पढ़नेका अवसर प्राप्त हुआ जिसको जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासीने बनाया है और खेमराज श्री कृष्णदासने बम्बईमें अपने श्री वेङ्कटेश्वर प्रेसमें सं० १९५५ वि०में छपाकर प्रकाशित किया है इसमें लिखा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वतीने अपना जीवनचरित्रआप लिखकर रसाला थियौसोफ़िस्टमें मुद्रित करायाथा, जिसको सं०१९४५ वि०में दलपत्तराय जगराओं निवासीने अंग्रेज़ीसे उर्दू में उल्था करके लाहौरमें छपवाया उसमें लिखा है, कि स्वामीजी लिखते हैं, कि मैं जो आजकल स्वामी दयानन्दके नामसे प्रसिद्ध हूं, सं० १८८१ वि० को काठियावाड़ गुज़रात प्रदेशमें मौरवी रियासतमें उच्च जातिकी ब्राह्मणीके उत्पन्न हुआ ।

समीक्षक—ब्राह्मणके उत्पन्न हुआ, क्षत्रियके अथवा वैश्यके उत्पन्न हुआ, ऐसा बोलनेका प्रचार है । स्वामीज़ीने ब्राह्मणीमें उत्पन्न हुआ, ऐसा लिखा इसका कारण क्या है । और जो अपना गाओं और पिताका नाम प्रसिद्ध नहीं किया, न जाने इसका कारण क्या है ।

पुनः स्वामीजी लिखते है, कि पांच वर्षकी आयुमें मैंने नागरी पढ़नी आरम्भ की, और मेरे माता पिताने अपने घरकी रीतिके अनुसार मुझे गानविद्या सिखाई। आठवर्षकी आयुमें यज्ञोपवीत करादिया, और यजुर्वेद संहिता पढ़ानी आरम्भ करदी।

"पुनः शिवपूजा और गाने बजानेसे घृणा करके सं० १९०३मे २२ वर्षकी आयुमे सन्यासी होने को माता पितासे चोरी निकल भागे, फिर बीस पृष्ट पर स्वामीजी लिखते हैं, कि मैंने यह विचार किया, कि मैं सदाके लिये मुक्त होनेका उपाय करूं। अर्थात् किस स्थान पर मुझे सदाके लिये मुक्ति प्राप्त हो सकती है, और कहांसे किसके द्वारा प्राप्त कर सकता हूं, कि जिससे सदाके लिये इस बन्धनसे मुक्त हो जाऊं, मेरे मनमें दृढ़ सङ्कल्प होगया, कि सदाकी मुक्ति को ढूढूंगा।

समीक्षा—इससे सिद्ध होता है, कि दयानन्द सरस्वती बहुत समयतक मुक्तिको सदाकेलिये मानते रहे, और अपने ग्रन्थोंमें लिखते भी रहे "क्योंकि दयानन्द तिमिर भास्कर ज्वालाप्रसाद कृत, जो श्री वेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेसमें स० १९६२ वि० शके १८२७

में छपा है, इसके पृष्ठ ३२४ पर मुक्ति प्रकरणमें लिखा है, कि स्वामीजीने भाष्य भूमिकामें १११, ११२ पृष्ठ पर आर्य्याभिविनय के पृष्ट १६, ४२, ४५ पर वेदान्ती ध्वान्ति निवारण के पृष्ट १०, ११, पर। वेद विरुद्ध मत खंडनके पृष्ट १४ पर, सत्य धर्म विचारके पृष्ट २५ पर लिखा है, कि मुक्ति कहते हैं, छूट जाने को। सच्चिदानन्द परमेश्वरको प्राप्त करके सदा आनन्द में रहना और फिर जन्म मरण और दुःख सागर में नहीं गिरना इसका नाम मुक्ति है"। फिर न जाने कौन से कारणसे मुक्तिसे लौट आना मान लिया है। मेरी सम्माति में तो यह आता है, कि मुक्ति विषय पर उन्होंने किसी से शास्त्रार्थ में पराजय पाई, और इसी कारण मुक्तिको एक कारागार समझ कर वहांसे वापस आना मान बैठे हैं, इस विषय में जगन्नाथदास मुरादाबाद निवासी स्वरचित मुक्ति प्रकाश पुस्तक जो मुरादाबादमें लक्ष्मी नारायण यंत्रालयमें छपी दूसरी बार की मार्च १८९९ ई० जिसके पृष्ट ५की अन्तिम पंक्ति से आरंभ करके छटे पृष्ट पर लिखते हैं जिसका यह अनुकरण है।

"पञ्जाब देशके जलन्धर नाम नगर में किसी मुसल्मान से उनका शास्त्रार्थ हुआ। मुसल्मान ने

यह कहा कि जो मुक्ति सदाको होती है और मुक्ति से पुनरावृत्ति नही है तो यदि एक २ कल्पमें एक २ जीव भी मुक्त होता रहेगा, तो किसी काल में सम्पूर्ण जीव मुक्त हो जायेगें, और संसार नष्ट हो जायेगा, तव तुम्हारा ईश्वर भी वेकार रहेगा। उस समय स्वामी जी को इस वातका कुछ उत्तर न आया और उन्होंने अमृतसरमें वावा नारायणसिंह वकील से यह वात कही कि अव हम मुक्ति से लौटना मानेंगे अन्यथा मुसल्मानोंके आक्षेपका कुछ उत्तर न होगा यह वात वावा नारायणसिंहजीने श्रीमान मुन्शी इन्द्रजीसे अमृतसरमें, जव कि उक्त मुन्शीजी जम्मू को जाते थे कही, कि स्वामीजीसे एक मुसल्मानने मुक्ति विषय में यह आक्षेप किया, उस समय उनको कुछ उत्तर न आया इस कारण स्वामीजी कहतेथे कि अव हम मुक्ति से लौटना मानेगे। मुन्शी जीने इस वातको सुनते ही वावा नारायणसिंहजी से कहा, कि यदि ऐसा करेंगे, तो वहुत वुरा करेंगे समस्त सृष्टियोने मुक्ति सदैवके लिये मानी है मुक्ति से लौटना किसीने भी नहीं माना, और मुक्तिसे लौटना माननेमें वहुत दोष आते हैं, और मुसल्मान के आक्षेपका उत्तर तो सुगम है. कि जीव अनन्त

है और जो अनन्त है उसका कभी अन्त नहीं हो सकता निदान स्वामीजीने ऋग्वेदके भाष्य पुस्तक ३२, ३३, अंक १६, १७ में सत् शास्त्रों और समस्त विद्वानोंके विरुद्ध मुक्ति से लौटना माना" ।

स्वामी दयानन्द सरस्वती नगर २ घूम कर सभाएं स्थापित करते थे। जिनका नाम आर्य्य समाज रखते थे क्योंकि उसकी शिक्षा स्वच्छन्दता के लिये हुई, इस लिये समयानुकूल थी । अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोग जो पहले ही से इसाई आदि सम्प्रदायों की शिक्षासे स्वच्छन्द होना चाहतेथे और खान पानकी बाधाओं तथा जात पातकी प्रचलित रीतियोंकी संकीर्णता से भी दुःखी थे और नदी, पर्वत, तथा मूर्त्तियोंकी पूजा और क्रिया कर्म श्राद्ध आदिको हानिकारक मान कर उनको व्यर्थ २ कह कर पुकार रहे थे तब श्री स्वामीजीने उनके विचारोंको वेदों ही के अनुसार कह कर उनको वैसी ही शिक्षा देनी आरम्भ की तो उन्हों नें तत्काल इन समाजों में अपने नाम लिखवाने आरम्भ कर दिये ।

सरस्वतीजी के उपदेशों से, शिक्षित पुरुषों का एक बड़ा दल थोड़े ही समय के अन्दर आर्य्यसमाज के नियमों का परिपालक होगया । कदाचित् कोई

ही ऐसा ऑफ़िस व डिपार्टमैण्ट होगा, जिसमें सरस्वती जी का कोई भक्त न हो। जब विद्यार्थी स्कूलों व कालिजों से निकलकर जाते, और उनको उनके बड़े बूढ़े मूर्त्तिपूजन, श्राद्ध अथवा नदियों व पर्वतों की पूजा तीर्थ यात्रा अथवा क्रिया कर्म को कहते तो वे हंस कर उत्तर देते "हम इन मिथ्या विचारों को कभी नहीं मानेगे। आप भी इनको छोड़दें, इन में धरा ही क्या है। अतः जब वेदों के मानने वाले क्षत्रिय ब्राह्मणों ने बहुत से मनुष्यों को आर्य्यसमाज की ओर ही झुकते देखा, तो उन्होंने भी सभाएं स्थापन करनी आरम्भ करदीं, जिनका नाम प्रायः सनातन धर्मसभा रखा जाता था, और यह सभाएं सरस्वती जी के सिद्धान्तों का प्रचण्ड खण्डन करने लग गईं। क्योंकि यह ब्राह्मण वैष्णव भी वेदों को ही मानते हैं और पुराणों को भी वेदों के समान ही मानते हैं, उन पुराणों के मानने वालों को आर्य्यसमाजी मिथ्या वादी कहते थे यहां तक कि पुराणों के बनाने वाले गर्भ में ही क्यों न मर गये, इत्यादि—देखो सत्यार्थ प्रकाश सं० १९५४ के छपे हुए ग्यारवें समुल्लास में पृष्ठ ३५६ पंक्ति ५वीं से, और वेदों में जो अश्वमेधादि यज्ञों में हिंस्यादिकों के कथन आते हैं, उन शब्दों

के मन कल्पित अर्थ बदलकर दयानन्द सरस्वतीजी ने नयामत निकाला ही था इसलिये वे दयानन्दीये अपने शङ्काओं को निवृत्त करने के लिये प्रायः प्रत्येक (हरेक) मत वालों से कुछ न कुछ पूछते ही रहते थे ॥

—०—

आपका रोपड़में उपदेश ।

श्री महासती पार्वतीजी महाराज जिस समय रोपड़में विराजमान थीं, उस समय आर्य्य-समाजके मेम्बर वकील मास्टर आदि भी आपकी सेवामें व्याख्यान सुननेके लिये उपस्थित हुए । क्योंकि आपके विचार बड़ेही उच्च और श्रेष्ठ थे जिनका सुनना दुर्लभ था, आप सूत्र श्री भङ्गगतीके अनुसार षट द्रव्य अर्थात् जीव, अजीव, आकाश, काल, स्वभाव, परमाणु आदि पर ग्यारह द्वारोंसे अर्थात् इनके अर्थ समझनेके लिये ११ भेद (११ बातों) पर समझा कर व्याख्यान करती थीं उसको वे लोक कई दिन तक सुनते रहे तब उनके और अन्य श्रोताओंके हृदयोंमें जो संशय थे वे सब दूर हो-गए और कहने लगे कि निस्सन्देह जिनेन्द्र देव सर्वज्ञ हुए हैं, जिन्होंने आकाशादि सूक्ष्म षट् द्रव्यों

को कैसे दिव्य ज्ञान नेत्रोंसे देखा है, और ग्यारह द्वार (भेदों) से वर्णन किया है। इससे यह सिद्ध होगया, कि साईन्स विद्याके आदि मूल जैन सूत्र ही है।

इस प्रकार रोपड़में धर्म ध्यानका बड़ा ही उद्यम होता रहा। चातुर्मास्य समाप्त होने पर आपने रोपड़से सियालकोटकी ओर विहार कर दिया। और मार्गमें गाओं गाओं, नगर नगर दया धर्मके अंकुर लगाती हुई पसरूरमें पधारी। पसरूरमें लाला गण्डा शाह, मूला शाह, पञ्जु शाह आदि ओसवाल (भावड़े) धर्मके अत्यन्त प्रेमी थे। गंडा शाहकी भगिनी जो कस्बा संभड़ियाल ज़िला सियालकोटमे मथुरादासको व्याही हुई थी; जिन के दो पुत्र लाला शिवदयाल व सोहन लालजी थे। सोहन लालजी अपने मामूं गंडा शाह म्यूनिसिपल कमिश्नरके यहां पसरूरमे रहते थे, और वहां ही सराफ़ी की दुकान करते थे। और सावकके बारह व्रतोंको भली भांति पालन करते थे। दोनो समय सामायिक प्रतिक्रमण भी किया करते थे, श्री महासती पार्वतीजी महाराजका व्याख्यान सुननेको प्रतिदिन आते थे। एक दिन सागर चक्रवर्तीका

वर्णन चलरहा था। जिसमें यह कथन था, कि अत्यन्त प्राचीन समयमें सागर नामी राजा समस्त भारत वर्ष का चक्रवर्त्ती (सम्राट था) उसकी राजधानी अयोध्या थी। उसकी वत्तीस सहस्र राजकुमारी रानियां थीं, और साठ सहस्र पुत्र थे। वे लड़के दैवयोगसे गंगा नदीकी नहर खुदवाते हुए पर्वतके नीचे दबकर सब मृत्युको प्राप्त होगये। जब चक्र-वर्त्ती महाराजको यह सूचना मिली, कि उसके साठ सहस्र पुत्र पर्वतके नीचे दबकर नश्वर संसारसे सदा के लिये आपसे जुदे होगये हैं, अर्थात् मृत्यु हो गये हैं, तो उनके शिर पर मानो वज्रपात हुआ और मूर्छित हो कर कटे हुए कदली स्तम्भकी न्याईं भूमि पर गिर पड़े। सुधि आने के पश्चात् विचारने लगे कि शास्त्रकारोंने सत्य कहा है कि इस संसारका स्वभाव अनित्य है। सन्ध्या समयके बादलोंकी परछाईंके समान क्षण-भंगुर है और इस (रोम मन्दिर) शरीरकाभी कोई भरोसा नहीं क्योंकि जरा और मृत्यु जिसके पीछे बाण ताने हुए लग रहे हैं इसलिये यह देह एक दिन अवश्य विनाशको प्राप्त हो जायेगी। और लक्ष्मीका भी कोई विश्वास नहीं, क्योंकि समुद्र तरंगकी न्याईं इसकी प्रकृति चञ्चल है। जिसके

बटानेके लिये धनके लालसी बन्धु जन उद्यत रहते हैं; और चोर लूटलेते हैं, राजा कर लगा देता है इत्यादि और स्वप्नकी न्याईं इस परिवारका भी कोई भरोसा नही है। यथा दृष्टांत कोई नगर निवासी सिष्ट अपने पुत्रका विवाह करके पुत्र और वधुको लेकर बड़ी धूमधामसे घर आया और उसके रहनेको रंग-महल दिया। वह सिष्ट कुमार अपने रंग महलमे अपनी पत्निके साथ नाना प्रकारके भोग विलास मे निमग्न हुआ, और प्रातःकालके समय उदरमें मेदशूल वा विशूचिका रोगसेमृत्यु होगया। तब उसके संबन्धी इस प्रकार विलाप करने लगे, कि कल हम किस धूम धामसे घोड़ी और डोली लेकर इस गृहमें प्रविष्ट हुए, और आज उसकी अर्थी लेकर उसी गृहसे निकलते हैं हा! शोक अतिशोक!! इत्यादि। उसका सम्पूर्ण मृत्यु संस्कार करके अपने २ ठिकाने बैठ गए और उसकी नवोढ़ा पत्नी घरमें बैठी हुई रात्रिके समय ऐसे विलाप करने लगी कि कलकी रात मेरा प्राण प्यारा पति इस रंगमहलमें इस कुसम शय्या पर तकिया लगाए लेटा हुआ था, और आज वही एक जंगलके विषय श्मशानमें अग्नि चिता पर लेटा हुआ है जिसका गुलाबके फूलकी समान कोमल शरीर अग्निमें जल

रहा है। जिसके पास इस समय कोई मनुष्य नहीं है। जहां जम्बुक और भेड़िये आदि हिंसक जन्तु विचरते हैं। हाय हाय!! मैं अभागी इस रंगमहल में जीती ही बैठी हूं। हा दैव! कल्ह क्या था. और आज क्या हो गया, क्या मुझको स्वप्न आया था इत्यादि, सच है स्वप्नकी न्याई इस परिवारको मानने में क्या संशय रहा, और ओसके बिन्दुकी तरह न जीवनका ही भरोसा है। देखो मेरी सन्तान मेरे सामने चली गई तो मेरे जानेमें क्या सन्देह है। इनके अतिरिक्त मेरे देखते २ अनेक चले गए, और मैं भी अनेकोंके देखते २ चला जाऊंगा। जिन पदार्थोंका हम लोक मोह करते हैं, उनमें से एक पदार्थ भी हमारे साथ जाने वाला नहीं है। साथ जाने वाला केवल मात्र पुण्य और पाप ही है। इसमें इतना ही भेद है कि पुण्यके फल सुख-दाई होते हैं और पापके फल दुःखदाई होते हैं, तो अब ऐसी दुःखकी मूर्ति सन्मुख देखता हुआ भी मैं मिथ्या सुखोंमें मन लगाऊं, यथा किसी पंडित ने श्लोक में कहा भी है।

श्लोकः—व्याघ्रीवतिष्ठतिजरा परितर्जयन्ति,
रोगाश्चशत्रव इव परिहरंतुदेहम्।

आयु परिश्रवति भिन्नघटाद्यवाम्बु,
तथापि लोकोहितमाचरतिती चित्रम् ॥१॥

अर्थ—मनुष्य के शरीर को जरा विघाड़ी की न्याईं ताड़ती है, और नाना प्रकार के रोग शत्रुकी न्याईं देहके वलको हरते हैं, फूटे घड़े के जल की न्याईं आयु नित्य प्रति घटती रहती है। ऐसा होने पर भी लोक सुख मानते हैं, वड़ा आश्चर्य्य है, अर्थात् इस मोहरूपी अविद्या के नसे की लहरो मे पड़कर प्राणी भूलते है, तो क्या इस वर्तमान अवस्था को देखता हुआ मैं भी धर्म से शून्य रह जाऊं। नही नहीं, कदापि नहीं,अव मुझे शेप आयु धर्मके अर्पण करनी उचित है, राजा की यह दशा और विचार देखकर कई राजा और राजकुमार वैराग्यवान हो गए। तव मन्त्रियो ने प्रार्थना की, कि महाराज छोटे छोटे परिवार वाले मनुष्य भी अपने घरों का समुचित प्रवन्ध की चिन्ता करते है, तो क्या आप अपने सम्पूर्ण भरतखण्ड के प्रवन्ध की चिन्ता न करोगे ? यह सुनकर चक्रवर्त्ती राजा सागर ने लम्बी सांस लेकर अश्रु परिप्लुत नेत्रो से रोकर कहा कि मेरे सारे पुत्र विना संतान ही अकाल मृत्यु होकर मिट्टी में समा गए,तो अव राज्य की वाग डोर किसके हाथ सोंपूं।

तब मन्त्री बोले—कि आप सत्य कहते हैं, परन्तु आप अन्तःपुर में निज दासियों द्वारा रानीयों से पूछकर निश्चय करलें, कदाचित् उनमें से कोई गर्भवती हो। तब ऐसा करने पर एक कुमार की रानी से समाचार मिला, कि छे मास का गर्भ है। तब राजा ने उस के गर्भ को ही राज तिलक दे दिया, और आप राज्य को छोड़कर अनेक राजा और राजकुमारों सहित संयम को धारण किया। उधर रानी के गर्भ अवधि पूरी होने पर पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम भागीरथ रखा गया। भागीरथ युवा होने पर सिंहासन पर बैठा, और वह उसी गंगा की नहर को लाया जिसके तट पर उसके पिता पितामह और पितृव्य (चाचे) मर गए थे, यही कारण है कि इस गंगा की नहर को भागीरथी कहते हैं इत्यर्थः। श्रीमहासतीजी महाराजके ऐसे प्रभावशाली वैराग्योत्पादक व्याख्यान को सुनकर बहुत से मनुष्यों को वैराग्य उत्पन्न हुआ, जिनमें सोहनलालजी श्रावक तो वैराग्य रूप ही हो गए।

एक दिन श्रीमती महासती पार्वतीजी महाराज से सोहनलालजी श्रावक ने प्रार्थना की कि महाराज मेरा मन संयम लेने को चाहता है, परन्तु संयम की

साधना अति कठिन है, इससे मन डरता है, कि कैसे साधना की जाएगी। सतीजी महाराजने उत्तर दिया कि भाई देख, हम कन्याएं (स्त्रियें) संयम को निभा रही हैं। तुम तो पुरुष हो, कठिन वृत्तिसे क्यों डरते हो, तुम को संयम पालना हमारी अपेक्षा सुगम है, तव सोहनलालजी वोले, अस्तु इस वात का भी विचार न किया जाय, परन्तु मेरी सगाई हुई हुई है, इसलिये मेरे सम्वन्धियों को अत्यन्त दुःख और क्लेश होगा। सतीजी महाराजने कहा, अरे भाई! स्त्री आदिक के वन्धन तो व्यर्थ हैं, जैसे कि तुलसीदास कह गए हैं:—

फूला फूला फिरत है, आज हमारा व्याह।
तुलसी गाय वजायके, दिया काठ में पायँ॥

क्योंकि पुरुषको स्त्री का वन्धन होता है, और स्त्री को वालकों का, इसलिये भाई! तुम इस वन्धन में मत पड़ो, क्योंकि विषय भोग आदि सुखों से ही मनुष्य जन्म की वड़ाई नहीं है, इनको तो पशु भी जानतेहैं, परन्तु धर्म्मको पशु नहीं जान सकते, इसलिये मनुष्य का मवमे वड़ा कर्त्तव्य धर्म ही का करना है, अर्थात् मनुष्य जन्मकी भलाई और वुराई धर्मके करने व न करने पर ही निर्भर है। तुम लोगों ने अनेक

जन्म भोगों के निमित्त लगा दिए हैं। एक जन्म धर्म्म के निमित्त ही लगा देना चाहिये। इन वचनों से सोहनलालजी के मन की निर्बलता दूर होगई, और संयम लेनेका निश्चयकर लिया, और कहा कि माता पितासे छुटकारा किस प्रकार होगा, तो सतीजी महाराजने कहा, कि उनसे विधि पूर्वक आज्ञा मांगो, इस शिक्षाको सुनकर सोहनलालजी हाथ जोड़ वन्दना कर अपने घरको चले गये और यथा अवसर माता पिता से प्रार्थनाकी, कि यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं संयम धारण करूं। इस बात को सुनते ही माता पिता व्याकुल होगए, और कहा, कि पुत्र! तू हमें प्राणों से अधिक प्यारा है, भला तुमको हम साधु कैसे होने देंगे। हम तो तेरा विवाह करके कुल की वृद्धि देखना चाहते हैं। तुझसे बड़ी बड़ी आशाएं रखते हैं, तुझको हमने पाल पोष कर बड़ा किया। लिखाया पढ़ाया, उसका प्रतिकार (बदला) यहहै कि तू हमको छोड़कर चला जाए, यह सुनकर सोहनलाल जी ने प्रार्थना की, कि पिताजी! किसी का पुत्र जूआ आदि व्यसनों में पड़कर कुलमें कलङ्क लगाता है, किसी का धन नाश करता है, कोई धर्म्म गंवाता है, कोई मृत्यु का ग्रास होजाता है, तब उसके माता

पिता क्या कर लेते है। मैं तो आपकी शिक्षाओं को सफल करना चाहता हूं, इत्यादि प्रश्नोत्तर बहुत समय तक होते रहे और सतीजी महाराज पसरूर से विहार करके स्यालकोट पधारी, और सॅव्वत् १९३२ विक्रमी का चातुर्मास्य स्यालकोट का ही स्वीकार किया ॥

——:o:——

स० १९३३ का चातुर्मास्य स्यालकोट में ।

आपका चातुर्मास्य सं० १९३३ का स्यालकोट मे हुआ इन दिनोमे वहां लाला सौदागरमलजी व लाला तावामलजी भक्त आदिक जैन शास्त्रो के श्रोता, और बहुत से "श्रावक धर्म के प्यारे लाला रूपाशाह,लाला जट्टुशाह,लाला पालाशाह आदिक विद्यमान थे, उन दिनो मे आत्मारामजी ने जैन मुनिओं का सनातन वेष अर्थात् मुख वस्त्रिका को उतारा ही था और उसके स्थान पर रूमालके तौर पर एक छोटेसे कपड़ेके टुकड़ेको हाथ मे रखा ही था और श्वेताम्बरी कहलाते हुए भी जैन धर्मके सूत्रोसे विरुद्ध पीताम्बरी मूर्ति पूजक नया मत पकड़कर पीला वेप पहना ही था इसलिये नगर नगर और स्थान स्थान पर इसी नए मतका चर्चा

होने के कारण स्यालकोट के श्रावक भी श्री महा-
सतीजी महाराजके चरणोंमें मुख वस्त्रिका और
चेइए शब्द के सम्बन्धमें ही प्रश्नोत्तर करते रहते
थे, श्री महासतीजी महाराज सूत्रानुसार और युक्ति-
योंसे उनका पूरा पूरा समाधान करती थीं। सुतरां
वे लोग आपके युक्तियुक्त उत्तरोंको सुनकर
अपने धर्मसे भली भान्ति परिचित हो गए
और संशयरूपी रोगसे निवृत्ति पाकर प्रसन्नता
पूर्वक आपकी शतमुख प्रशंसा करने लगे, और
आश्विन मासमें पसरूर वाले दूलोरायजी और
सोहनलालजी भी आपके दर्शन करनेको आए और
सोहनलालजी ने प्रार्थना की कि महाराज आपकी
कृपासे मेरा मनोर्थ सिद्ध हो गयाहै अर्थात् मैंने अपने
माता पितासे बहुत विनती करके संयम लेनेकी
आज्ञा लेली है और चतुर्मासेके पश्चात् श्री श्री श्री
पूज अमरसिंहजी महाराजके चरणोंमें दीक्षा धारण
करूंगा । सतीजी महाराजने कहा कि बहुत अच्छा
अपने जीवनको धर्ममें अर्पण करो फिर उन्होंनें चतु-
मासके पश्चात् मृगशर (मग्घर) शुदि ५ सं० १९३३
में अमृतसरमें तीन और वैरागिओंके सहित बड़े
महोत्सवसे परमपूज्य श्री१००८अमरसिंहजी महाराज

के शिष्यानुशिष्य श्रीमान् मुनि धर्मचन्दजी महाराज के नाम दीक्षा धारणकी और श्रीपूज अमरसिंहजी महाराजके चरणोंमे ज्ञान और क्रियाकी विधिको सीखना आरम्भ किया, इनका विस्तृत वर्णन सं० १९५१के वर्णनमे आएगा। और आपनेभी चातुर्मासा की समाप्तिके पश्चात् स्यालकोटसे विहारकर दिया और कई एक गांव नगरोंमें धर्मोपदेश करती हुई खरड़ ज़िला अंबाला में पधारी।

सं० १९३४ का चातुर्मास्य खरड़ में।

आपका चतुर्मासा सं० १९३४ वि० खरड़ ज़िला अम्बाला मे स्वीकार हुआ इस चतुर्मासेमे धर्मका बड़ाही उद्यम रहा आपने ९ दिनका एक व्रत और दो साध्वीओंने एक एक मास क्षमणका व्रत किया और वहांके श्रावकोने भी यथाशक्ति दया दानमे तन मन धन लगाया, अर्थात् कई श्रावकों ने फल फूल हरी सब्ज़ी आदि रसोंका त्यागकर दिया और कई सेवकोंने ब्रह्मचर्य्यको जीवन भरके लिए धारण किया और कई पुरुषोने परनारीका त्याग आदि धर्म धारण किया, इसके अतिरिक्त कई मनुष्योंने मांस मद और हुक्का पीने तकका त्याग किया और कई स्त्रीओंने खटमल, पिस्सू, भूंड, बिच्छू, जूं, लीख आदिक

छोटे छोटे जीवों तकके मारनेका त्याग किया। इस स्थान पर श्री श्री १००८ जैनाचार्य्य ज्ञानके भण्डार क्षमाके सागर पूज श्री मोतीरामजी महाराजका भी चतुर्मासा था उनकी कृपासे वहां दया धर्मका बड़ा ही चर्चा रहा और श्री पूजजी महाराजके पास आपने इस चतुर्मासेमें निम्नलिखित दो सूत्रों की धारणा की--

(१) सूत्र जीवाभीगम (२) सूत्र जम्बु दीप पन्नत्ती (प्रज्ञप्ती)

पाठक ! खरड़के लोग कैसे भाग्यवानथे कि यहां पर श्री श्री श्री पूज मोतीरामजी महाराज व श्री श्री श्री महासती पार्वतीजी महाराजका चतुर्मासा हुआ। चतुर्मासाके समाप्त होने पर आप विहार करके माछीवाड़ा लुधियाना फगवाड़ामें धर्मोपदेश करती हुई जालन्धर पधारीं और श्रावकोंकी विनती पर आपने सं० १९३५ का चातुर्मास्य जालन्धर नगरका स्वीकार कर किया।

सं० १९३५ का चातुर्मास्य जालन्धर में।

आपका सं० १९३५ का चतुर्मासा जालन्धर नगर में हुआ। यहांके श्रावक श्राविकाओंने धर्म ध्यानमें यथाशक्ति अच्छा उद्यम किया परन्तु इस

चतुर्मासेमें आपको उपदेश देनेका पर्य्याप्त समय नहीं मिला, क्योंकि श्रीमती सती परमेश्वरीदेवीजी को ज्वर हो गयाथा इसलिये आपका अधिकांश समय उनकी सेवा सुश्रूषामें लगताथा परन्तु शोक! उस साध्वीका देहान्त चतुर्मासामें ही हो गया। चतुर्मासा समाप्त होनेके पश्चात् आप जालन्धरसे विहार करके लुधियाना मालेर कोटला आदि क्षेत्रो में दया धर्मका उपदेश करती हुई फिर हुश्यारपुर पधारीं। हुश्यारपुरके भाईयों व बाईयोंको आपके वहां पधारनेसे बड़ी ही प्रसन्नता हुई सबने आपके चरणोमे चतुर्मासा करनेकी विनतीकी और आपने उनकी विनती पर सं० १९३६ का चातुर्मास्य हुश्यार पुर का स्वीकार किया।

सं० १९३६ वि०का चातुर्मास्य हुश्यारपुर में

आपका संवत १९३६ वि० का चतुर्मासा हुश्यार पुर मे हुआ। और आत्मारामजी संवेगी के शिष्य विशनचंदजी का चातुर्मास्य भी वहीं था। और इन दिनो प्रायः मूर्ति पूजन व मुख वस्त्रिका और तीर्थयात्रा आदि विषयो पर जैनी भाईयोंका परस्पर विवाद था इसलिये इधरसे लाला पिण्डीमलजी व

लाला हेमराजजी जो धर्मके बड़े प्रेमी थे और उधर से लाला नत्थुमल चौधरी व नत्थुमल सराफ आदि जो आतमारामजी के सेवक थे आपसमें ऊपर लिखे विषयों पर प्रायः प्रश्नोत्तर किया करते थे परन्तु बिशनचन्द संवेगीने किसी भी प्रामाणिक सूत्र द्वारा जड़ मूर्ति पूजा व जड़ तीर्थयात्रा और मुख वस्त्रिका को हाथमें रखना सिद्ध नहीं किया और श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सूत्र प्रश्न व्याकरण और ग्रन्थ सन्देह दोलावलिके अनुसार मूर्ति पूजाका खंडन कर दिखाया, और सूत्र निरावलिका भगवती और सूत्र ज्ञाता धर्म कथाके अनुसार जड़ तीर्थयात्राका खंडन और संयम यात्राका मंडन कर दिखाया और सूत्र महानशीथ से मुख वस्त्रिका का मुख पर बांधना सिद्ध कर दिखाया, इस पर भाईयों व बाईयोंको बहुत प्रसन्नता हुई, और दया दान शील सन्तोष तप भावनारूप धर्मका बड़ा प्रचार होता रहा बाईयोंने पचरंगी तपस्या की अर्थात् १ दिनके ब्रतसे ५ दिन के ब्रत तक बहुत ब्रत किए और स्वयं श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने भी १० दिनका एक ब्रत किया वहां आपके प्रभावशाली व्याख्यानोंने श्रोताजनों के हृदयों पर इतना असर डाला कि लाला मिलखी

राम ओसवाल और उसकी माता वाई आसादेवीजी और अमृतसर वाली वाई निहालदेवीजी जिनका नाम अव श्री नंदकौरजी था जो लाला हेमराज साहूकार हुश्यारपुर निवासीके पुत्रकी धर्मपत्नी विधवा थी और वाई जीवीजी ला० कन्हैयालाल जि० करनाल थानेसर निवासीके भतीजेकी धर्मपत्नी विधवा जो हुश्यारपुर में आपके दर्शनोंको आई हुई थीं चारों हीकों वैराग्य होगया। चतुर्मासेके समाप्त होने के पश्चात् आप वहांसे विहार करके छावनी जालन्धर में पधारीं।

छावनी जालन्धर में दीक्षा उत्सव।

इस समय जैनाचार्य्य श्री श्री १००८ पूज अमरसिंह जी महाराज भी छावनी जालन्धर में विराजमान थे, आपने उनके दर्शन किये और वहां पर लाला मिलखीमल जी अपनी माता व वाई निहाल देवी जी और वाई जीवीजी सहित चारों ही दीक्षा लेने के लिए उपस्थित हो गए।

छावनीके श्रावक व श्राविकाओं ने विनती की कि दीक्षाका महोत्सव यहीं रचाया जावे, सुतरां उनकी प्रार्थना स्वीकारकी गई और वहांकी विरादरी

की ओर से मग्घर शुदि २ की तारीख़ दीक्षाकी नियत की गई। श्रीमती निहालदेवी जीने कई सहस्र रुपये के भूषण अपने निज संबंधीओं में स्वयं बांटके दे दिएथे और अपनी कई सहस्र रुपएकी संपत्ति लाला रलेशाहजी गोटा वाला अमृतसर निवासिकों जो उनकी ननद के पुत्र थे देदी थी और एक सहस्र रुपया रोक स्थानक अमृतसरके लिये दियाथा और लग भग २ सहस्र रुपया दान पुण्य व अपने दीक्षा महोत्सव पर लगाया। नियत तिथि पर बहुत से नगरों के श्रावक व श्राविका बड़े हर्ष से इस महौत्सवमें सम्मिलित हुए, दीक्षा महोत्सवकी सवारी वैराग्यवान मिलखी राम और श्रीमतीओं सहित बड़े ओत्सवसे भजन मंडलीओं के पवित्र नगरकीर्तन के साथ बाज़ारों में जय जय कारकी घोषणा करती हुई बड़ी धूम धामसे प्रवृत्त हुई (गुज़री) और मिलखीराम व श्रीमतिओं पर से रुपया निछा-वर करके चारों ओर बखेरते हुए सर्कारी सराय में जो रेलवे स्टैशनके साम्हने है पहुंचे। इस पवित्र स्थान में उन चारोंको दीक्षाका पाठ पढ़ाया गया। इसके पश्चात् आप वहांसे विहार करके। लुधियाना जगराओं आदि नगरोंमें अपने उपदेशों से

दया धर्मकी वर्षा करती हुई अमृतसर पधारी, उस समय वहां श्रीपूज अमरसिहजी महाराज विराजमान थे, आपने उनके दर्शन किये और उन्होने आपको यह आज्ञा दी कि आप इस वर्ष लाहौर में चतुर्मासा करे क्योंकि वहां किसी साधु का लगभग ४० वर्ष मे कोई चतुर्मासा नही हुआ जिसका परिणाम यह हुआ कि लाहौर के श्रावक व श्रीवका धर्म ध्यानमे शिथिल हो रहे है।आपने उनकी आज्ञानुसार स० १९३७ का चातुर्मास्य लाहौर का स्वीकार किया ।

सं० १९३७ का चातुर्मास्य लाहौर में।

आप सं० १९३७ का चतुर्मासा लाहोर में हुआ वहां प्रतिदिन आपके उपदेश होने लगे जैन सूत्रोकी अमृत रूपी वाणी की इतनी वर्षा हुई कि जो ज्ञान मय पौदे जैन श्रावको के हृदयो में उपदेशाभाव से सूखे हुए थे वे फिर हरे होकर लहराने लगे अर्थात् जैन धर्म के नियमोको जान कर धर्ममें दृढ़ होगए जिसका परिणाम यह हुआ कि सब एक मन होकर धर्मध्यानमे प्रयत्न करने लगे जिसमे जैन धर्म का बड़ा ही उद्योत हुआ ।

चतुर्मासाकी समाप्ति पर आप वहां से विहार करके नगर नगरमें धर्मका प्रचार करती हुई रियासत जम्बुमें पधारीं और वहांके भाईयोंकी धर्म रुचि देख कर उनकी विनती पर सं० १९३८ का चतुर्मासा भी स्वीकार किया ।

सं० १९३८ का चातुर्मास्य जम्बु में दूसरीबार

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९३८ का चतुर्मासा दूसरीबार जम्बू रियासत में हुआ वहां के श्रावक श्राविकाओं ने धर्म ध्यान में बड़ा ही उत्साह प्रकट किया । इस चतुर्मासेमें श्रावक श्राविकाओंने दया और पोसा बहुत किए (प्रश्न:) दया पोसा किस वृत्तिको कहते हैं (उत्तर:) दया और पोसा कहतेहैं कि धार्मिक लोक एकएकान्त मकानमें एकत्र होकर एक दिन रातके लिए अपने घरका कामकाज अर्थात् सर्वारम्भको छोड़कर ब्रह्मचर्य्य वृत्तिमें रहकर पठन पाठन करें व आत्माके सुधारके लिये धर्मचर्चाकरें अर्थात् धर्मपरनिश्चय बधानेके लिये प्रश्नोत्तरकरें व भजनस्तोतर गानकरें, और भोजन भी उसी मकानमें अपने व अपने भाइयों के गृहोंसे अथवा बाजारसे मंगवाकर करें ऐसी वृत्तिमें रहनेको दया कहते हैं और जब इस प्रकार

की उपरोक्त-वृत्तिमें रहकर भोजन और जल आदि चारों-आहार का भी त्यागकर दिया जावे; ऐसी वृत्तिको पोसा व्रत कहते हैं; दया और पोसा की वृत्ति अधिकांश में समान ही है, केवल भोजन जल के करने और न करने का ही अन्तर है। एक श्राविकाने एक व्रत २१ दिन का और एकने एक व्रत ३० दिनका और एक ने एक व्रत २२ दिनका और कई बाईओं ने दस,दस दिन, आठ,आठ दिन के व्रत किये और कई भाई बाईयों ने पांच पांच चार चार तीन तीन दो दो और एक एक दिनके व्रत किए और अपने लागियों और अनाथों को दान भी जी खोलकर दिया, और कई एक श्रावक श्राविकाओं ने फल फूल आदिक हरी सबजी का खाना आयु पर्य्यन्त छोड़ दिया, कई एकने तो मुरब्बा आचार तक का खाना भी छोड़ दिया (रसों का त्याग) कर दिया। कई स्त्री और पुरुषों ने आयु भरके लिये ब्रह्मचर्य्य की वृत्तिको धारण किया, और जैनमें जो आठ दिन पर्य्यूषण......पर्व के होते हैं उनमें साधु साध्वी और श्रावक श्राविका सबजो अपनी भूल से कोई नियम व्रत में दोष लगा समझे तो उस भूल का और उन दोषों का प्रायश्चित करते हैं, अर्थात् दान

और तप की वृद्धि करके शुद्ध होते हैं। श्रावकों ने इन आठों ही दिनों में नगर के समस्त भटभुञ्जों की दुकानें उनको क्षति के रुपये देकर बन्द करवादीं. और नगर के समग्र कसावों और माळीओं की दुकाने भी उनको खर्च देकर बन्द करवाने को थे। जब कि लाला नन्द शाह व लाला निहाल शाह आदि साहूकारों ने जिनकी सरकार में चलती थी सरकार के यहां से सदा के लिये आज्ञा दिलवादी, कि पर्य्यूषण पर्व के आठों ही दिनों में अपनी २ दुकानों को बन्द रक्खें और किसी पशु को न मारें। इस महान् उपकार का नगर में बड़ा ही यश फैला कि यह जैनियों का पर्व कैसा उत्तम है कि जिसमें इतने जीव घात का पाप दूर हुआ है, अस्तु इस प्रकार के उपकार आपके ही आगमन का फल था।

आपकी धर्म चर्चा जम्मूके चातुर्मास्य में।

जब श्रीमती पार्वतीजी महाराजके दयामय व्याख्यानों से नाना प्रकारके उपकार हुए और आपकी प्रशंसा प्रत्येक व्यक्ति के मुख से होने लगी तो अन्य मतोंके भी बहुत से लोग आपकी सेवामें उपस्थित होने लगे और अनेक प्रकार की चर्चा

करते रहे जिनमे से एक चर्चा नीचे लिखी जाती है। एक दिन हिज़हाइनेस श्रीमहाराजा साहब बहादुर जम्मू व काश्मीर नरेश के मन्दिरके पुजारी पण्डितजी मिसरी के कूज़ों का थाल और एक मलमल का थान और कुछ रोक रुपये अपने साथ लाकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके दर्शनार्थ आए और वे सब वस्तुएं आपकी भेटा कीं। इस पर आप ने कहा कि हम जैन के साधु साध्वी इन पदार्थों की भेट नहीं लेते हैं, हमारी भेंट तो यह है—

(१) मन से सत्य धर्म पर निश्चय लाना।

(२) वचन से सत्य धर्म की स्तुति करना।

(३) काया से धन और कामिणी के त्यागी साधुओं को नमस्कार करना।

(४) हिंसा, झूठ, चोरी अर्थात् राज-द्रोह और धर्म विरुद्ध कार्य्यों का त्याग करना अथवा तृष्णा घटाने के व दया के लिये किसी फल आदिक का त्याग कर देना। इत्यादि—

यह सुनकर पण्डितजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले कि इन अर्पित पदार्थों को अब हम क्या करें। इस पर आप तो मौन ही रहीं, परन्तु उस समय जो लोग विद्यमान् थे, उन्हों ने यह कहा कि आप

इन्हें मन्दिरमें ही चढ़ा देवें. तब उन्होंने वे सब वस्तुएं मन्दिर में ही भिजवादीं. और उन्होंने आप से कुछ प्रश्न पूछने की अनुमति मांगी, आपने कहा पूछ सकते हैं।

प्रश्न पण्डितजी—आपके मतमें मूर्त्तिपूजन से मोक्ष है किंवा नहीं ?

उत्तर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज—जैन सिद्धान्त में मोक्ष मूर्त्ति-पूजासे नहीं आत्मज्ञानसे है।

पण्डितजी—सत्य है हमारे मत में भी कहा है कि यावत्काल ज्ञान नहीं। तावत्काल मूर्त्तिपूजन है, परन्तु जब तक ज्ञान न हो तब तक तो मूर्त्तिपूजन चाहिए। गुड़ियों के खेल की न्याईं, जैसे छोटी बालिकाएं गुड़ियों के खेल में मन लगाती हैं, परन्तु तरुण होने पर जब विवाह होकर ससुराल में जाती हैं, तब गुड़ियों के खेल स्वयमेव ही छोड़ देती हैं। इत्यर्थः—

श्रीमहासतीजी—हां हां अज्ञान अवस्था की क्रिया तो ज्ञान अवस्था में स्वयमेव ही छूट जाती है, परन्तु क्या आप मूर्त्ति-पूजकों में मूर्त्ति पूजते २ जब ज्ञान होजाता है तब मूर्त्ति-पूजा छोड़ देते हैं।

जैसे वालिका युवती होकर गुड़ियों का खेल छोड़ देती हैं।

पण्डितजी–तनक चुप रहकर बोले कि छोड़ना तो चाहिए।

महासतीजी–मैंने तो बूढ़े बूढ़े मूर्त्तिपूजक देखे हैं, परन्तु किसी को अन्त समय तक भी मूर्त्तिपूजन छोड़ते नहीं देखा जिससे स्पष्टतया सिद्ध होता है कि उनको मूर्त्ति-पूजा से ज्ञान ही नहीं होता, यदि ज्ञान होजाता तो मूर्त्ति-पूजा छोड़ देते, क्योंकि आप लोकों ने इस बात को पहले स्वयं स्वीकार किया है कि यावत्काल ज्ञान नही तावत्काल मूर्त्ति-पूजा है। इत्यर्थः—

पण्डितजी–प्रसन्नता पूर्वक मौन रहे।

पाठकगण! इस विषय की विस्तार पूर्वक चर्चा ज्ञान दीपिका और सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन पुस्तक में लिखी है, जिनको पश्चात् श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सं० १९४६ वि० में ज्ञान-दीपिका और सं० १९६१ मे सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन रचा है, उसमें मे देख सकते हैं॥

पण्डितजी के अन्तःकरण और आस्तिक नास्तिक पर प्रश्न।

फिर उन्हीं पण्डितजी ने श्रीमहासतीजी महाराजसे प्रश्न किया कि आपके मतमें अन्तःकरण को ही जीव माना है अथवा जीव कोई अन्य है, उत्तर महासती पार्वतीजी—अंतःकरण तो जड़ है और जीवात्मा चेतन है दोनों एक कैसे होसकते हैं, ऐसा प्रश्न तो नास्तिक किया करते हैं।

पण्डितजी—नास्तिक तो वेदों के निन्दक होते हैं जैसे हमारी मनुस्मृतिमें लिखा है:—

"नास्तिको वेद निन्दकः"।

श्रीमहासतीजी—ऐसे तो और भी कह देंगे कि "नास्तिको जैन निन्दकः" "नास्तिको ग्रन्थ निन्दकः"। "नास्तिको पुराण निन्दकः" तो यह आस्तिक नास्तिकपन क्या हुआ यह तो एक झगड़ा हुआ। इसलिए आस्तिक और नास्तिक दोनों शब्दों के शब्दार्थ का ही विचार करना उचित है। यथा पण्डितजन कहते हैं:—

परलोकादि आस्तिमतिर्यस्यास्तीति आस्तिकः।
नास्तिमतिर्यस्यास्तीति नास्तिकः॥

अर्थात्—जड़, चेतन, आत्मा, परमात्मा, लोक

परलोक, वन्ध, मोक्ष इनका जो अस्तित्व मानें वे आस्तिक हैं, और जो इन पदार्थों के अस्तित्व को न माने वे नास्तिक हैं।

इस प्रकारके प्रश्नोत्तरों से श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सिद्धकर दिया कि अन्तःकरण तो जड़ है और जीवात्मा चेतन है। इसका विस्तृत वर्णन आपने अपने रचे हुए सम्यक्त्व सूर्य्योदय जैन ग्रन्थ में लिखा है जो पश्चात् सं० १९६१ वि० में छपा है। वहां से देख सकते हैं।

अपितु आपके उपरोक्त सन्तोषजनक उत्तरोंको सुनकर पण्डितजी अन्य पण्डितो व श्रोताओं सहित वहुत ही प्रसन्न हुए और धन्यवाद देते हुए प्रमाण करके चले गए।

और आपने इसी प्रकार ज्ञान ध्यान का प्रकाश करते हुए चतुर्मासेके समाप्त होने पर विहार कर दिया।

आपका जम्मू से विहार करना।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने जम्मू से स्यालकोट की ओर विहार कर दिया, और जम्मूके श्रावक व श्राविका दो सौ के लगभग नवां शहर तक जो जम्मू के ९ कोस दूर है, आपके पहुंचाने के लिए सेवामें साथ गए। इस पर स्यालकोट के

श्रावक व श्राविका भी आपकी अभ्यर्थना (अगवानी) के लिए अनुमान अढ़ाई सौ की संख्यामें नवांशहर में आ उपस्थित हुए। इस स्थान पर आप ने अहिंसा परमोधर्म्मः अर्थात् जीव दया के विषय पर एक अत्यन्त मनोहर व्याख्यान दिया। नवां शहरके लोग भी व्याख्यान सुनने के लिए एकत्र होगए थे, और सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए उनमें से कई मनुष्यों पर तो इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हों ने उसी समय जीव घात (निरापराधी पशु पक्षी को जान बूझकर मारनेका त्यागकर दिया) और कईयों ने मांस मदिरा आदि का भी त्यागकर दिया। वहां से चलकर आप स्यालकोट नगरमें विराजीं, और कुछ दिन अपने पवित्र उपदेशों की वर्षा से वहां के निवासियों में धर्म ध्यान का प्रचार करके विहार कर दिया और गुजरांवाले में पधारीं। वहां आपके वैराग्य भरे व्याख्यानों से लाला निहालचन्द ओसवाल पुजेरा की पुत्री विधवा बाई कर्मदेवीजी को वैराग्य हुआ और दीक्षा लेने की इच्छा करके अपने पितासे आज्ञा मांगी, जिन्होंने बहुत विवाद के पश्चात् जब उसको अपने सङ्कल्पमें पक्का पाया तो आज्ञा देदी।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज वहांसे विहार करके जब अमृतसर में विराज चुकी, तब कर्मदेवी जी भी उनके चरणों में आ उपस्थित हुई। वहां के श्रावक व श्राविकाओंने बड़े हर्षके साथ उनकी दीक्षा की तारीख पौष वदी ८ नियत की और बड़े उत्साह से दीक्षा दिलवादी। अमृतसरसे विहार करके अनेक नगरों में दया धर्म की ध्वजा फहराती हुई आप हुश्यारपुर पधारी, और सं० १९३९ का चातुर्मास्य वहीं का स्वीकार हुआ।
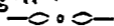
पाठकवर्य्य! सं० १९३८ वि० में जैनाचार्य्य महाराज श्री श्री १००८ पूज अमरसिंहजी महाराज का देवलोक पयान हुआ था, इसलिये उनकी संक्षिप्त जीवनी भी लिख दीजाती है॥

श्री १००८ पूज अमरसिंहजी महाराजकी संक्षिप्त जीवनी।

आपके पिताका नाम श्रीमान लाला बुधसिंह जी और माताजीका नाम श्रीमती कर्मदेवीजी था। आपके पिताजी अमृतसरके निवासी ओसवाल (भावड़ा) के एक उच्च और सद्वंशमे से थे उनका व्यापार जवाहरातका क्रय विक्रय का था।

आपका जन्म सं० १८६२ वि० में हुआ था आपके माता पिताने आपका पालन पोषण बड़े लाड प्यार से किया और बड़े प्रेमसे विद्या पढ़ाई। आप अपने माता पिताके बालक पनसे ही आज्ञा पालक थे और दुकान व घरके काम करनेमें निपुण थे और दया दान नियम सामायिक सम्बर पूजा आदि धर्म ध्यानभी प्रत्येक उचित व नियत अवसरों पर करते थे। आपका विवाह एक उत्तम ओसवाल वंशमें स्यालकोटमें किया गया था आपके तीन पुत्र और दो कन्याएं थीं परन्तु शोक ! आपके दो पुत्र तो बहुत ही छोटी आयुमें काल कर गए और तीसरा जो बड़े प्यारसे पला था और कुछ शिक्षा भी पा चुका था वहभी ८ वर्षका होकर इस नश्वर संसार से चला गया जब तीनों ही एक एक करके आप के देखते २ कूंच कर गए तो आपके मन पर जगतकी अस्थिरताका सच्चा चित्र (फोटो) अङ्कित होगया और आपने समझ लिया कि जगत के संपूर्ण पदार्थ अनित्य हैं, जब मेरे पुत्र मेरे देखते २ ही गुम हो गए हैं तो मैं क्या जीता ही रहूंगा मैं भी किसी दिन चला जाऊंगा इस जीवनका भरोसा ही क्या है। किसीने सच कहा है:—

दुःख सागर है यह संसरा ।
भूला है यह मन मतवारा ॥
निरानन्द वहुतर है शोक ।
एक दिन जाना है पर लोक ॥

क्योंकि यह प्रकृतिका नियम है कि पुण्यवान प्राणीओको स्वयमेव अच्छा संयोग मिल जाता है इस लिए जव आप एक वार जवाहरातके व्यापार को रियासत जयपुरमें पधारे तो वहां आपको पुण्य योगसे श्री १००८ पूज श्री रामलालजी महाराजके दर्शन हुए, जव आपने उनका व्याख्यान सुना तो आपका मन जो पहलेहीसे संसारके अनित्य पदार्थों से उदासीन था उनके परमोत्तम उपदेशसे औरभी अधिक उदास होगाया अर्थात् सांसारिक दुखोसे वचनेके और मोक्ष साधन के उपाय सुन कर इतने विरक्त हो गये कि आपने दया, सत्य, दत्त (अचौर्य) व्रह्मचर्य्य और अपरिग्रह इन पांचो महां व्रतों (यमो) के तीन करण तीन योगसे पालन करने का दृढ निश्चय कर लिया और श्री श्री १००८ पूज श्री रामलालजी महाराजसे अपने मनका विचार प्रगट किया और प्रार्थना की कि आप देहली पधारने की कृपा करें और मैं भी घरके प्रवंधसे निवट कर

दीक्षा धारण करनेके लिये देहली आजाऊंगा अस्तु उधर स्वामी रामलालजी महाराजने वहांसे देहली विहार कर दिया और इधर श्री अमरसिंहजीने अमृतसर आकर सब आभूषणादिकों को अपनी कन्याओंमें बांट दिया और लाला कृपाराम अमृतसर निवासी जो आपकी कन्याका पुत्र था उसको अपनी सम्पत्तिका अधिकारी बना दिया । इस प्रकार अपने घरका प्रबन्ध करके आप वहांसे देहली आगए और ३६ बर्षकी आयुमें वैशाख वदि २ सं० १८९८ वि० में श्री श्री श्री पूज रामलालजी महाराजके चरणोंमें दीक्षा धारण करली और ४० वर्ष तक नगर नगरमें सिंहनादकी ज्युं दया, क्षमा सत्यादि धर्मका उच्चारण करते हुए विचरते रहे । आपने धर्म पक्षमें बड़े बड़े उपकार किये अर्थात् व्यर्थ हानिकारक रीतियां यथा विवाहके अवसर पर आतिशबाज़ी चलाना रण्डीओं और भण्डोंका नचाना चावलोंकी मांड (पिच्छ) को मोरीओंमें बहाना इत्यादि वंद करादीं और आपने तपस्या भी ३३ ब्रत तककी की अन्तमें ७६ वर्ष २ मासकी आयु पूरीकर सं० १९३८ वि० आषाढ वदि द्वितिया के दिन अमृतसरमें स्वर्ग वास होगए ।

पाठक ! श्री १००८ पूज अमरसिंहजी महाराजकी जीवनी हिन्दी भाषामें पृथग् छप चुकी है, इस लिये यहां संक्षेपसे ही वर्णन किया है।
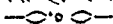
सं० १९३९ का चातुर्मास्य हुश्यारपुर में दूसरी वार।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९३९ का चतुर्मासा हुश्यारपुरमें दूसरी बार। इस चतुर्मासे में आपके उपदेशों से कई जनोंने वेश्या गमन जूआ रमन और हुक्का का भांगका पीना छोड़ दिया और कई एक मतोंके लोगोंने जविघात (शिकार) मांसाहार मद्यपान आदि पाप कर्मोका सच्चे हृदयसे त्याग कर दिया इसके अतिरिक्त और वड़े उपकार हुए यथा विरादरी के अनैक्यको मिटाकर एकता करा कर शान्ति स्थापन करना इत्यादि। चतुर्मासे की समाप्ति पर आपने देहलीकी ओर विहार कर दिया रास्तेमें नगर नगर गाओं २ में धर्मोपदेश करती हुई देहली पधारीं। अपितु आप वहुत चिरके पश्चात् देहली पधारी थीं इस लिए वहांके श्रावक श्राविकाओं ने आपके शुभ आगमन पर अति हर्ष प्रकट किया अर्थात् किसीने सम्यक्तकी धारणा

की किसी ने वारह व्रत धारण किये और आप दान धर्म, ब्रह्मचर्य धर्म, तपधर्म, सद्भावना धर्म आदिक का उपदेश करती हुई कुछ समय ठहर कर वहां से विहार करके लोहारा गाओं जिला मेरठमें पधारीं। वहांके श्रावकों ने भी आपके आगमन पर बड़ा आनन्द मनाया और विनतीकी, कि आप इस वार हमारे ही क्षेत्र में चतुर्मासा करें, सुतरां आपने उनकी विनती को स्वीकार किया ।
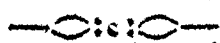
सं० १९४० का चातुर्मास्य लुहारा में दूसरी वार ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९४० का चतुर्मासा लुहारा गाओं में हुआ यह एक छोटासा कस्बा है इसमें श्रावक लोग अग्रवाल वनिएं वहुत बसते हैं आपके चतुर्मासे में इन लोकों ने धर्मका बड़ा लाभ उठाया अर्थात् कई भाईयोंने पंद्रह, पंद्रह दस, दस, और आठ, आठ, दिन के व्रत किये और कई श्रावक श्राविकाओंने प्रतिदिन सामायिक करने का नियम किया और कई लोकोंने कसावों से वणज करने का त्याग कर दिया इत्यादि बहुत ही उपकार हुए चतुर्मासेकी समाप्ति पर आपने आगरे की ओर विहार कर दिया ।

पहली गुरुणी जी से विनती उऋण होने पर।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज मथुरा वृंदावन आदि नगर ग्राओंमें विचरती हुई आगरामे पधारी वहां आपकी पहली गुरुणीजी श्रीहीरादेवीजी महाराज विराजती थी आपने उनके दर्शन किये और प्रार्थनाकी कि आपने मुझ पर विद्या दान आदि का बड़ा ही उपकार किया था इस लिये मेरी आपसे उऋण होनेके लिये दो प्रार्थनाएं हैं, पहली यह है कि आप पांच महांव्रतों की अरोपना करलें और सूत्रके अनुसार प्रायश्चित अर्थात् कुछ तपस्या ग्रहण करने की कृपाकरें, दूसरी यह है कि आप मेरे साथ विहार की कृपा करें ताकि मैं भी आपकी यथायोग्य सेवा कर सकूं। श्रीसतीहीरांदेवीजी महाराज आपके इस प्रकार के मीठे और सुखदाई वचन सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और कहा कि हे वत्से ! तेरी यह दोनों बातें अमोलक है हां आलोचना तो मेरी तूहीं सुनले परन्तु विहार तो मैं पहले ही से नहीं कर सकती हूं इसमें बेवसहूं तथापि जो तैंने मेरे पढाए सिखाए को इतना सुफल किया है कि स्थान स्थान पर धर्मका प्रचार कर रही हो इसमें मैं बहुतही प्रसन्न हूं। अस्तु आप वहां श्री भगवती सूत्र सतक दूसरा

खंधक ऋषिके प्रश्नोत्तरोंका व्याख्यान करती रहीं जिसको सुनकर वृद्ध श्रावक बोले कि जैसी रीति श्रीरतनचंद जी महाराजके व्याख्यानकी थी वैसी ही रीति श्रीमहासतीजी के व्याख्यान की है धन्य हैं आप और धन्य है आपका जन्म आपने हमारे आगरा का और हमारी संप्रदायका नाम भी प्रसिद्ध कर दिया है इसके अनन्तर आप वहां से विहार करके विचरती हुईं मियाँ दुआब में पधारीं तब छपरोली गाओं जिला मेरठ के श्रावकोंने आपके चरणोंमें चतुर्मासा करने के लिये विनतीकी और आपने उनकी विनती को स्वीकार किया ।

१९४१ का चातुर्मास्य छपरोली गांव में ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं०१९४१ वि० चतुर्मासा छपरोली ज़िला मेरठ में हुआ इस चतुर्मासे में मियाँ दुआबे के अतिरिक्त कई देशों के अर्थात् पञ्जाब, गुजरात, काठियावाड़ तक के श्रावक श्राविका श्रीसतीजी के दर्शनों को आए जिनका आदर सत्कार वहां के भाइयों ने बहुत किया अर्थात् यात्रियों के लिये जो आवश्यक सामग्री होनी चाहिए वह सब उन्होंने दी, ताकि किसी सज्जन को कोई कष्ट न हो, और वहां पच-

रंगी तपस्या भी हुई, अतः भाईयो को इतना उत्साह था कि वे व्याख्यान के पश्चात् उपस्थित जनतामें लड्डु वांटा करते थे, और दीन दुःखिया लोगों को भी दान किया करते थे, इस प्रकार दया धर्म का वहुत प्रचार होता रहा। चातुर्मास्य समाप्त होने पर आप देहली रोहतक और वांगर देश मे विचरती हुई दुआवा जालन्धर मे पधारी और हुश्यारपुर के भाईयों की विनती पर आप ने सं० १९४२ वि० का चातुर्मास्य हुश्यारपुर का स्वीकार किया।

—○○—
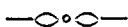
सं० १९४२ का चतुर्मासा हुश्यारपुर में तीसरी वार।

आपका सं० १९४२ वि० का चतुर्मासा हुश्यार पुरमें हुआ यहां पर आपके प्रभाव शाली व्याख्यानों से वड़ा उपकार हुआ अर्थात् सर्वसाधारण पर जैन धर्मके महत्त्वका वहुत ही प्रभाव हुआ इस चतुर्मासे में आप को एक पुस्तक भी दिखलाया गया जो आत्मारामजी संवेगीका वनाया हुआ था जिसका नाम "जैन तत्त्वादर्श" है, आपने इसको पढ़ा तो

प्रतीत हुआ कि इसमें प्रायः ऐसे विषय भी लिखे हैं जो जैन सूत्रोंके विरुद्ध हैं, सम्भव है ऐसे भ्रमात्मक विषयोंको लोग सत्यमान बैठें इस लिये एक पुस्तक बनानी चाहिये जिसको पढ़कर लोग सत्यासत्यको स्वयमेव समझ लेंगे, चतुर्मासेके समाप्त होने पर विहार करके आप माछीवाड़े में पधारी। वहां आप के उपदेशका प्रभाव जैन व अन्य मतवालों पर ऐसा पड़ा कि कई लोगोंने बुरी क्रियाओंको अर्थात् शीतला मसानी, शेख़सैय्यद आदिकी पूजा तथा झूठी साक्षि देना और धरोहर रखकर मुकर जाना और जूआ खेलना आदिकका त्यागकर दिया और माछीवाड़ा के लाला नगीना मल साहुकारकी पोती लाला राधाकिशनकी पुत्री भगवानदेवी जी को दीक्षा लेने की इच्छा हुई इसके पश्चात् आपने रोपड़ को विहार कर दिया।

रोपड़ में दीक्षा उत्सव और उपकार।

आप रोपड़ ज़िला अंबालामें विराजीं वहां श्रीमती भगवानदेवीजी अपने सम्बन्धिओंसे आज्ञा लेकर आपके चरणोंमें आ उपस्थित हुईं और अपने साथ अपने भूषण और कुछ रोकड़ पुण्य दान करने

की इच्छासे लेती आई । श्रीमहासतीजी महाराज ने कहा कि तुम इतना द्रव्य अपने साथ किसका और क्यो लाई हो उन्होंने उत्तर दिया कि मैं अपना निजका ही लाई हूं इसका किसी और से सम्बन्ध नहीं है । आपने फिर कहा कि गृहस्थी लोग बड़े परिश्रमसे द्रव्य कमाते हैं उसमें झूठ कपटादि पाप वृत्तिका भी आचरण करते हैं । इस लिये इस द्रव्य की दयादान आदि धर्मोन्नतिके सिवा अन्य कार्य्यों में लगाना योग्य नहीं है। तब श्रीमती भगवानदेवी जी ने सुनाम रियासत पटयालासे अपनी सास और देवर को बुलाकर आभूषण उनको देदिए और चार पांच सौ रुपया दीक्षा महोत्सव पर लगा दिया । श्रीमती भगवानदेवी जी की दीक्षा का दिन जेठ शुदि १०मी नियत किया गया था इस अवसर पर नगर नगरके श्रावक और श्राविकाओंको आमंत्रित कियागया और रियासत नालागढ़सेकई सर्कारीसाज सामान हस्ति आदिक महोत्सवकेलिये मंगवाए गए। श्रीमती भगवानदेवीजीको एक साज समेत पालकीमें बिठलाकर ऊपरसे रुपए निछावर करते हुए जयकारो की ध्वनि आकाश तक पहुंचाते हुए भजन मंडलियो

के साथ सवारी चढ़कर उस स्थान पर पहुंची जहां पर दीक्षा होनी थी । नियत स्थान पर श्रीमती भगवानदेवी जी पालकी से उतर कर श्रीमहासती पार्वती जी महाराज के चरणों में उपस्थित हुई और प्रणाम कर के सभा सन्मुख कहा कि मैं सांसारिक तृष्णा को छोड़कर शेष आयु को निरारम्भ होकर परमेश्वर की याद में लगाने के लिये जैन-योग (दीक्षा) धारण करती हूं इसलिये यदि मेरे निमित्त कारण से किसी को कभी कोई खेद पहुंची हो तो मैं प्राणीमात्र से क्षमा मांगती हूं सब लोक क्षमा करें ।

तब सभासदों के हृदय से प्रिय धर्मी भाव उमंग कर नेत्रों द्वारा जलरूप होकर छागया और क्षमा २ करने लगे, फेर धर्म माता और प्रिय धर्मन श्राविकाओं के साथ एक स्थान में होकर श्रीमती भगवानदेवीजी ने अपने गृहस्थी जरी किनारी वाले वस्त्र और भूषणों को त्यागकर यथाविधि जैन आर्य्याओं का वेष पहनकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके चरणों में उपस्थित हुई और सादर प्रणाम करके हाथ जोड़कर बिनती की, कि मुझे दीक्षा देने

की कृपा करें, तव आपने सहर्ष सैकड़ों मनुष्यों के सामने श्रीमती भगवानदेवीजी को दीक्षा का पाठ पढ़ा दिया उन्होंने उसी क्षण से समस्त जीवन धर्म के अर्पण कर दिया, और श्रावक श्राविकाओं के मुखों से धन्यवाद धन्यवाद और जयकारे के शब्द सब ओर से निकलने लगे और दर्शकों के मन में वैराग्य की धारा बहने लगी, इस प्रकार बड़े उत्साह से दीक्षा महोत्सव मनाया गया और जैन धर्मका बड़ा ही प्रकाश हुआ।

आप वहांसे विहार करके खरड़ वनूरके रास्ते होकर अम्बाला शहरमें पधारीं और वहां के श्रावकों की धर्ममें अतिशय रुचि देखकर आपने सं० १९४३ का चतुर्मासा अंवाला का स्वीकार किया।

—○○—

सं० १९४३ का चतुर्मासा अम्बाला नगर में

आपका सं० १९४३ वि० का चतुर्मासा अंवाला नगरमें हुआ। आपकी पवित्र वाणी सुननेके लिये अन्य मतोंके लोग भी वहुतायतसे आतेथे, आप आचारांग सूत्र सुनाती थीं जिसमे स्थावर और जंगम जीव योनिओं अर्थात् अंडज जेरज स्वेदज

और उद्भिज उनकी उत्पत्ति और आहार, आयु कर्म आदिक के विचार पर व्याख्यान होते थे। एक दिन व्याख्यान के पश्चात् एक भगवे वस्त्रों वाले साधुने जो अपने आपको वेदान्त मतका सन्यासी बतलाता था श्री महासती पार्वतीजी महाराजसे कुछ प्रश्नोत्तर किये जो नीचे लिखेऽनुसार हैं:—

(प्रश्नोत्तर)

प्रश्न संन्यासी—आपके समदृष्ट है और आप ज्ञानवान भी हैं किम्वा नहीं?

उत्तर श्री महासतीजी—हां मुझमें यथा भाव समदृष्ट भी है और यथा श्रुति ज्ञानवान भी हूं।

संन्यासी—धन्यहैं आप और कृतार्थ है आप का जन्म परन्तु आपकी भोजन वृत्तिका व्यवहार किस प्रकार है।

श्री महासती पार्वतीजी—श्रेष्ठ आचरण वाले कुलोंसे निर्दोष भिक्षा लाकर उदरपूर्त्ति कर ली जाती है।

संन्यासी—तब तो आपकी पहली कही हुई दोनों बातें मिथ्या सिद्ध हुई अर्थात् समदृष्ट और ज्ञानवान होना।

श्री महासतीजी—वह क्यों ?

संन्यासी—जब आपने श्रेष्ठ निकृष्ट अर्थात् ऊंच नीचमें द्वैतभाव रखा तो समदृष्टि कहां रही समदृष्टि तो अद्वैतवादी होतेहैं जो सब पदार्थोंमें एक जैसी दृष्टि रखते हैं आप तो पदार्थोंमें दोष निर्दोष का भेद समझतीहै और फिर सर्वज्ञता कहां रही सर्वज्ञ तो सब पदार्थोंको ब्रह्म समझते हैं। यथा श्रुतिः—

एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।

श्री महासतीजी महाराज—क्यों भाई तुम तो समदृष्टि और सर्वज्ञ हो।

संन्यासी—हां मैं तो समदृष्टि भी हूं सर्वज्ञ भी हूं।

श्री महासतीजी—तो फिर आपके ऊंचनीच व दोष निर्दोष का विचारहै किम्वा नहीं ?

संन्यासी—नहीं—मै तो ब्राह्मण, वैश्य, भंगी और मुसल्मानों के घरका भी खा लेता हूं।

श्री महासताजी महाराज—यदि भंगी के घर सूअरका और मुसल्मानके घर गौका मांसहो तो खाते हो किम्वा नहीं।

संन्यासी—हां सब खा लेता हूं हम किसी पदार्थ

में द्वैतभाव नहीं रखते, यथा सूत्र "सम लोष्ट सम कञ्चनं" अर्थात् मिट्टी सोना बराबर है।

श्री महासतीजी महाराज—कभी विष्टा भी खाया है, सच कहना।

सन्यासी—सोचमें पड़ गया, कुछ चिर पश्चात बोला, नहीं।

श्री महासतीजी महाराज—यहां द्वैत क्यों रखा, बस अब इससे स्पष्टतया प्रकट हो गया कि तुम नास्तिक लोगों ने मांस भक्षण आदिक विषयों के स्वादोंमें ही समदृष्टि और सर्वज्ञता मानी है परन्तु समदृष्टि और सर्वज्ञताके अर्थ नहीं जाने। भला सोने और पीतलमें समभाव रखने वाला समदृष्टि सोनेको यदि पच्चीस रुपए तोले पर खरीद करले तो क्या पीतलको भी सोनेके भाव पर खरीद कर लेगा।

सन्यासी—नहीं।

श्री महासतीजी महाराज—यदि खरीद लेवे।

सन्यासी—तो मूर्ख कहलावे और हानि उठावे।

श्री महासतीजी महाराज—बस अब समझना चाहिए कि समदृष्टि और सर्वज्ञताके वास्तविक अर्थ

क्याहैं सो मुझसे सुनिए, सोनेको सोना समझे और पीतलको पीतल, रत्न को रत्न, और कांच को कांच उच्चको उच्च और नीचको नीच भलेको भला और बुरेको बुरा यथायोग्य समझे, परन्तु परमत्त (पागल) न बन बैठे कि मेरे लिये तो सब समान है, नही नहीं जिस अवस्थामें जैसी वस्तु हो उसको वैसी ही समझे इसका नाम यथार्थ ज्ञान है और इसी को तुम लोगोंमें सर्वज्ञता कही है, और सम दर्शिता यह है कि सोने पर राग अर्थात् लोभ न करे और पीतल पर द्वेष अर्थात् घृणा न करे। इसी प्रकार रत्नको रत्न, कांचको कांच, उच्चको उच्च, नीचको नीच, भले को भला और बुरेको बुरा, समझे तो यथार्थ अर्थात् जो जैसाहै उसको वैसा ही समझे परन्तु अपने भाव उन पर सम रखे, उन पर राग व द्वेष करके आप सुखी व दुखी न होवे प्रत्युत सम भावमें रहकर आनन्दकी प्राप्ति करे इसका नाम समदृष्ट है, न कि तेरी तरह कि हलवेके स्थानमें गोबर खा जाय और गोबरके स्थानमें हलवेसे घरको लीप लेवे। यह भाव रख कर कि मैं समदृष्टि हूं, मेरे लिए सब समान हैं परन्तु इस प्रकार कार्य्यकी सिद्धि कदापि

न होगी, तो फिर आत्मधर्मकी सिद्धि कैसे होगी । इस लिए जैसे तैंने पूर्वोक्त समदृष्टि और सर्वज्ञता मानी है, यह समदृष्टि और सर्वज्ञता नहीं है यह तो अज्ञानता है । जब श्रीमहासतीजी महाराजने स्पष्ट रूप से उस सन्यासीके प्रश्नोंका उत्तर दे दिया तो सम्पूर्ण सभा अतिप्रसन्न हुई और सन्यासी लज्जित सा हो गया और कुछ अपनी भूलकी बीमारी को समझ भी गया, अस्तु नमस्कार करके चला गया ।

इसी प्रकार आपसे चौमासामें कई मतान्तरीयों से नाना प्रकारके प्रश्नोत्तर होते रहे और लोकोंके हृदयों में धर्मका बड़ा उत्साह होता रहा, चतुर्मासा समाप्त होने पर आपने जमनापार की ओर विहार कर दिया और थनेसर करनालकी ओर विचरती हुई कांधला ज़िला मुज़फरनगरमें पधारीं, वहां आपके उपदेशसे बड़ा उपकार हुआ और लाला जवाहर मल अग्रवालकी पुत्री श्रीमती मथुरोजी ने संयम लेनेका संकल्पकर लिया । आप वहांसे विहार कर के लोहारा सराय जिला मेरठ में पधारीं और सं० १९४४ का चतुर्मासा वहीं का स्वीकार किया ।

—o—

सं० १९४४ वि० का चातुर्मास्य लुहारामें तीसरी वार।

आपका सं० १९४४ वि० का चतुर्मासा लुहारा मे हुआ, इस चतुर्मासे में श्रीमती मथुरोजी वैरागिन भी आपके चरणों में उपस्थित हुई और दीक्षा लेने की प्रार्थना की। श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने उस को श्रीसती भगवागदेवीजी के नाम का पाठ भाद्रपद वदि ९ को पढ़ाकर दीक्षा देदी, और इस स्थान पर धर्म ध्यान यथाशक्ति अच्छा होता रहा। चतुर्मासा समाप्त होने पर आप विहार करके देहली पधारीं और फिर रियासत जींद, मौनक, समाना रियासत पटियाला विचरती हुई रियासत नाभा में पधारीं और वहां आपके पवित्र उपदेशों की अमृत वर्षा होने लगी।

आपका उपदेश "पुण्य के फल मीठे और पाप के फल कड़वे" इस विषय पर हुआ उसका थोड़ा सा स्वरूप नीचे लिखा जाता है॥

पुण्यपाप के विषय पर उपदेश।

आपने कहा कि, इस संसार रूपी वनमे दो प्रकारके वृक्ष हैं एक मीठे फलोंके प्रदाता और एक

कड़वे फलों के देने वाले अर्थात् पुण्य और पाप; जैन सूत्रोंमें ९ प्रकार का पुण्य कहा है जो निम्न लिखित क्रमसे हैं :—

(१) अन्न पुण्य अर्थात् अन्न का देना ।

(२) पान पुण्य अर्थात् जल का देना ।

(३) लयन पुण्य अर्थात् मकान का देना ।

(४) शयन पुण्य अर्थात् शय्यासन का देना ।

(५) वत्थ पुण्य अर्थात् वस्त्र का देना ।

(६) मन पुण्य अर्थात् मन से सब का भला चाहना ।

(७) वचन पुण्य अर्थात् सब को हितकारी और प्रिय वचन बोलना ।

(८) काया पुण्य अर्थात् अपने शारीरिक बलसे यथा कल्प सबकी रक्षा करना अर्थात् बड़ों की सेवा भक्ति करना और अनाथोंकी रक्षा करना ।

(९) नमस्कार पुण्य अर्थात् सद् गुणी धर्मात्मा पुरुषों को नमस्कार करना और उनसे नमकर चलना उनकी आज्ञा का यथा रीति पालन करना ।

उपरोक्त पुण्यों का नाम सुकृत कर्म है—सो सुकृतका करना तो प्राणियोंको दुष्कर है परन्तु

सुकृतके फल बहुत मीठे लगते हैं अर्थात् बहुत सुखों की प्राप्ति करते हैं इस लिये यह बड़ी सुगमता से भोगे जाते हैं, जैसे रोगी को पथ्य करना तो कठिन प्रतीत होता है, परन्तु पथ्य का फल मीठा होता है, अर्थात् पथ्य के करने से रोगी शीघ्र ही स्वस्थ (सुखी) हो जाता है, इसी प्रकार थोड़ासा पुण्य करने से भी जीव चिरकाल के लिए सुखी हो जाता है। यथा दृष्टान्त—

पुण्य के फल के विषय में दृष्टान्त.

एक व्यापारी जिसका नाम धर्मदत्त था भारत वर्ष के एक सुन्दरपुर नामक नगर में रहता था। एकवार वह व्यापारी अपने नगर से एक सथवाड़ा (व्यापारियों की मण्डली) लेकर किसी अन्य देश को गया। उसके रास्ते में एक गांओं ऐसा आया जिसके वीचमेंसे रास्ता था, जव वह सथवाड़ा गाओं के वीच में से गुज़रा तो एक पुरुष को एक स्त्री ने विस्मत होकर पूछा कि क्या यह सेना वाला कोई राजा है, उसने उत्तर दिया कि राजा नहीं व्यापारी है वस्तुओं का क्रय विक्रय करता है। फिर उस स्त्री ने कहा यदि व्यापार करता है तो अपने घर वैठ

कर क्यों नहीं कमाता गाओंगाओं के कुत्ते भुकाने और रास्ते की धूलि उड़ाने से क्या लाभ है । उस पुरुषने उत्तर दिया कि घर में वैठ कर तो कभी छे मास व वर्ष में सवाये ड्यौढ़े कर सकता है परन्तु यह व्यापारी इस व्यापारसे विदेशोंमें नगर नगर घूम कर छे मासमें दुगुने कर लेता है ।

स्त्री—आहा, तब तो यह धन उपार्जन करने का अच्छा ढङ्ग है. ले मेरा भी एक पैसा इस व्यापारी के पास जमा करा दे ।

पुरुष—अच्छा दे दे ।

इस पर उस स्त्री ने एक पैसा उस पुरुष को दे दिया और उसने साहूकार के पास जमा करा दिया वह देश देश नगर नगर गाओं गाओंमें व्यापार करता हुआ बारह वर्षके पश्चात् उसी गाओं में वापस आया और वहां डेरा किया, उस को स्मरण हुआ कि जिस गाओं की स्त्री का मेरे पास एक पैसा जमा है वह गाओं यही है । उसने अपने मुनीमों को आज्ञा दी कि उस स्त्री के एक पैसे के लाभ का हिस शीघ्र पेश करो, सुतरां मुनीमोंने आज्ञानुसार ि बनाना आरम्भ किया जो नीचे लिखे अनुसा

पहले छे मासमे एक पैसा मूलधनके दुगने दो पैसे, दूसरे छे मासमे दो पैसेके दुगुने एक आना तीसरे छे मासमें एक आनेके दुगने दो आने, चौथे में दो आनेके दुगुने चार आने, पांचवेंमें चार आने के दुगुने आठ आने, छठेमे आठ आनेके दुगुने एक रुपया, सातवेंमें एक रुपयेके दुगुने दो रुपये, आठवे मे दो रुपयेके दुगुने चार रुपये । नौवेंमें चार रुपये के दुगुने ८) रुपये, दसवे मे आठ रुपये के दुगुने १६) रुपये, ग्यारहवेंमें १६) रु० के दुगने ३२) रु० बारहवेंमें ३२) रु० के दुगने ६४) रु०, तेरहवेंमें ६४) रु० के दुगुने १२८) रु०, चोदहवे मे १२८) रु० के दुगुने २५६) रु०, पंद्रहवेंमे २५६) रु० के दुगुनेमें ५१२) रु०, सोलहवे मे ५१२) रु० के दुगुने १०२४) रु० सतारहवे मे १०२४) रु० के दुगुने २०४८) रु० अठारहवेंमें २०४८) रु० के दुगुने ४०९६) रु०. उन्नीसवे में ४०९६) रु० के दुगुने ८१९२) रु०, बीसवेंमें ८१९२) रु० के दुगुने १६३८४) रु०, इक्कीसवेंमें १६३८४) रु० के दुगुने ३२७६८) रु०. बाइसवेंमें ३२७६८) रु० के दुगुने ६५५३६) रु०, तेईसवेंमें ६५५३६) रु० के दुगुने १३१०७२) रु०, चौबीसवें फेर में (१२ वर्ष) में २६२१४४) रु०

जब मुनीमोंने यह हिसाब पेश किया और प्रार्थना की, कि दो लाख बासठ हज़ार एक सौ चवालीस रुपये उस स्त्री के पैसे के बनते हैं तो व्यापारी आश्चर्य्य रह गया, परन्तु कहने लगा कि अच्छा अभी भेज दो। आज्ञा की देर थी कि मुनीमों ने छकड़ों पर थैलियां लाद कर उस स्त्री के घर भेज दीं। स्त्री बोली यह रुपया कैसा है, उन्होंने कहा कि तेरे एक पैसे का मुनाफ़ा १२ वर्ष का है। यह सुनकर वह स्त्री आश्चर्य्य रह गई और उसके आनन्द की कोई सीमा न रही और रुपया घरमें धराकर कहने लगी कि यदि यह एक पैसा मेरे घरमें ही रहता तो मुझे इससे क्या लाभ होता व्यापारी के पास जमा करानेसे प्रति छे मास में दुगने होनेसे वही एक पैसा महान धन बन गया उस स्त्री की बहनें सहेलियां और पड़ोसी सब पछताने लगे कि हमने भी उसको पैसे क्यों न दिये परन्तु अब पछताए क्या हो सकता है। वह स्त्री उस धन से अपना शेष जीवन बड़े सुख से काटने लगी और कई पीढ़ियों तक उसके घरमें सम्पत्ति अर्थात् ऐश्वर्य्य बना रहा।

यह दृष्टान्त देकर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने श्रोताजनों को कहा कि देखिए भ्रातृगण जितना पदार्थ वर्ताव मे आता है, वह सब का सब घर के खर्चो में ही गिना जाता है, परन्तु जितना तनु तपस्या में, मन ज्ञान में और धन दान मे लगाया जाता है, उतना ही सफल होता है अर्थात् तन से यदि एक व्रत किया जावे, और मन से कुछ ज्ञान का विचार किया जावे, और धन से कुछ दान दिया जावे अर्थात् एक रोटी भी किसी त्यागी महात्मा के पात्र मे दीजावे तो जैसे उस स्त्री को वड़ा भारी लाभ हुआ था इसी प्रकार सुपात्र दान आदिक का लाभ भी वहुत वड़ा होता है, और कई जन्मों तक सुख ही सुख प्राप्त होता है। सालभद्रवत्—

—*—

पापों के निषेध के विषय में उपदेश।

फिर महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने कथन किया कि जैसे पुण्यके फल मीठे होते हैं, इसी प्रकार १८ प्रकार के पापों के फल कड़वे होते हैं, और उसी प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते है अर्थात् एक जन्म में थोड़े से पाप का अंकुर लगाया जावे

तो यह बढ़ते बढ़ते वृक्षवत् कई जन्मों तक बड़े २ दुःख देते हैं।

यह कहकर आपने १८ पापों का क्रमशः वर्णन किया जो नीचे लिखे अनुसार है—

पहला पाप प्राणातिपात।

पहले प्राणातिपात पाप का अर्थ श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने यह बतलाया कि किसी प्राणी के प्राणों का अतिपात करना (लूट लेना) है अर्थात् जीवघात का करना है जैसे आखेट (सिकार) का करना, झटका करना, हलाल करना, शिशु हत्या (बाल घात) करना, गर्भक्षय करना, चूहे व घूंस ऊंदरों को पिंजरे में बन्द करना और मारना, भूंड ततैये आदिक के छत्ते जलाने, मधु मक्खीओं के छत्ते तोड़ने और उनके नीचे धूआं देना, सांप, विच्छू, कान खजूरा, खटमल, जूं, लीख आदिक का मारना इत्यादि।

इनके अतिरिक्त निम्नलिखित कर्म भी इसी पाप नं० १ में गिने जाते हैं—

(१) बंधे—अर्थात् गौ, भैंस, बैल, घोड़े आदि जीवों को तङ्ग बंधनों से बांधना अर्थात् जिस बंधन से पशु दुःखी होजाएं, जैसे गौ व भैंस के बछड़े व

कट्टों को दूध से हटाए रखने के लिए रस्से को बहुत से वल देकर खूंटे के पास वांध देना जिस से वह ग्रीवा तक भी न हिला सकें और पक्षियोंको विना ऐसी अवस्था के जो दया के कारण उनके प्राणों की रक्षा के सम्बन्ध में हो, चावमे (शौकमे) अथवा किसी अन्य विचारसे पिंजरोंमे वन्द रखना।

(२) वहे—अर्थात् उपरोक्त सव प्रकार के प्राणियों को चावक व सोटे आदि से अधिक ताड़न करना अर्थात् क्रोध मे भरकर दांत पीस कर मारते जाना।

(३) छविछेय—अर्थात् घोड़ा, वैल अथवा कुत्ते आदिकों की पूंछ और कान आदिक का काटना और विना रोगादि कारण के गर्म लोहे से दाग देकर चिन्ह वनाना और वैल घोड़े आदिक को दोहिया (वधिया) कराना।

(४) अइभारे—अर्थात् इक्का गाड़ी और क्रांची आदि पर तथा गधे, घोड़े, ऊंट आदि पशुओं पर उनके वलमे अधिक वोझ लादना तथा अधिक मंजल कराना।

(५) भत्तपान विच्छेय—अर्थात् पशुओं को नियत समय पर चारा आदिक न देना अथवा भूखे प्यासे रखना इत्यादि।

यह सब पाप कर्म हैं, इनका सम्बन्ध प्राणातिपात पाप से है, यह सब कर्म छोड़ने के योग्य हैं। इस प्राणातिपात (हिंसारूपी) पापको महात्माजनों ने सब पापों से बड़ा कहा है, इसलिए जहां तक होसके इस पाप से बचना चाहिए अर्थात् किसी भी प्राणी को दुख न देकर इस घोर पाप से अपने आत्मा को अवश्य बचाना चाहिए ।

—:○:—

हिंसापाप है इस पर अन्यमतोंकी सम्मतियें ।

प्रथम पापके व्याख्यान में श्रीमहासती पार्वती जी महाराज ने प्राणातिपात पाप को सब पापों में मुख्य पाप बतलाया, उसी को सब मतों के विद्वानों ने भी मुख्य पाप माना है । निस्सन्देह इस समय सारा संसार ही पाप की ओर झुक रहा है, परन्तु वे सब मिल कर भी इस घोर पाप को पुण्य का रूप नहीं देसकते अर्थात् प्राणातिपात पाप सर्वदा पाप ही रहेगा, इसलिये इसके फल भी सदा कड़वे ही रहेंगे कोई जाति व मत इसके कड़वे फलों को मीठे नहीं बना सकता, वरं इतना भी नहीं कर सकता कि इस पाप को छोटा ही बना दे । जिस प्रकार सम्पूर्ण

अंको का मूल एकाई है, इसी प्रकार सम्पूर्ण पापों का मूल हिंसा ही है, इसी कारण मारे जाति व मतों के विद्वानों ने इसको मुख्य पाप माना है पञ्जावी कहावत भी तो है—

"सौ सियाणे इक्को मत मूर्ख आपो आपणी"।

निस्सन्देह यह सत्य है कि विद्वानों की सम्मति अन्त में मिल ही जाती है।

पाठकवर्य्य! आजकल प्रायः देखा जाता है कि यूरोपियन विद्वान् प्रत्येक मतके मन्तव्यों पर अच्छी तरह विचार करके उनके लिये अपनी सम्मति भी स्वतन्त्रतासे प्रगट करते हैं। इसलिये मै पहले एक यूरोपियन विद्वान् की सम्मति जो अभी ही मान्चेस्टर के प्रसिद्ध समाचारपत्र वैजिटेरियन मिजर सितम्बर मास १९१२ ई० में प्रकाशित हुई है। पाठको की भेट करता हूं। आपका नाम मिस्टर ऐलेग्जण्डर गार्डन साहब है, आपकी सम्माति क्योंकि अंग्रेजीमे थी,इसलिये हमकोभी यहां अंग्रेजीमें लिखनी पड़ती अथवा अनुवाद करना पड़ता परन्तु हर्षका विषय है कि रावलपिण्डी के जैनसमिति मित्रमण्डल के मेम्बर लाला ग्यानचन्दजी ओसवाल स्थानकवासी जैनी ने इसको सरल उर्दू भाषा में अनुवाद

कर दिया है, जिसको रावलपिण्डी के लाला जवाहर शाह व ख्याला शाह जी ओसवाल स्थानकवासी जैनने छपवाकर बिना मूल्य बांट दिया उसकी अनुलिपि व्याख्या सहित नीचे लिखता हूं॥

——*——

जैन अहिंसक है इसपर यूरोपियनकी सम्मति

वन्दे जिनवरम्

जैन समिति मित्र मंडल ट्रैक्ट नं० ६ वीर भगवान निर्वाण सं० २४४०

जैन धर्मका महत्त्व और उसके संबंधमें एक विद्वान अंग्रेज़ की सम्मति।

मांचैस्टरके प्रसिद्ध समाचार पत्र वैजिटेरियन मिंजरके सितम्बर मासका निकला हुआ आर्टिकल जो कि एक विद्वान अंगरेज़ मिस्टर ऐलैग्ज़ैण्डर गार्डिन साहबने भारतकी उत्तम जाति जैनके सम्बंध में दिया—

कुछ समय हुआ कि मान्चैस्टर गार्डनके अंक में भारवर्षके जैनीओंके सम्बन्धमें लिखा गया था जिसने इनको भारतवर्षकी एक अत्यन्त सभ्य और तार्किक जातिके अतिरिक्त यह भी कहा कि उनका प्रवर्तक बुद्धके ममयमें उत्पन्न हुआ। वैष्णव सिद्धांत के अनुसार उन्हीं शब्दोंके प्रातिकूल यह तर्क उत्पन्न

होती है जिसकी समस्या के लिये मैं निम्न लिखित आर्टिकल वेजिटेरियन मिजर में भेजता हूं।

"इस कथनके सम्बन्धमे कि जैनका प्रवर्तक बुद्धके समयमें उत्पन्न हुआ, बहुतमे मिंजरके पाठको को यह पढ़कर बहुत प्रसन्नता होगी कि जैन बुद्धके जन्मसे बहुत वर्ष पहले अपने पूरे यौवन में आचुका था। जैनकी शिक्षाके अनुसार जगतके सम्पूर्ण जीव अनित्य है "अर्थात् आयुकी अपेक्षा" थोड़े दिन रहने वाले हैं इस लिये उनके निकट समस्त प्राणधारी प्रेमकी दृष्टिसे देखे जाते हैं "जीवित रहना और दूसरोको जीवित रहने देना' जैनीओंका सबसे उच्च और पवित्र सिद्धान्त है। जैन फ़िलासफ़ीका आदर्श मनुष्यकी शारीरिक मस्तिष्क और आचार सम्बंधी तथा आत्मिक शक्तियोंको पराकाष्ठा तक पहुंचाना है क्योंकि प्राणिमात्रका यही आदर्श है इसलिये जैनधर्म के निकट प्राणिमात्र का आदर है-और इसीलिये इनके सबसे बड़े लीडरने अहिंसाको ही परमधर्म बतलाया है।

अहिंसा. जैनके पांच महाव्रतोंमें से पहला महाव्रत है.दया सम्पूर्ण भलाईयोंका मूल है. इसलिये जैनीओं के सारे जीवनके काम काज दया पर निर्भर हैं, वे

किसी प्रकारके भी हिंसक कर्मके घोर विरोधी हैं क्योंकि ऐसा भ्रष्टकर्म आत्मिक उन्नतिका बाधक है।

किसी प्राणीको मार डालना व दुख देना हिंसा करना है जब मनुष्य क्रोध लोभ नामवरी और अभिमान तथा प्रमादके वशमें हो जाता है तो वह अवश्य दूसरे प्राणियोंकी हिंसा करता है जिसको सभी लोग हिंसा मानते हैं परन्तु यदि मनुष्य कामनाओंको वशमें रखे अर्थात् इन्द्रियोंको वशमें रखे तो वह हिंसासे बचा रहता है। जैन आगम सिखलाते हैं जब कोई प्राणी दूसरे प्राणियोंकी हिंसा करे अथवा दुख दे तो उसकी आत्मिक उन्नति सर्वथा असम्भव है इस लिये वे युक्ति के साथ सिद्ध करते हैं कि जो मनुष्य दूसरोंको दुख देता है वह अपने आपको दुखोंमें डालता है और यह भी स्पष्ट है कि जो मनुष्य दूसरों की हत्या करे और उसके मांसको खावे वह स्वाभाविकतया पहले ही निर्दयी हो जाता है। जो मनुष्य यह कहते हैं कि मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ है केवल अंध विश्वास और एक भारी भूल करके यह प्रगट करते हैं। कि सब प्राणी केवल उन

क़े खानेके लिये वनाए गए हैं। *क्या वे यह नहीं जानते कि ऐसे कर्मोंका केवल सोचना ही कि जिस में मानवी दुष्कामनाओंको पूरा करनेके लिए पशुओंका वध हो, वह अतीव बुरे प्रभावको उत्पन्न करते हैं, अर्थात् वे मारे जाने वालेही की आत्मिक उन्नति को वंद नहीं करते वरं वे अपनी आत्मिक उन्नति को भी वंद कर देते हैं। सव मांस खाने वाले केवल जिह्वाके स्वादके लिए शरीर और आत्माको एक मानते हैं क्योंकि मरे हुए प्राणिको खाना किसी प्रकार कुछ भी मनुष्यकी आत्माको लाभ नहीं पहुंचाता। एक शरीरका गुण आत्माका गुण नहीं हो सकता, इसी प्रकार आत्मा का गुण शरीरका गुण नहीं हो सकता क्योंकि स्पर्श रस गन्ध और रंग

* नोट—इस वातको तो हमभी मानते हैं कि मनुष्यका दर्जा सवसे प्रधान (वडा) है इसीलिये मनुष्यको चाहिए कि वडा होनेका सार निकाले याने सव प्राणियोंकी रक्षा करें नाके प्रधान होकर सवका भक्षणकरें जैसें वडे वृक्षके आसरे हरएक पशु पक्षी मुसाफर वगैरा आराम पाते हैं ऐसेही मनुष्य के आसरे भी सव प्राणियोंको आराम मिलना चाहिये या जैसे सव मनुष्योंमें राजा प्रधान होता है तो राजा सव स्याका भलाही करता है इसी प्रकार मनुष्य भी सव में प्रधान होने के कारण यथाशक्ति यथाकल्प सव प्राणी मात्र का भला करे।

शरीर के गुण हैं और यह गुण आत्माके नहीं हो सकते, इस लिये जैनी मांस भक्षणके घोर विरोधी हैं और जहां तक हो सके वे क्षुद्रसे क्षुद्र प्राणिकी भी दया पालते हैं। यह सिद्धान्त पश्चिमी संसारको अपूर्व और विचित्र प्रतीत होगा परन्तु मैं जानता हूं कि अलगराकमके मरहूम (स्वर्गवासी) मिस्टर जेम्स साहबने एक ब्रदरहुड अर्थात् मित्रता फैलाने वाली कलब (सोसाइटी) का संस्थापन किया जिसके मैम्बर जहां तक हो सके इस सिद्धान्त पर चलते थे। जैन यह सिखलाता है कि प्राणियोंको मारना सब मारे जाने वालों और मारने वालोंकी आत्मिक उन्नतिको बंद कर देता है, जैन मतका यही सिद्धान्त है और इनके निकट अहिंसाका नियम समस्त धार्मिक और अध्यात्मिक नियमोंका मूल नियम है। इस लिए यह सच्चाईसे कहा जा सकता है कि जैन धर्म जगत भरके प्राणियोंसे Universal Brotherhood प्रेम और मित्रताका भाव रखता है "Thou shelt not kill" "तू किसीको मत मार" यह प्रायः सब मतों में पाया जाता है और जब इस वाक्य पर विचार करके इसके अर्थ निकाले जावें तो प्राणिमात्रके लिये यह जान पड़ता है "Do unto

others as you would that they should do to you" अर्थात् तुम दूसरोंके साथ ऐसा वर्ताव करो जैसा कि तुम स्वयं चाहते हो कि दूसरे तुम्हारे साथ करें इसमे जैन धर्मका अहिसाका सिद्धान्त पाया जाता है जो कि संसारकी भलाईका वीज होनेके कारण सब संसारके मतोंकी भलाईयों और अध्यात्मिक सिद्धान्तोंका आधार है। इस लिए जैनके अहिंसा के सिद्धान्तोंको मानते हुए समग्र वेजिटेरियनजनो को इस पवित्र सिद्धान्तका आदर करना चाहिए।

भारतवर्षके मतोमे जन्म मरणका प्रसिद्ध सिद्धान्त पाया जाता है और जैन फ़िलासफ़ी भी यही सिखलाती है, वह यह है कि यदि एक मनुष्य जीवित रहना चाहता है तो वह अपनी इन्द्रियो को वशमे रखे। जितनी जीवनकी कामनाओंको घटावे उतना ही वह थोड़े कर्म बांधता है, यह जैनके सर्वथा सच्चे वैष्णव होनेके सिद्धान्त है जो हमको सिखलाते हैं कि आठ प्रकारके कर्मोंमे आत्मा व्याप्त है। जैन धर्मका उद्देश्य जीवनमें कर्मोंका क्षय करना है और अहिसा धर्मको मानते हुए जैनियोंकी ओरसे रोगी और लंगडे जन्तुओंके असपताल और पिंजरापोल भारतवर्षके अनेक

प्रान्तोंमें खोले गए हैं जहां पशुओंको आजीवन पाला जाता है ।

जैनिओंका कार्य्यक्रम रीतिआं और उपासना सबके सब अहिंसाके उच्च सिद्धान्त पर निर्भर हैं कि किसीको दुःख व क्षति न पहुंचाना ही उच्च धर्म है जिससे यह परिणाम निकलता है कि सब से अधिक पाबन्दीका वैजिटेरियन जैन धर्म ही है जो कि आरम्भसे (शुरुसे) ही एक सहानुभूति और करुणासे भरा हुआ अर्थात् दया धर्म कहलाता है ।"

—◌✻◌—
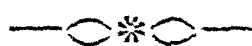
मुसल्मान विद्वानोंकी सम्मतियां ।

यदि मुसल्मान विद्वानोंके आचारों पर ध्यान दिया जावे तो जान पड़ता है कि वे भी दयाके पवित्र गुणसे पृथक् नहीं हैं । अन्यायी और निष्ठुर जनोंके निर्मूल विचारोंको मुसल्मान विद्वानोंके विचारोंसे कैसे ऊंचा कहा जाए यदि कोई निठुर अपनी जिह्वाके स्वादके लिए यह कह दे कि दया अच्छी नहीं है तो इसका अर्थ यह है कि वह मानों अपने दयावान पूर्वजोंके सत्कर्म्मोंको बुरा सिद्ध कर रहा है । सुना जाता है कि इस्लामके

लोगोंमें यह रीति है कि वे अपने छोटे बच्चों को ही बिस्मिल अल् रहमान उल् रहीमका क़ल्मां सिखाते हैं जिनसे उनका अभिप्राय यह होता है कि वे अल्लाहताला के गुणसे अपरिचित न रहें। इस क़ल्मां का अर्थ यह है कि आरम्भ करता हूं अल्लाहके नाम से जो कि रहमन और रहीम है अर्थात् पापियोंको क्षमा करने वाला और सब पर दया करने वाला है।

परन्तु शोक! लोग इस कल्मांके अर्थ पर विचार नहीं करते। लाखो गौ, भैस, बकरे, कुक्कुर आदि प्रति दिन काटे जाते है, उस समय कोई इस कल्मेकी ओर ध्यान नहीं देता उनको चाहिए कि खुदावन्द ताला के गुण पर विचार करें क्योंकि विना इस गुणके आज तक कोई खुदासे नहीं मिला देखिए हज़रत अयूब जिनके शरीरमे एक बार कीड़े पड़ गए थे उन्होंने परमेश्वरके उस सर्वोत्कृष्ट गुणको जिसका वर्णन क़ल्मेमे किया गया है ऐसे कष्टके समयमें भी न छोड़ा यहां तक कि जो कीडे उनकी देहसे गिर जाते थे वे उन्हें सावधानी से उठा लेते और फिर उसी घाव पर उन्हे रख लेते इस विचारसे कि कहीं खुराकके न मिलने

अथवा स्थान भ्रष्ट हो जानेके कारण कहीं मर न जावें । जब उन्हें कोई पूछता कि कीड़ोंको उठा कर घाव पर क्यों रख लेते हो तो वे ऐसा जवाब देते कि खुदा तालाने इनका घर मेरा शरीरही बनाया है मैं इन्हें क्यों निर्वासित (जिलावतन) करूं, परिणाम यह हुआ कि कुछ समय पाकर शरीर अपने आप ही कीड़ोंसे रहित होकर स्वस्थ हो गया । (रोज़ता उला सफ़िया)

क्या हमें यह उचित है कि हम हज़रत अयूबके उच्च और पवित्र भावको छोड़कर जिह्वाके स्वादके लिये लाखों प्राणिओं को काट काट कर अपने उदरमे डालें कदापि नहीं । किसी कविने कहा भी हैः—

यह है पेट या कबर ऐ होशमन्द ।
किहों दफन जिसमें चरिन्दो परिन्द ॥

इस पर एक दृष्टान्त भी है यथा किसी नगर में एक श्रेष्ठने अपने देवदत्त नामक पुत्रको बुद्धिमता जानकर संस्कृत, प्राकृत, सूरसैनी, माग्धी, अप्रभ्रंसा, पैसाचिकादि भाषा बड़े परिश्रम और द्रव्य वय करके पढ़ाया, फिर सोचा कि हमारा काम वणज्य व्यापारमें अनेक देशोंके लोगोंसे पड़जाता है तो इस

को अरवी भापा भी पढ़ादे तव वही उसी नगरमें एक महजदमें मौलवी अरवी पढ़ाता था उसके पास पढने को वैठादिया और वह दो घंटे वहां रोज पढने पर लगाता था, एक दिन उस देवदत्त का मित्र सोमदत्त जो कई वर्ष से देशान्तर दुकान के गुमास्तो की परीक्षा लेने और लेनदेन नफा नुकसान का लेखा लेने गया हुआ था वह कार्य्य सिद्धिके पश्चात् अपने घर पर आया और अपने सम्वान्धियोसे खेम कुशल पूछकर मित्रके मिलनेकी उत्कण्ठा प्रकट की और मित्रकी दुकान पर आकर मित्रके पिताको प्रणाम किया और मित्रको वहां पर न देखते हुए व्याकुलतासे प्रश्नकिया कि देवदत्त कहां है उत्तर मिला कि अमका मसजद मे पढ़ने गये हुए हैं आओ वैठो थोड़ी देरमे आजायेंगे परन्तु मित्रके मिलनेका उत्साह उसको इतना अन्तर सहन करनेकी आज्ञा नहीं देताथा इसलिये सोमदत्त शीघ्रही उस महजदमे पहुंचा और महजदके चौकमे एक तर्फ चटाई (सफ) के ऊपर वैठा हुआ देवदत्त को पढते देखा और सहर्प शीघ्रता से निकट जाकर जय जिनेन्द्रदेव कहा देवदत्त विस्मत होकर ओहो सोमदत्त-खड़ा होकर परस्पर गलेमें

भुजागेरकर मिले और हाथ पकड़ कर पास बैठा लिया दोनों मित्रोंका प्रेमभाव हृदय स्थलमें पर्य्याप्त स्थान न प्राप्त करता हुआ आश्रुओं के नाम से बाहर निकल आया और कुशलखेम पूछकर कहा कब आये आपने अपने आगमनका शुभ समाचार मुझको प्रथम नहीं दिया अन्यथा मैं आपके स्वागतके लिये प्रविष्ट होता सोमदत्त-मुझको अचानक इस देशमें आगमन का साथ मिलगया इस कारण सूचना न देसका, क्षमाकरें, इतनेमें महजदके भीतर से निमाज पढ़कर मौलवीजी भी बाहर आकर वहीं चटाई पर बैठगये देवदत्त कुमार ने अदब उठाया, तब उस अच्छे मोटे ताजे लालकुंदाको देख कर सोमदत्त विस्मत होकर देवदत्तके कान में यह कौन हैं देवदत्त-हैवानों की कबर, मौलवीजी चमक कर अबे क्या कहा:—

देवदत्तः—अजि साहब यह मेरे मित्र सोमदत्त जी परदेशसे आये हैं इसलिये आपको नहीं जानते हैं पूछते हैं कि यह कौन हैं मैंने जवाव में कहा है कि हयवानों (जानवरों) की कबर है, मौलबी जी-अवे अहमक हमको जानवरोंकी कबर कहता है, देवदत्त-सचतो कहता हूं, मौलवीजी-वह कैसे

देवदत्त—वह ऐसे, कि जो आप लोगोंमें मनुष्य (इन्सान) मरतेहैं उन्हें जमीनमें कवर खोदकर उसमें दफ़न कर दिये जातेहैं उनकीदेह मिट्टी में मिलजातीहै और जो हयवान (जानवर) भेड़, वकरी, गांय, वैल, वच्छा, वटेर, मुर्ग, वगैरा मारे जातेहैं, उनकी देह आप लोग मांसाहारिओं (गोस्त खोरों) के पेटकी कवरमें दफ़न होतीहैं याने उनकी देह आपके पेटमें हजम होतीहैं और जैसे आपने भी मुझको अरवी की किताव पढ़ाते हुए सिखलाया था कि हजरतअलीने फरमाया है—

"लातजालो वतुने कुम कवूरउल हैवानात्"

अर्थः—तुम अपने पेटोंको हवानों की कवरें न वनाओ, तव मौलवीजी चुप, वगेरः और सुना है कि नवा अंजील, दूसरा अयदनाम, वाव १४वां सफा ३२३ ईशा खत लिखताहै रूमीयोंको "ना तू गोस्त खा न शराव पीय"।

पाठक ! देखो ईशा महाशय ने भी दयाको हीं मानकर ऐसा लिखाहै। और वोस्तांमें भी यह लिखाहै जो अधो लिखत शेरों से प्रकट होताहैः—
"यके सीरत नेकमरदां शनो, अगरनेक मरदी वा पाकीजह रूके शिवली जहानूत गंदम फरोश" वगैरः।

इन उपरोक्त शेरों का तातपर्य्य यह है कि हे मनुष्य ! यदि तू भला पुरुष और शुद्धात्मा है तो तू एक भले पुरुष के गुणों के विषय में सुन जैसे शिबली साहब ने एक वार नगर में जाकर एक गेहूं (कनक) वेचने वाले की दुकान से गेहूं खरीदी और गठड़ी बांधकर उसको कंधे पर उठा कर अपने गाओं को वापस आए, जब गठड़ी खोली तो उस गेहूं में एक च्यूंटी (कीड़ी) देखी जो व्याकुल हुई हुई चारों ओर दौड़ रही थी, शिवली साहब ने समझा कि यह बेचारी च्यूंटी अपने घर से निर्वासित (ज़िला वतन) हो गई है। यह देख कर उस भद्र पुरुष को इतनी दया आई कि उसी चिन्ता में उसको रात भर नींद न आई। सवेरा होते ही उस गेहूं को उस दुकानदार की दुकान पर लाये और कहा कि यह उचित नहीं है कि मैं इस च्यूंटी को उसके वास्तविक घर से निर्वासित करूं। कहते हैं कि उन्होंने उस अनाज को उसी स्थान पर रख दिया जहां से उठाया था जब च्यूंटी निकल कर चली गई तो अपने घर को वापिस आगए।

देखिये इस्लामधर्म के पूज्य वृद्धों ने कीड़ी

तक को भी दुःख देना पाप समझा है, और देखिये बाबा फ़रीद साहिब जब कई वर्ष वनों में तपस्या करके घर वापिस आये तो उनकी माता ने पूछा कि बेटा वन में क्या खाते होंगे तब जवाब मिला कि बहुत भूख लगने पर वृक्षों के पत्ते तोड़ खाता था तब माता ने फ़रीद साहिब का एक बाल नोंचा तब बाबा फ़रीद जी के मुंह से हाय का शब्द निकला तो माता झिड़क कर बोली, अये बेटा! जिन वृक्षो के पत्ते तू नोंच नोच कर खाता रहा है क्या वे वृक्ष दुःख पाकर न रोये होंगे-इस पर वह लज्जित होकर फेर वनो मे चले गये, और भूख लगने पर सूखे पत्ते (झड़े पड़े) खाते रहे, देखिये! उन्होंने भी सबज़ी मे जीव माना है किसी फार्सी वाले ने कहा भी है :—

"हफ्तदो हफ्ताद कालब करदह अम;
बारहा दरसबजा रूहीदहा अम"॥

अर्थात्, हफ्तदो (१४), हफ्ताद (७०) यह ८४ लाख योनियों में कालब (देहधारी) (जन्म किये) मैंने, कई बार बीच सबज़ी के मेरी रूह पैदा हुई वगैरः २।

और कविता-साधु ऐसे चाहिएं, जो दुखें दुखावें नां।

पान फूल तोड़े नहीं, रहें बागीचे मां॥

तनक फिरदोसी साहब के अधो लिखित शेरोंपर भी विचार करें कि आप क्या कहते हैं—

च: खुश गुफत फ़रदोसी पाक ज़ाद,
कि रहमत बरां तर बुत पाक बाद।
जाँ मयाज़ारूह हरचा: ख्वाही कुन,
कि दरशरीयत मागीरजीन् गुनाहे नेस्त।

अर्थात् प्राण धारी को मत सताओ और काम जो तुम चाहो सो करो क्योंकि हमारे धर्ममें इससे बढ़ कर और कोई पापनहीं है, पाठकजन देखिये इन पूर्वोक्त प्राचीन विद्वान महां पुरुषों ने भी दया को ही श्रेष्ठ धर्म माना है जो कि परमपद परमात्मा को मिलने की पहली सीढ़ी है अस्तु चाहे सारा संसार दया का शत्रु बन जावे परन्तु सत्पुरुष प्रत्येक जाति व प्रत्येक मतमें विद्यमान रहते हैं और वे दयाको कभी नहीं छोड़ सकते। इससे सिद्ध है कि मुसल्मानों में भी हिंसा करना घोर पाप माना है जैसा कि पूर्वोक्त श्री महासती पार्वती जी ने कहा है।

हिन्दु विद्वानों की सम्मतियें।

"अहिंसा परमो धर्मः" यह मंत्र वेदों और का है जिस का अर्थ यह है कि सब से

ऊंचा धर्म प्राणि को कष्ट का न देना है। जैसे मनु जी ने मनुस्मृति में आठ कसाई वताए हैं-

(१) पशु के मारनेकी आज्ञादेने वाला (सम्माति) देने वाला (२) पशुको मारनेके लिए वेचने वाला (३) पशु को काटनेवाला अर्थात् मारनेवाला (४) मांस ख़रीदने वाला (५) मांस वेचनेवाला (६) मांस पकाने वाला (७) मांस परोसने वाला (८) मांस खाने वाला इत्यादि।

कवीर जी की सम्माति।

उन झटका उन विस्मिल कीता दया दोहां से भागी।
कहत कवीर सुनो भाई साधो आग दोहां घर लागी॥

वावा नानक देव की सम्माति।

जिस रसोई चाढिया मांस दया धर्म दा होया नास।

मैंने एक ग्रन्थ में अधोलिखित आठ प्रकार के फ़ूल लिखे देखे हैं। क्योंकि वृक्षों के फ़ूलों में असंख्यात जीव होते हैं, जिसकी हिंसा का पाप उसी को लगता है जो उनको तोड़ता है व देवताओं की मूर्तियों पर चढ़ाता है इस लिये उस ग्रन्थ में उन फ़ूलों का चढाना छोड़ कर इन फ़ूलों का चढ़ाना लिखा है यथा श्लोक—

अहिंसा प्रथम पुष्पम्, पुष्प मिन्द्रिय निग्रहम्।
सर्व भूतदया पुष्पम्, क्षमा पुष्पं चतुर्थकम्॥

जपः पुष्पम् तपः पुष्पम्, ज्ञान पुष्पम् तु सप्तमम् ।
सत्यं चाष्टमम् पुष्पम्, तेन तुष्यन्ति देवता ॥

अर्थ—पहला फूल अहिंसा (२) फूल पंचेन्द्रिय निग्रह (३) सब प्राणियोंपर दयाकरना (४) क्षमा करना (५) परमेश्वरका जपकरना (६) तप करना (७) ज्ञानका विचार (८) सत्य भाषन, इन फूलोंके चढ़ाने से अर्थात् ८ प्रकार का धर्म सेवन करने से देवता प्रसन्न होते हैं। देखिये इन फूलोंमें भी अहिंसाको मुख्य रखाहै। और गीता में लिखा है "अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमो यज्ञः"।

जिसका अर्थ यह है कि हिंसाका न करना ही महान् धर्म है और महान् यज्ञ है।

किसी मतको देखो कदाचित् ही कोई ऐसा निकलेगा कि जिसमें सत्पुरुष विद्यमान न हों और जो हिंसा को सब पापोंसे बड़ा पाप न मानते हों।

इस लिये जिस प्रकार श्री महासती पार्वतीजी महाराज दया धर्मका प्रचार कर रही हैं यदि और धर्मोंके भद्र लोगभी इसी प्रकार हिंसाको देशसे निर्मूल करनेका परयत्न करतेरहें तो थोड़ेही समयमें इस देशमें घी दूधकी नदीयां बहने लग जाएं और फिर सारी सृष्टिमें शान्तिका साम्राज्य हो जाय। आशा है

कि प्रत्येक धर्म व प्रत्येक जाति के सज्जन मेरे इस कथन पर अवश्य ध्यान देंगे और मद्य पान मांस भक्षण को छुड़ा कर दया धर्मका सर्व साधारणमें प्रचार करेंगे जिससे हम उनके अनुगृहीत होंगे।

दूसरा पाप मृषावाद ।

श्री महासती पार्वती जी महाराज ने पहले पापके अनन्तर दूसरे मृषावाद पाप का अर्थ झूठ बोलना कहा फिर आपने झूठके पांच भेद कहे जो नीचे लिखे ऽनुसार हैं:—

(१) कन्याली, आपने इसका अर्थ यह वतलाया कि जो लोग कन्या के लिए झूठ बोलते हैं अर्थात् कन्या व बालक के आयु और रूप व आकार व वंश अथवा योग्यता आदि बढ़ा कर प्रगट करतेहै, वे इस कन्याली झूठमे गिने जातेहैं ।

(२) गोआली—इसका अर्थ आपने यह कहा कि जोलोग गौ, भैंस, वकरी आदिक पशुओंकी झूठी प्रशंसा करते है अर्थात् जो पशु थोड़ा दूध देते हों ग्राहक से यह कहते है कि इसका दूध और मक्खन वहुत है और बूढ़ी गौ व भैसको जवान सिद्ध करके अथवा चिरकाल की व वहोतवार की सुई हुईको अभीकी सुई हुई सज्जर कह कर वेचते हैं वह गोआली

पापके भागी होते हैं । क्योंकि जब ख़रीदने वाला उतना दूध मक्खन नहीं पाता तो वह उसकी रक्षा न करके कसाई के हाथ दे देता है, और कसाई जब उसकी ग्रीवा पर आरा चलाता है तो गोआली पापके सेवन करने वाला भी इस घोर पापमें भागी बनता है, इस लिये इस पापको भूल कर भी मत करो।

(३) भूआली—भूआली का अर्थ आपने यह कहा कि भूमिके लिये झूठ बोलना अर्थात् जो लोग अपनी भूमि पर सन्तोष न करके दूसरेकी भूमि पर अपना स्वत्त्व जमा लेते हैं और जब जांच हो तो झूठ बोलकर यह सिद्ध करना पड़ता है कि मेरी ही है इस लिए भूआली पाप त्यागने के योग्य है ।

(४) थापन मूसा—आपने इसका अर्थ यह कहा कि प्रायः लोग परस्पर विश्वास करके बिना अष्टाम व कोई लिखा पढ़ीके रोकड़ व भूषण व अन्य पदार्थ एक दूसरे के पास रख देते हैं जिसे धरोहर (इमानत) बोलते हैं, जो किसी की धरोहर रखकर मुकरजाते हैं वे इसी थापन मूसा पापके करने वाले होते हैं क्योंकि वह धनके रखजाने वाला जवाब सुनकर अत्यन्त दुखी होता है इस लिये इस पापको अवश्यमेव त्यागना चाहिए।

(५) कूड़ी साख–फिर आपने कहा कि जो लोग झूठी साक्षि देते हैं वे इस पापके भागी होते हैं यह एक वड़ा ही निन्दनीय पाप है क्योंकि थोड़े ही लोभ से व लिहाज से सच्चे को झूठा कहना और झूठेको सच्चा कहना पड़ताहै जिससे महान् अधर्मकी प्राप्ति होती है, इस लिए इस पापको अवश्य छोड़ो। इन पांचों का वर्णन करके फिर महासती पार्वतीजी महाराजने निम्नालिखित पांच कर्मोंका भी कथन किया और कहाकि यह भी झूठ ही के सम्बंधमें है।

यथा (१) सहस्साभ्याख्याने–आपनेकहा कि जो लोग किसी पर बलात् झूठे कलंक लगा देते हैं वे इस सहसा भ्याख्यान दोपके भागी होते हैं।

(२) रहस्साभ्याख्याने–इसका अर्थ आपने कहा कि जो लोग किसीको क्षति पहुंचाने व लज्जित करनके भावसे उसके गुप्त रहस्यको प्रगट करें वे इस दूसरे कर्मके भागी होते है।

(३) सदारमंतभेय–आपने कहा कि जो लोग मित्र बन कर भेद लेलेते हैं और फिर हानि पहुंचाते हैं वे इस तीसरे पापके भागी होते हैं।

(४) मिच्छोवयेसे–फिर श्री महासतीजी ने कहा कि जो लोग ऐसा उपदेश करतेहैं कि जिससे सचाई

की गन्धि तक न हो अर्थात् झूठे उपदेश का करना अथवा यों कहना कि तुमने निश्शंक होकर झूठ कहदेना, परन्तु मैं स्वयं झूठ न बोलूंगा ऐसा कहने वाले पुरुष इस मिथ्या उपदेश पापके सेवन करने वाले होते हैं ।

(५) कूड़लेह करणे इसका अर्थ आपने यह कहा कि जो लोग हुंडवी, पत्री, तमस्सुक, वही आदिमें झूठे नावें लिखते हैं वे इस पञ्चम कुकर्म के भागी होते हैं जिससे इस लोकमें अपयश व परतीति और राजदण्ड आदि बुरे फल चाखने पड़ते हैं और पर लोक में पशु योनि आदि बुरी गतियों में जन्म लेकर बहुत से कष्ट उठाने पड़ते हैं । इस लिए सब पुरुष व स्त्रीयां इस दूसरे मिथ्यावचनके पाप का अवश्य त्याग करें ।

——:०:——

तीसरा पाप अदित्ता दान ।

श्री महासती पार्वती जी महाराजने अदित्ता दान का अर्थ चोरी कहा अर्थात् स्वामीके विना पूछे कोई वस्तु लेना चोरी है यथा सुरंग लगाना, गांठ कतरना, किसीका ताला किसी और चाबीसे खोलना, किसीकी जानते हुए धरी पड़ी वस्तुका उठा लेना

चोरकी चुराई वस्तुका लेना, चोरोंको आश्रयदेना, राज-विरुद्ध (राजाके न्याय) से विरुद्ध काम करना भी चोरी है जैसे महसूल चुंगी आदिका गबन करना, खोटे सिक्कों रुपये नोटों आदिको का बनाकर बेचना, कम तोलना कम मापना, किसी शुद्ध वस्तुमें मिलावट करके बेचना जैसे खांडमें रेत मिलाना, घीमें चर्बी आदिक दूधमेंजल मिलाकर बेचना इत्यादि यहसब कर्म चोरी मे हैं यह तीसरा अदित्ता दान पाप है । इसके आचरणसे इस लोकमें अनेक प्रकारके दुःख भोगने पड़तेहैं, अर्थात् लोगोंमें विश्वासका उठजाना, कारावास (कैदखाना) व जुर्मानाकी यातनाका भोगना और किसीके साम्हने मुंह न कर सकना इत्यादि दण्ड मिलते हैं और परलोक मे नर्क और पशु आदिक नीच गतिओं मे जन्म धारण करके अनेक विपत्तिओं का साह्मना करना पड़ताहै. इस लिये प्रत्येक पुरुष व स्त्रीओं को इस पाप से बचना उचित है ।

चौथा पाप मैथुन ।

आपने चौथे पापका नाम मैथुन बतलाया; जिसका अर्थ विशेष करके व्यभिचार से संबंध रखने वाला कहा अर्थात् परस्त्री वेश्या आदिसे संसर्ग करना और स्त्रीका पर पुरुषसे रमण करना

आदिक इसके अतिरिक्त थोड़ी आयुवाली स्त्रीसे चाहे वह अपनीहीहो जैसाकि कई लोक धनके लोभ से छोटी आयुमें विवाहकर देतेहैं यथा लोकवाणी—आठ वर्षकी बालिका साठवर्षका नाथ अथवा किसी अन्य कारणसे छोटीआयु वालीसे बलात्कार भोग करना क्योंकि जिसको कामकी इच्छाही नहीं, इत्यर्थः अथवा किसी अन्य पुरुषसे अन्य स्त्रीका मिलादेना, अथवा किसी पशुजातिसे मैथुनकरना, अथवा बहोलताई कामभोगमें मनको बसाये रखना अर्थात् संतोष का न करना, अथवाकई पुरुषोंका परस्पर बालक व युवक व बृद्धोंकी असंतुष्टताके कारण लज्जासे रहित पशुओंसेभी बढ़कर अज्ञातपना (अनजान) होकर व्यभिचार कर्मका करना इत्यादि यह सब कर्म चौथे दर्जेके मैथुन पापमें अर्थात् व्यभिचार में है ।

इस व्यभिचार कर्मने भारतसे वीरता शूरता और सच्ची संतानका पैदा होना नाशकर दियाहै, इस व्यभिचार कर्मने धर्म कर्मकी मर्यादा अर्थात् शास्त्रकी और अपने बड़ोंकी मर्यादाको तोड़ दियाहै, इस व्यभिचार कर्मने अपने बड़े माता पितादि भाई बिरादरी पड़ोसी आदिकोंसे लज्जाका पड़दा उठा दियाहै, इस व्यभिचार कर्मने उनकी देहको

रोगोंके रहनेका घर वना दियाहै,अर्थात् वहुत लोक मूत्र कृच्छ (सुजाक भगंदर) और उपदंश (आतस) गर्मी जैसे निर्लज्ज दुष्ट रोगोंके वसमें पड़ जातेहैं, और कइ राजदण्ड (कारागार (कैद) तथा देश निर्वासित (देश निकाला) आदिकके कष्ट भोगतेहैं जहां अपने सज्जन संवंधीयोंके मूंह देखनेको भी तर्सतेहैं) और कइ दुर्वचन आदिककी ताड़ना सहतेहैं अर्थात् कामी, व्यभिचारी, लंपट, शोदा आदिक नाम धरातेहैं, और कइ लाखों रुपयेकी सम्पति थोड़े ही कालमें गंवाकर नङ्ग (कंगाल) हो जातेहैं फिर घरसे निरादर होकर जूएवाज सुलफेवाज सुथरे आदिकोमे रल जातेहैं इत्यादि और परलोकमें सूकरी कूकरी आदिककी यूनियोंमे तथा नरक योनिमे नाना प्रकारके वचनअगोचर महाकष्ट सहतेहैं जिनका शास्त्रो द्वारा कथन सुन २ कर शरीर रोमाञ्च हो जाताहै, किंवहुना अयि सज्जन भाइयों यदि अपना और अपने देशका भला चाहतेहो तो इस व्यभिचार कर्मको पांचो मंजलों से नीचे गिरादो ।

अर्थात् प्रथम तो अपने दिलसे द्वितीय महल्ले से तृतीय नगरसे चतुर्थ देशसे पञ्चम् यदि, सामर्थ

है तो यतिसाति जनों अपने उपदेशों द्वारा भारत से ही निकाल दो।

नोट-ब्रह्मचर्यके साधन करनेकी रीति देखनी हो तो श्री १००८ प्रवर्तिनी पार्वतीजी कृत (ब्रह्मचर्य विधि नामक पुस्तक) सं० १९७६ वि०में छपी देखलेवें।

पांचवां पाप परिग्रह।

आपने पांचवें परिग्रह पापका अर्थ तृष्णा कहा अर्थात् पदार्थोंका अतिलोभ करना यथा मैं ही सारे जगतका धन लूटलूं (सारे धनका स्वामी) मैं ही हो जाऊं अथवा कोई अपना माल धर कर मर जाए इत्यादि खोटे संकल्प करना और धनकी वृद्धिके लिए कसाईयों खटीकों बूचड़ों आदिक हिंसा करने वालोंके साथ व्यापार करना अर्थात् उनको अधिक सूदके लोभसे रुपया व्याजपर देना और शस्त्र बंदूक तलवार चाकू छुरी आदिके वेचने से लाभ उठाना, अपने व्यय (खर्च) से दुगनी तिगुनी आय (आमदनी) होनेपर भी संतोष न करना इत्यादि सब उपरोक्त कर्म पांचवें परिग्रहपाप में गिने जातेहैं। इससे इस लोकमें चिन्ता, शोक, कलह, क्लेश, मुकदमा झगड़े आदि अनेककष्ट उठाने पड़तेहैं और परलोकमें नर्क आदि गतिओंके महा

कष्ट भोगने पड़तेहै । इसलिए इस तृष्णापापसे वचना चाहिए ।

छठा पाप क्रोध ।

श्री महासतीजी महाराज ने छठा पाप क्रोध वतलाया जिसका अर्थ क्रोध के वस मे तपना कहा यथा अपने आप परक्रोध करना अर्थात् आत्म घात करना, सिर व छाती पीटना, विप खा लेना कूंएं व तालाव आदिकमे डूवकर मर जाना इत्यादि और दूसरे प्राणिओ अर्थात् दीन अनाथ निस्सहायजनों और मूक (वेजुवान) जन्तुओं जैसे गौ, भैस, वैल, घोड़े, गधे, तीतर, वटेर, कवूतर आदिक पर जो विचारे कुछभी अपना दुःख प्रगट नहीकर सकते उनपर क्रोध करके अधिक ताड़ना का करना, इस कर्मका नाम क्रोध है इससे जो दोप प्रकट होतेहैं वे अगणित है प्रत्यक्ष देखतेहै कि मनुष्य क्रोधमे आकर अपने परमप्रिय प्राणों तकको भी पूर्वोक्त कुछ नहीं गिनते इसलिए प्रत्येक मनुष्य को क्रोधसे अवश्य हट जाना चाहिये ।

सातवां पाप मान ।

आपने सातवे पाप मान का अर्थ अहंकार वतलाया जिसको शास्त्र कारोने सर्व दोपो की खान

कहा है अर्थात् माता पिता गुरु व राजा की आज्ञा को न मानना और मूंग मोठोंमें छोटा कौन बड़ा कौन ऐसे वचन अहंकार मे बोलकर भाई बन्धुओं में बड़ोंका निरादर करना और सच्चे गुरु व सच्चे पंचोंका कहा न मानना अथवा कोई नवीन झूठा मत निकाल धरना अर्थात् ऐसा कहना "चाहे कुछही हो मैं अपनी कही बातको ही चलाऊंगा" अर्थात् अपना मान न छोड़ना, मुकद्दमांबाज़ी जो कि धनको नष्ट करने वाली दिया सलाई है अहंकार में आकर करते ही जाना इत्यादि इस सातवें पाप अहंकारसे जो हानियां होती हैं वे अनेक हैं। आपने कभी यह कहावत भी सुनी होगी—

मान करन्ते सो गए जिन्हां न रहिआ वंश।
तिन्ने टिब्बे देखलो यादों कौरव कंस ॥

सत्य है, मान ऐसा ही बुरा है, इस लिए प्रत्येक स्त्री व पुरुषको मान का त्यागना ही उचित है।

आठवां पाप माया।

माया का अर्थ आपने छल कहा यथा कपट विश्वास घात, मित्रद्रोह अर्थात् मधुर वचनोंसे पहले मित्र बन कर भेद लेना और फिर उसको हानि पहुंचाना, अथवा बगुला भक्त बनजाना (भेषधारी

मायाचोरी अर्थात् साधुके वेषमें असाधु कर्म्मोंका करना यमों और नियमोंसे भ्रष्ट होकर धर्मात्मा कहलाना कुसती होकर सती कहलाना इत्यादि और इस आठवें माया पापसे जो दोष इस लोकमें उत्पन्न होते है उनका लिखना लेखनी की शक्तिसे बाहर है। अर्थात् कपटी का नाम ही सुनने से मन में एक प्रकार की व्याकुलता होने लग जाती है कपटी मनुष्यकोमहात्माओंने विड़ाली (विल्लि) जैसे नीचजन्तु के साथ उपमादी है, कपटी का विश्वास नहीं किया जाता है कपट से प्रेम और मित्रता का नाश हो जाता है जो सरल, सत्य क्षमादि गुण इस लोक में परम हितकारी और सुखकारी गिने जाते हैं वे इस पाप से नष्ट हो जाते हैं और परलोक में तिर्यक् योनि मे जन्म लेकर महान् कष्ट उठाने पड़ते हैं अर्थात् नाक छिदानी पीठलदानी भूख प्यास का सहना सदापरवसी में रहना इत्यादि, इसलिये प्रत्येक मनुष्यको मायाका त्याग करके अपने हृदय को शुद्ध और सरल रखना चाहिए क्योंकि सचाई से ही सब धर्म कार्य निभ सकते हैं और धर्म रूपी जहाज से ही भवसागर से तर सकते हैं इस लिये

सच्चाई का पल्ला न छोड़ो यथा लोक वाणी "सच्च का बेड़ा पार है" इत्यर्थः—

नवमां पाप लोभ ।

लोभका अर्थ आपने असन्तुष्टता (वेसवरी) अर्थात् लालच करना कहा यथा अपने खान पान वस्त्र भूषण धन सम्पत्ति आदि पदार्थों पर संतोष न रखना और औरों के पदार्थोंको देख २ झुरना व उनकी वांछा करना तथा इन्द्रियों के भोग शब्द रूप, गंध, रस, स्पर्श के लालचमें आकर जो अकार्य न करने योग्य हैं सो कर बैठने क्योंकि यह वात तो जगत् में प्रसिद्ध है कि लोभ सब पापोंका बाप है इस लिये इस लोभ पापका परित्याग करके संतोष का शरण ग्रहैं यथा कवि वचन—

गो धन गज धन रत्न धन कञ्चन खान सुखान
जब आवे संतोष धन सब धन धूलि समान ॥

दसवां पाप राग ।

आपने रागका अर्थ पक्षपात कहा जिसके प्रयोग से झूठे को सच्चा और सच्चे को झूठा बनाना बुरे को भला और भले को बुरा सिद्ध करना इत्यादि इस दसवें पाप रागनें बड़ा अंधेर मचा रखा है जो

मनुष्यको प्रकाश में आने ही नहीं देता पक्ष की लहर जिसके हृदय में लहरा रही हो उसको धर्म अधर्म की पहिचानही नही होसकती इस लिये सज्जन पुरुषो आप इस राग पापका परित्याग अवश्य मेव करे और निर्पक्ष होकर सच्चाईका रस चाट कर हृदय में आनंद भरें।

ग्यारहवां पाप द्वेष।

द्वेषका अर्थ आपने वैर भाव कहा जिस वैरके प्रभाव से मनुष्य मन से जानता हुआ भी उपरोक्त सच्चे को झूठा कहना और भलेको बुरा कहना किसीके बने बनाए कामको विगाड़नेकी चेष्टा करना अर्थात् किसीका धन आता रोकदेना (असामियोंको बहका देना) सगाई आती को रोकदेना (भांजी लगा देना) इत्यादि दुष्ट कर्म इसलोकमें मनुष्यको अपयश आदि कड़वे फल चखवाता है और परलोकमे बड़े बड़े दुःखों मे डालता है। इस लिए इसद्वेप पाप को त्यागना ही उचित है।

बारहवां पाप कलह।

कलह का अर्थ आपने क्लेश कहा, यथा भली शिक्षाको बुरी समझकर लड़ाई झगड़ा करना सीधी

बातों को भी उल्टा ही मानना अपने तप्त हृदयसे गालियां और दुर्वचन कह कर दूसरेके मनको भी तपा देना, मनके सुख और शान्ति को दूर करके दुःखी और व्याकुल बना देना इत्यादि,इस बारहवें पापके शब्द ही कह रहे हैं कि यह बड़ा दुष्ट पाप है। इस लिए सज्जन पुरुषो ! जहां तक बन पड़े इस पापसे बचो।

तेरहवां पाप अभ्याख्यान।

श्री महासती पार्वती जी महाराज ने तेरहवें पाप अभ्याख्यानका अर्थ कलंक लगाना कहा यथा किसी सच्चे निरापराधी पर मिथ्या दोषारोपण करके सिद्ध कर देना कि यह अपराधी है अथवा अपराध तो आप करना परन्तु करने वाला दूसरेको ठहराना जिससे उसका हृदय कमल दग्ध होजाता है अथवा यूंही झूठे दोष से किसी को लज्जित करना इत्यादि, इस तेरहवें पापके अर्थोंसे यह प्रतीत होता है कि इस पापसे महां कर्मोंका बंध होता है जिससे इस लोक और परलोकमें बड़ी बड़ी विपत्तिआं उठानी पड़ती हैं। इस लिए इस पापको अवश्यही त्यागो।

चौदहवां पाप पिशुन ।

इस पिशुन पापका अर्थ आपने चुगली खाना बतलाया अर्थात् सच्ची व झूठी बात बना कर एक दूसरे के आगे जाकहनी कि वोह तेरे साथ ऐसा बर्ताव करेगा वा कर रहा है ऐसा कहकर उससे भले बनगये अर्थात् उसने जाना कि यह मेरा दर्दी है खुश होकर कुछ देदिया वा आदर कर दिया ऐसे ही उसकी दूसरे को कहकर उससे भले बने अथवा कुछ ले खाया इसका नाम चुगल खोरी है, किसी फार्सी वालेने कहा भी है, किसी की बदी तू ना कर ऐब है कि उस का खुदा आलम उलगै बहे बुराई ना कर तु दिल मे कांप चुगल खोर के मुंहको डसते है सांप, इसलिये इस पापको त्यागना चाहिये ॥

पंद्रहवां पाप पर प्रवाद ।

आपने पर प्रवाद पापका अर्थ निन्दा करना कहा अर्थात् दूसरे के अवगुण वाद करना निन्दा है यथा दूसरे के अवगुण होते व अनहोते प्रगट करके उसे बुरा सिद्ध करना इत्यादि अतः निन्दा बहुत बुरा पाप है इसलिये आयि श्रोता जनो इसे त्यागना ही योग्य है ॥

सोलहवां पाप रत्या रति ।

आपने रतिका अर्थ हर्ष (प्रसन्नता) और अरतिका अर्थ शोक (दलगीरी) कहा यथा (प्रश्नः) कौनसी प्रसन्नता पाप है (उत्तरः) जो दूसरे लोगों को कष्ट में देखकर प्रसन्न होना अर्थात् किसी का पुत्र मर जावे किसीके पुत्रका नाता छूट जावे मुकद्मां हार जावे इत्यादि दुःखों में फंसे हुए को देख कर प्रसन्न होना यह पाप है (प्रश्नः) कौनसी दलगीरी पाप है (उत्तरः) जो किसी मनुष्य को सुखी देखकर दुःखी होना यथा किसी के घर पुत्र हुआ किसीका मुकद्मा सिद्ध हुआ अथवा राजा की ओरसे उपाधि अर्थात् पद्वी (औहदह) मिला इत्यादिको देखकर दलगीर होना (मनमें जलना) यह महापाप है यह उपरोक्त शब्दही बतला रहेहैं कि यह पाप कहां तक बुरा है और इसके फल कैसे बुरे होंगे इसलिये इसका त्यागनाही धर्म है ॥

सतारहवां पाप माया मूस ।

श्री महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने सतारहवां माया मूस पाप का अर्थ धोखा अर्थात् छल से झूठ बोलना बतलाया । इसका पूरा स्वरूप

समझाने के लिये आपने एक दृष्टान्त भी दिया जो निम्नलिखित है—

किसी नगरमें एक साहुकार रहता था जिस के कई कर्मचारी हुंडी पर्चीं आदि के काम पर नियुक्त थे एक वार उस साहुकार के नेत्रोंमे कुछ रोग होगया जिससे उनका एक नेत्र जाता रहा। उसके अनन्तर घटना वशसे एक दिन वह घोड़े परसे गिर गये जिसमें उनका एक हाथ टूट गया वहुत यत्न करने पर भी कुछ लाभ न हुआ विवश होकर हाथ कटवा दिया गया फिर कुछ समय पीछे कर्म वशसे उनकी स्त्री मृत्यु होगई। लोग सहानुभूतिके लिये आए तव उनके मित्रों और कर्मचारियोंने साहुकारसे कहा कि आपकी आंख और वांह वनानेकी तो हममें समर्थ नहीं है परन्तु आप विवाह अवश्य करा लें। साहुकार तो चुप रहा परन्तु उनका एक मित्र वोला आपकी आयु तो साठ वर्षकी हो चुकी है सगाई कौन देगा। दूसरा वोला इसकी कोई वात नहीं रुपएसे सव काम हो सकते है इस घरमे धन तो वहोत है चार पांच हज़ार रुपया देकर विवाह करा देगे। तीसरा

बोला वाह महाराज अच्छी कही कन्या देकर व्याहनेमें कोई प्रतिष्ठा है। तब सबने उसको कहा, जो तू ऐसा ही चतुर है तो विना रुपया खर्चे विवाह करा दे। उसने कहा करवा तो दूं पर मुझे झूठ बोलना पड़ेगा जिससे सदाके लिए कलंक लग जायगा। उन्होंने कहा तुम तो बड़े चतुर हो ऐसे ढंग से काम करो कि झूठ बोलने का कलंक तुम पर न लग सके उसने कहा बहुत अच्छा। इस प्रकार उनको विश्वास दिला कर वह किसी नगरमें एक सेठको मिला उसके घर एक नवयुवती और योग्य कन्या थी वह सेठ इस कर्मचारी को जानता भी था उसको निश्चय था कि यह कभी झूठ नहीं बोलता अर्थात् सत्यवादी है। कर्मचारी ने कहा कि हमारे सेठकी धर्म पत्नी स्वर्गवास हो गई है आप अपनी कन्याकी सगाई दे देवें तो अच्छा है। कन्याके पिताने कहा कि आप अपने सेठके विषयमें मुझे कुछ परिचय दीजिए? वह बोला बड़े धनाढ्य और कुलीन हैं उनकी आयु उन्नीस बीस इक्कीस वर्षकी है दाता ऐसे हैं कि एक हाथ से दान देते हैं और न्याय शील ऐसे हैं कि सब

को एक आंखसे देखते हैं वरके इतने गुण सुन
कर सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ कि कन्याके बड़े उत्तम
भाग्य हैं जो विना खोज किये ही ऐसा वर मिल
गया अस्तु तब उस साहुकारने प्रसन्न होकर सगाई
के साथ ही विवाहका लग्न पत्र भी उस कर्मचारी
के हाथ दे दिया और कहा कि आपकी सचाईके
भरोसे पर मैंने यह कार्य किया है तब वह कर्म-
चारी प्रसन्न होकर वहां से विदा हुआ और गृह
पर आकर अपने सेठको बधाई दी और कहा कि
मैंने जो कुछ किया है केवल सत्यके आश्रय पर
किया है कन्या सचमुच बड़े ऊंचे वंशकी है और
विना रुपया खर्चे ही नाता लेआया हूं । साहुकार
और उसके मित्र आश्चर्य्य रह गए और धन्यवाद
देकर अङ्ग फूले न समाये फिर विवाह की तैया-
रियां करनेके लगे और कन्याके पिताको विवाह
की स्वीकृति भेजदी । नियत तिथि पर बरात
चढ़कर कन्या वालेके घर पर पहुंची । जब सेठ
जी सेहरा बांधकर सुमरकी ड्योढ़ीमें फेरोंके लिये
पहुंचे तो उसके मुंहमें तो एक भी दांत दिखाई न
दिया और गाल पिचके (चेंठ) हुए देखे । साहुकार

विस्मित होकर देखता है कि मूछोंके बालोंकी जड़ें भी सफेद हैं जिससे जान पड़ता है कि इनको वस्मा लगा कर काला किया है होटोंसे लार टपक रही है आंखोंसे जल बहता है इनकी आयु भी साठ वर्षके लगभग प्रतीत होती है अच्छी तरह देखा तो बोला हैं यह क्या इसकी एक आंख ही नहीं है ओहो यह तो काणा है फिर क्या देखता है कि इसकी एक बांह भी कटी हुई है यह देख कर वह साहुकार शोकके समुद्रमें डूब गया और मनमें सोचने लगा कि यह क्या अन्धेर हुआ हाय हाय उस सत्यवादीने तो सत्यानाशही कर दिया मेरे जिगरके टुकड़े कन्याको असत्य बोलकर डुबो दिया अतः बड़े क्रोधमें आकर चिल्लाया कि उस पुरुषको अभी मेरे पास लाओ । वहां देर ही क्या थी वह तो वहीं पर स्थित था शीघ्रही सन्मुख आ खड़ा हुआ । साहुकार बोला अरे कपटी तूने इतनी झूठी प्रशंसा करके मेरी कन्याको डुबो दिया और अपयशका टीका मेरे मस्तक पर लगवा दिया तूने मेरे साथ किस जन्मका वैर लिया । उसने उत्तर दिया कि मैंने रञ्चक मात्र भी झूठ नहीं बोला जो

कुछ मैंने कहा था वह सच है हाथ कंगनको आरसी क्या सेठ साहब सन्मुख खड़े हैं देखलो मेरा कहा यथार्थ है।

साहुकार—अरे दुष्ट मिथ्या वादी तूने कहा था कि लड़केकी आयु उन्नीस बीस इकीस वर्षकी है यह तो साठ वर्षका बूढा है।

कर्मचारी (मुनीम)—तो उन्नीस बीस इकीस कितने होते है यह भी साठ ही होते है इसमे मैंने मिथ्या क्या कह दिया।

साहुकार—अरे सच्चके पुतले साठके बच्चे इसके तो एक आंखभी नहीं काणां है और एक बांह भी नहीं टूंडा है।

मुनीम—मैंने यहभी तो कहा था कि एक हाथ दान करते है अर्थात् उनका एक ही हाथ है दूसरा नहीं है और यह भी कहा था कि सबको एक आंखसे देखते है अर्थात् काणे है फिर झूठ कैसा यदि आप न समझे तो दोप आपका है न तु मेरा इस पर साहुकार अपनी उतावली (जलदी) और मूर्खता पर बड़े ही लज्जित हुए और उसके कपट से चकित होकर पछताने लगे और अन्त में भारब्ध पर विश्वास करके कन्या दे दी।

यह दृष्टान्त सुना कर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने श्रोता जनोंकी ओर लक्ष्य करके कहा कि क्या उस कर्मचारीने सत्य कहा था नहीं नहीं यह सत्य नहीं था, इसका नाम माया मृस अर्थात् फरेव है अर्थात् पेंच डाल कर झूठ बोलना है यह झूठसे भी वधकर पापहै,जैसे फांदी जाल बिछाकर पक्षिओंको जालमें फंसालेते हैं ऐसे एच पेंच लगा कर झूठी बातोंका जाल बिछाकर सच्चेको झूठा बनाकर निरुत्तर करके पराभव करलेना है इत्यर्थः इस पापके फल बहुत काल तक नरक तिर्यंचादि गतियोंमें निरूपम कष्ट सहकर भोगने पड़ते हैं इस लिये धर्म्मात्माओंका धर्म है कि वे इस पापसें अवश्यही परे रहें ॥

अठारहवां पाप मिथ्या दर्शन सल्ल ।

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहाकि सबसे अन्तिम पाप मिथ्या दर्शन सल्ल है जिसके अर्थ सम्यक्त्वभावमें मिथ्यात्व रूपी सल्ल अर्थात् भ्रमका होना है यथा धर्म, अधर्म, चेतन, जड़, पुण्य, पाप, लोक, परलोक, बंध, मोक्ष आदिकके माननेमें ऐसा भ्रम उत्पन्न हो जाना कि न जाने वास्तवमें इन पदार्थों

की अस्तित्वहै किंवा नही अर्थात् नास्तिक होजाना है यह अठारहवां पाप धर्म जैसी सत्य वस्तुमें भी भ्रम उत्पन्न करने वाला है और अज्ञान अंधकारमें डालने वाला है क्योंकि सब महात्माओंका मत है कि धर्म के सिवा इस लोक व परलोकमें कोई भी वस्तु सच्चा आश्रय देने वाली नही है। एक मात्र धर्महो प्रत्येक स्थान और प्रत्येक समयमें प्राणीमात्र का सहायक है परन्तु यह मिथ्या दर्शन सल्ल पाप (नास्तिकत्व) इसमें भी भ्रम उत्पन्न कर देता है इस लिए यह नास्तिकत्त्व पाप सबसे बढ़ करहै और सब से पहले सबको वर्जनीय है।

उपरोक्त अठारह पापों का वर्णन करके श्री महासती पार्वती जी महाराज ने कहाकि मनुष्यों के हृदय पाप कर्मोंकी ओर तो सहज ही में झुक जाते हैं और उनको सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं परन्तु जब उनके कड़वे फल भोगने पड़ते हैं तब उनका भोगना अति दुष्कर हो जाता है जैसे रोगीके लिये कुपथ्य करना तो सुगम है परन्तु जब उसका फल लगता है अर्थात् रोग बढ़ जाता है तो फिर सम्भलना कठिन हो जाता है इत्यर्थः इन उपदेशों को सुन कर

लोगोंके हृदय कांप उठे अर्थात् बहुत लोगों को पूर्वोक्त पापोंसे घृणा उत्पन्न हुई अतः कई दुकानदार लोगोंने चूहे चिड़ीयां ऊंदर आदि पकड़नेके पिञ्जरों का तथा शस्त्र आदिकका क्रय विक्रय तक बंद कर दिया, कई मनुष्योंने झूठ बोलना झूठी साक्षी देना त्याग दिया महसूल चुंगीका गबन करना छोड़ दिया, वेश्या और भांडोंका नचाना हानिकारक रसम समझ कर बंद कर दिया, बहुत लोगों ने बटन छतरीके मुट्ठे आदिक हड्डी की बनी हुई वस्तुएं और चमड़े वाली टोपियां चमड़ेके बेग, बटुवे और बूट, पेटी आदिकका व्यवहारमें लाना अथवा पहनना परित्याग कर दिया बहुत लोगोंने कसाईयोंको रुपया सूद पर देना त्याग दिया और कई अजैन लोकोंने आखेट (शिकार) खेलना मांस खाना मदका पीना त्याग दिया इत्यादि किं बहुना आपके नाभे पधारनेसे दया धर्मका बड़ा ही प्रचार हुआ ॥

हिज़ हाईनैस श्री महाराजा नाभा नरेश की ओर से दो प्रश्न ।

आपके उपदेशोंसे जब इस प्रकार धर्मका प्रचार हो रहा था तो श्री महाराजा हीरासिंह साहब बहादुर

नाभा नरेश ने भी आपकी प्रशंसा सुनी और दो प्रश्न अपने पण्डितोंकी इच्छाऽनुसार लिखवा कर आपकी सेवामें भेज दिए जो नीचे लिखे अनुसार हैः—

१ प्रश्न—स्त्रीको उपासना अर्थात् दीक्षा लेना योग्य नहीं है क्योंकि स्त्री दीक्षा लेकर अपने उपासकों को उपदेश अर्थात् शिक्षा देवेगी तो वे उपासक उसके उपदेश को सुन कर वर्णसंकर हो जाएंगे और वे वर्ण संकर नर्कके अधिकारी होते हैं और उनके पितर भी पिण्डके न लगने से स्वर्गसे निकल कर नर्क में पड़ जाते हैं। यथा श्लोक गीता अध्याय पहलाः—

स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः ।४१।
संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया ।।४२।।

अर्थ—कुलकी स्त्रीयां जब दुष्ट हो जावेगी तो उन दुष्ट स्त्रियो मे से वर्णसंकर उत्पन्न होंगे। वे वर्ण संकर जिन पुरुषोंने कुलका नाश किया है उनको और उसके कुलको नर्कमे पहुंचाते है क्योंकि पिण्ड दान और तर्पणके लोप हो जाने पर पितर नरक में पड़ते हैं।

२ प्रश्न—स्त्री और शूद्रको वेद पढ़नेका अधिकार नहीं है यथा श्रुतिः—

स्त्री शूद्रो ना धीयताम् ।

अर्थात् स्त्री और शूद्र वेद न पढ़ें केवल सुननेका ही अधिकार है क्योंकि रूप प्रसन्न एक शूद्र था उसने वेदों का उपदेश किया था उसका बलभद्र जीने सिर काट दिया था और स्त्री के ३ धर्म मनु जी लिखते हैं:—

(१) पति के साथ सती होना ।

(२) पतिकी मृत्युके पश्चात् उसकी शय्याका सेवन करना ।

(३) पतिको ही ईश्वरके तुल्य समझना ।

—०—

पहले प्रश्न का उत्तर ।

जब श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने दोनों प्रश्नों को पढ़ा तो कहा कि इन दोनों प्रश्नोंके करने वाले पर मतिमान पण्डितोंके लिये कितने खेदकी बात है । देखो प्रश्नका भाव तो क्या है और जो साक्षी में श्लोक लिखे हैं उनका भाव क्या है अर्थात् प्रश्न तो यह है कि स्त्रीको प्रवर्जा अर्थात् दीक्षा लेना

योग्य नहीं क्योकि उसके उपदेश को सुनकर लोग वर्णसंकर होजाते हैं और वर्णसंकरो का पिण्डोदक पितरों को नहीं लगता है इस लिए पितर स्वर्गसे निकलकर नरक में पड़ जातेहैं। इस वातके सिद्ध करने को किसी भी शास्त्र का प्रमाण न पाया तो गीता के प्रथम अध्याय का इकतालीसवां आधा श्लोक और वियालीसवां पूरा श्लोक डेढ श्लोक लिख दिया जिनका अर्थ उपरोक्त प्रकरण से कोई सम्वन्ध नहीं रखता है। प्रश्नकर्त्ता ने इकतालीसवें श्लोक के पहले दो पद नहीं लिखे इस लिये अव पूरा श्लोक लिखा जाता है। पाठकजन इस श्लोक और इसके अर्थ की ओर अवश्य ध्यान करें—

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियाः।
स्त्रीपु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्ण संकरः ॥४१॥

अर्थात् जिस समय श्री कृष्णजी की आज्ञानुसार अर्जुन कौरवो के अमित सैन्य दलके साथ युद्ध के लिये प्रस्तुत हुए तव अर्जुन कौरवो की सेना में अपने आचार्य्य और पितापितामह मामा मामु के पुत्र तथा अन्य सम्वन्धियों को देखा तो अर्जुनजी के हृदय में करुणा का आविर्भाव हुआ और जी कांप उठा और शस्त्र हाथ से गिर गए

और बोले कि हे कृष्ण जिन सम्बन्धियों के लिए भूमि चाहिए है उन्हीं को मार कर भूमि का लेना मुझे उचित नहीं है और कुल के पुरुष मारे जाने से कुलघ्न दोष होता है और उन कुलके पुरुषों की स्त्रियां विधवा होजाती हैं और उनमें से कई व्य-भिचारिणी होजाती हैं अर्थात् और पुरुष का सङ्ग कर लेती हैं फिर उन व्यभिचारिणिओं से जो सन्तान होती है उस को वर्णसङ्कर कहते हैं और कुल का नष्ट होने से हे कृष्ण कुल धर्म भी नष्ट होजाता है और अधर्म फैल जाता है ॥४१॥

अब विचार पूर्वक देखिए कि इस श्लोक का अर्थ क्या है और प्रश्नकर्त्ता पंडित जी प्रश्नमें क्या लिखते हैं कि जो स्त्री साध्वी व सन्यासिन होकर उपदेश करे उसके उपदेश सुनने वाले वर्णसङ्कर हो जाते हैं और श्लोक का अर्थ ऊपर देखो वहां क्या प्रकट किया गया है कि जो कुल के पुरुष मारने से कुल की स्त्रियां व्यभिचारिणी होकर सन्तान उत्पन्न करें तो वह संतति वर्णसंकर होती है इत्यर्थः।

श्लोक ४२वें का भावार्थ।

संकरो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्त पिण्डोदक क्रिया॥४२॥

भावार्थ—वह वर्णसङ्कर नरक में पहुंचाता है किसको अर्थात् कुलघ्नों को और कुल को क्योंकि उस वर्णसङ्कर के हाथ का पिण्डपानी पितरों को नहीं पहुंचता इस लिए पितर भी स्वर्ग से निकल कर नरक मे पड़ जाते हैं इत्यादि ॥

अव पाठक ध्यान पूर्वक देखें कि उपरोक्त लिखे दोनों श्लोकोसे क्या सिद्ध हुआ कि वर्णसङ्कर व्यभिचारिणी का पुत्र होता है जिसका पिण्डपानी पितरों को नहीं पहुंचता इस लिए पितर नरक में पड़ जाते हैं, न कि साध्वी के उपदेश सुनने वाले वर्णसङ्कर होजाते हे और नरक मे पड़ते हैं,पाठक विचार करें कि जब पण्डित लोक जो प्रत्येक जाति के नेता समझे जाते हे वे सत्य पर कुठार चलाने वाले हैं। तो उसको दृढ़ करने वाले कौन होंगे देखिए पण्डितों की पण्डिताई और उनका अन्याय तथा पक्षपात कि कैसा अनर्थ करके लोगों को अन्धेरे में डाल रहे हे और किस प्रकार लोगों को सत्य से हटाकर असत्य की ओर लेजारहे हे अव इससे अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं समझी जाती, बुद्धिमान् जो सत्य की परीक्षा करने वाले हे वे इस पर विचार कर के वास्तविक अभिप्राय

को जान लेवेंगे । यह लोक लोभ के कारण अर्थ के अनर्थ करके अपने सेवकोंको और अन्य लोगों को सतपथ से भ्रष्ट करने में कितना प्रयत्न कर रहे हैं देखिए पहले तो पण्डितजी ने डेढ़ श्लोक लिखा है पूरे दो नहीं लिखे क्योंकि लोक इन श्लोकों का भाव न समझ लेवें और फिर जान बूझ कर आधे श्लोक का अर्थ भी ठीक नहीं किया, विचारने की बात है कि जो अर्थ पण्डित जी ने किया है कि स्त्री को दीक्षा का लेना और उपदेश का करना उचित नहीं है सो इन श्लोकोंमें उसकी गन्धि तक भी नहीं है क्योंकि स्त्री को दीक्षा का लेना और उपदेश का देना योग्य है जैसा कि पिता अपने पुत्र पुत्री को लड्डु खिलावे व दूध पिलावे तो उन का मुह मीठा होता है और बल बढ़ता है अब प्रश्न यह उठता है कि यदि माता मिठाई खिलादे और दूध पिलादे तो क्या उनका मुंह कड़वा होजावेगा और वे दुर्बल होजाएंगे नहीं नहीं ऐसा कदापि नहीं होगा तब भी उनका मुंह मीठा ही होगा और बल भी बढ़ेगा इसी प्रकार यदि कोई धर्मात्मा पुरुष धर्म शिक्षा देगा तो भी श्रोताओं को धर्म का लाभ होगा और यदि कोई धर्मिन (साध्वी) स्त्री धर्म

शिक्षा देगी तो भी श्रोताओं को धर्म का लाभ ही होगा ॥

—:○:—

दूसरे प्रश्न का उत्तर ।

दो प्रश्न जो ऊपर कहे गए है उनमें से अव दूसरे प्रश्न का उत्तर सुनें । परन्तु पहले आप पूर्व लिखित दूसरे प्रश्न को फिर पढ़ जाएं फिर उसका यह उत्तर जो श्री महासती पार्वती जी महाराजने दिया है उस पर विचार करें जो लिखा जाता है:—

हे भाई श्रुतिके अर्थात् मूल सूत्रके आदि अन्त प्रकरणके देखने से अर्थ सिद्ध किया जाता है क्योंकि धर्म शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, दुर्गतिमें पड़ते हुए प्राणियोंको धारण करलेने अर्थात् वचा लेनेका नाम धर्म है जो धृञ् धातुसे वनता है जिसकी व्युत्पत्ति धरतीति धर्मः, यह है और धर्म नाम सुकृत आचरण अर्थात् श्रेष्ठ आचारोका भी है और धर्मनाम स्वभावका भी है जैसाकि अग्निका धर्म जलानेका और जलका धर्म क्लेदन (गलाने) का है इत्यादि, और एक कुलधर्म होता हे और एक आत्म धर्म होता हे अतः मनुजीने जो स्त्रीके तीन धर्म अर्थात् (१) पतिके संग सती होना (२) पतिकी शय्याका सेवन करना

(३) पतिको ही ईश्वर समझना यह कुल धर्म कहे होंगे क्योंकि यदि स्त्रीके उपरोक्त तीन ही धर्म होते तो फिर कुमारी कन्यायें तो अधार्मिन ही रहीं क्योंकि उनके पति तो कोई नियत हुये ही नहीं तो फिर वह ईश्वर किसको समझेंगी अर्थात् जाप किसका करेंगी और सती किसके संग होंगी और शय्या किसकी सेवन करेंगी इत्यर्थः, यदि कुमारी व्रतकरें व दान दें व सत्यवादिनी हों व देव गुरु धर्मकी भक्ताहों और पण्डिता ज्ञानवंतीहों अथवा संतोषवाली हों उनमें से यदि कोई कुमारी ही मर जाय तो क्या उनके उपरोक्त ३ धर्मोंके विना सव धर्म निष्फल माने जाएंगे क्या उसको अधार्मिन ही मर गई समझेंगे, नहीं नहीं कदापि नहीं वह बाल ब्रह्मचारिणी धर्मा-त्मा मानी जायेंगी और अवश्य स्वर्गमें जायेंगी। इस से सिद्ध हुआ कि स्त्रीको दानका देना तपका करना और शास्त्र पढ़कर आत्म परमात्मका पहचा-नना और दीक्षा लेना उपदेश करना भी धर्म है और जो आपने इस प्रश्न में श्रुति लिखी है कि (स्त्रीशूद्रौनाधीयताम्) सो उसका तो इतनाही अर्थ है कि स्त्री और शूद्र न पढ़े परन्तु शास्त्र द्वारा देखने से तो यह अर्थ भी ठीक नहीं है क्योंकि वेदों और

पुराणों में सुना जाता है और कुछ देखा भी है कि स्त्री और शूद्रको शास्त्र विद्या और वेद पढ़ने का अधिकार है उदाहरण ।

दूसरे प्रश्न के उत्तर में ।

इतिहास पंचमवेद महाभारत में सरस्वती (सरसवाणी) वेदो की अधिकारिणी हुई हैं जिन्होंने शंकराचार्य्य को जो वेदों के पढ़ने में मुख्य थे उनको शास्त्रार्थ में हरा दिया है। और राजा शिवप्रसाद सितारा हिन्द ने अपनी बनाई हुई मिथ्यात्व तिमिर नाशक पुस्तक के पृष्ट ५६ पर लिखा है कि माता शारिका ऐसी पण्डिता थी कि उसने अपने भाईको चारों वेदों मे हरा दिया इत्यर्थः–

गार्गी जी और ऋषिओं की चर्चा ।

आत्म पुराण का पंचम अध्याय और बृहदारण्यकोपनिषद् में गार्गी जी दिगम्बरा सन्यासिन वेदोंकी अधिकारिणी हुई है जिसने राजा जनककी सभामें ऋषियोको स्त्री पुरुष के द्वैत भावसे हटा कर एकताके भाव में (आत्म स्वरूप में) दृढ़ किया है अर्थात् गार्गीजी बाल्यावस्थामें वेदोंको पढ़ती रहीं जब वेदोके पढ़ने से ज्ञान हुआ तो ऐसे वैराग्यको

प्राप्त हुई कि सन्यासिन होकर वस्त्र तक उतार दिए और सर्वथा नग्न रहने लगीं। एक बार राजा जनक ने ऋषिओं की सभा लगाई जिससे उनका यह प्रयोजन था कि ऋषि लोक मुझको मुक्तिका मार्ग बतावें। उस सभामें याज्ञवलक्य और शौनक आदि सहस्रों ऋषि एकत्र हुए, यदा (जब) गार्गीजी को भी पता लगा कि जनक की सभामें बहुत ऋषि शास्त्रार्थ करनेके लिए एकत्र हुएहैं। तदा (तब) गार्गी जी ने विचारा कि ऐसे अवसर पर तो मुझे अवश्य शास्त्रार्थ से लाभ उठाना उचित है तब वह गार्गी जी उसी नग्न मुद्रासे चन्द्र मुखी मृगाक्षी कंचन कलशवित कुचों की धारिका निर्भयता से सभा में आकर चौकड़ी लगा कर बैठ गई। तब एक ऋषि बोला कि हे साध्वी? तुझ स्त्रीको इस प्रकार नग्न मूर्ति से पुरुषों की सभा में आना योग्य न था तुझे लज्जा करनी चाहिए थी।

गार्गीजी—मैं पुरुषोंकी सभा में नहीं आई हूं मैं तो स्त्रियों की सभामें आई हूं स्त्रियोंको स्त्रियों से लज्जा कैसी।

ऋषि—तो क्या हम सब स्त्रियां हैं।

गार्गीजी—हां स्त्रियां हैं, क्या आपने इस मंत्र

को नहीं पढ़ा कि "आत्मज्ञान वर्जिता वाला" अर्थात् जो पुरुष आत्म ज्ञानसे रहित हैं वे वाला अर्थात् स्त्री के समान हैं इसलिए आप लोग भी आत्मज्ञान रहित हो, जो मेरी वाह्य देह पर दृष्टि रखते हो आत्म स्वरूप पर नहीं ।

ऋषि—क्या यहां सभी अज्ञानी है?

गार्गीजी—एक याज्ञवल्क्य ऋषि आत्मज्ञानी पुरुष हैं ।

ऋषि—फिर तुम उनसे ही लज्जा करो ।

गार्गीजी—अयं पुरुषः अहं पुरुषः अर्थात् यह भी पुरुष है और मैं भी पुरुष हूं तो फिर पुरुषों से पुरुषों को लज्जा कैसी अर्थात् याज्ञवल्क्य भी आत्मज्ञानी है और में भी अत्मज्ञानकी धारिका हूं । यथा श्लोकः—

आत्म वोधेन ये पूर्णाः पुरुषास्ते उदाहृताः ।
यादृशास्तादृशाः सन्तु शरीरेण द्विजोत्तमाः ॥१॥

अर्थ—आत्म बोध करके जो पूर्ण हों उन्हीं को पुरुष कहा जाताहै हे ऋषिजन! शरीर करके यादृश तादृश होते हुए अर्थात् चाहे पुरुष रूपमें हो चाहे स्त्री रूपमें हो। हे ऋषि! आत्मा न पुरुष है न स्त्री है और न नपुंसक है आत्मा सदैव

विलिंगी (अरूपी) है शरीर करके अथवा स्वभाव करके पुरुष स्त्री नपुंसक कहलाते हैं अर्थात् स्त्रियां वे होतीहैं जिनका यह स्वभाव हो कि मेरा श्वसुर मेरा जेठ मेरा देवर मेरा पति मेरा पुत्र मेरे भूषण मेरे वस्त्र मेरी सौतन (सौकन) मेरी सखी मेरा घर बार इत्यादि सो मुझ में इन बातोंमें से कोई भी नहीं है फिर मैं स्त्री कैसे हूं और नपुंसक वह होते है जो हृदयमें रहे हुए आत्माको न जाने अर्थात् जड़ देह को ही अपना आप समझें इसलिए हे ऋषि ! तुम नपुंसक समानहो और तुम काम क्रोध लोभ मोह अहंकारके वश वर्ती हो अर्थात् तुमको उक्त पांच पति सेवन करतेहैं इसलिए तुम स्त्री हो प्रत्युत वाराङ्गनाके समान हो और मैं काम क्रोध लोभ मोह अहंकारको अपने वशमें रखती हूं इस लिए मैं इन पांचोंका पति पुरुष हूं, इत्यादि गार्गी जी के वचनों से ऋषिजन अत्यंत प्रसन्न चित्त हुए और सभा भी आनन्दको प्राप्त हुई और बाह्यवृत्ति की अविद्या (द्वैत) भावनाको छोड़कर आत्मस्वरूप को जाना। देखो आत्मपुराण पंचम अध्याय श्लोक ३३१ से ३४० तक। इस कारणसे ही श्री चाणक्य पण्डितका कथनभी सत्य प्रतीत होताहै कि स्त्री

की बुद्धि पुरुषकी बुद्धिमे चतुर्गुनी होतीहै. यथा चाणक शतकम् श्री चाणक पण्डित विरचितम् (B A) उपाधी धारित श्री जीवानन्द विद्यासागर भट्टाचार्य्य विरचित व्याख्या संकलितम् अर्थात् चाणक्य शतक पुस्तक सरस्वती प्रेस कलकत्ता में १८८६ ई० मे मुद्रित—

श्लोक १८वां।

आहारो द्विगुणः स्त्रीणाम्, बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च, कामाश्चाष्ट गुणः स्मृतः॥

अर्थ—स्त्रियोका आहार पुरुषोकी अपेक्षा दुगना होता है और स्त्रिओं की बुद्धि पुरुष की बुद्धिकी अपेक्षा चारगुनी होतीहै और साहस छे गुना होताहै तथा काम आठ गुना होताहै इत्यर्थः

पाठक! चाणक्यका मूल श्लोक तो यही है जो यहां लिखाहै परन्तु शोक! सत्यरूप वृक्षकी जडों को काटने वाले इनमे भी कुछ परिवर्तन करनेसे पीछे न हटे। मुझे प्रतीत होताहै कि जब उनको इस बातसे लज्जा आई कि स्त्रिओंकी बुद्धि पुरुषोंकी अपेक्षा चार गुनी लिखी है तो उन्हो ने नूतन चाणक्य नीति पुस्तकों मे बुद्धि के शब्दको काट कर लज्जा रख दिया-यथा लज्जा चापि चतुर्गुना इत्यादि, शोक!

अति शोक !! ऐसे पक्षपाती जनोंकी बुद्धि पर ।

देवहूति को योग का उपदेश ।

सुनाहै कि कार्तिक माहात्म्य में गायत्री जी को ब्रह्माजी की स्त्री और वेदों की माता कहा है और उन्होंने गद्दी पर बैठकर सभामें शिक्षा की है और भागवत के छठे अध्याय में कपिल मुनि ने अपनी माता देवाहूति को योगका उपदेश किया है अब बिचारो कि यदि स्त्री को योगका अधिकार न था तो कपिल मुनिने अपनी माता को योग का उपदेश क्यों दिया इत्यादि ।

जैन मत का प्रमाण ।

इसके पश्चात् श्री महासती जी महाराज ने कहा कि जैनसूत्र षष्ठांग ज्ञाता धर्म कथाके अध्याय ८वें में चोखा नामकी परिब्राजिका चार वेद षष्ठांग की ज्ञाता हुईहै जिसने पुरुषोंकी सभामें दानधर्म शौचधर्म का उपदेश किया, ऐसा लिखा है ।

पाठक ! चोखा जैनकी साध्वी न थी परन्तु उसका वर्णन जैनसूत्रों में इसलिए आयाहै कि उस ने जैन राजकुमारी परम पण्डिता श्रीमती श्री ... मारी जी से चर्चा की थी, इससे स्पष्टतया

सिद्ध हुआ कि अन्य मतोंमें भी स्त्रियां विद्या पढ़ती थीं और दीक्षा भी लेती थीं और पण्डिता होकर स्त्री व पुरुषोंको उपदेश भी देती थी जब ग्रन्थ कह रहे हैं तो न जाने पण्डित महाराज ने किस प्रकार विना सोचे समझे अपने ही ग्रन्थों के विरुद्ध ऐसा प्रश्न कर भेजा है। निस्सन्देह हिन्दू जाति के नेता स्वार्थी हो गए हैं अर्थात् सत्यधर्म के उपदेशकों से द्वेष रखना ही इन्हों ने अपना धर्म वना लिया है अर्थात् स्त्री जाति के घोर शत्रु वन गएहैं उन के सम्पूर्ण स्वत्व छीन लिए हैं, वेद विद्या का पढ़ना उनके लिए सर्वथा वंद कर दिया है, सम्भवहै इस से उनका यह प्रयोजन हो कि वे पण्डिता और विदुषिआं न वन सकें मूर्खा ही रहें और उन की संतान भी मूर्ख रहे ताकि हमारा कोई सेवक वच्चे से बूढ़े तक सदासत् की परीक्षा करने के योग्य न हो सकें। हमारी ही हां मे हां मिलाते रहें क्योंकि माताकी शिक्षा का वालक पर जितना प्रभाव पड़ सकता है उतना किसी दूसरी शिक्षा से नहीं हो सकता इसलिये प्रार्थना है कि यदि अव भी आप अपने आपको देशके हितैषी वनाना चाहतेहो तो स्त्री शिक्षा की त्रुटिको दूर करो क्योंकि जव तक

स्त्रिआं योग्य बनकर मातृशिक्षा का प्रसाद अपनी संतान पर न डालेंगी तब तक बालक योग्य न बन सकेंगे और बालक जब तक योग्य न बनेंगे तब तक देशसे मूर्खता दूर न होगी और मूर्खता के दूर हुए बिना अपने आत्मिक और व्यावहारिक धर्म का ज्ञान न होगा और धर्म के ज्ञान बिना इस लोक और परलोकके सुखकी प्राप्ति न होगी इत्यर्थः ।

इसलिए आप प्रयत्न करके स्त्रिओं के छीने हुए स्वत्व (अख्त्यारात) उन्हें वापिस दिला कर अपने देशको फिर उसी अवस्था पर देखें जो अब से दो सहस्र वर्ष पहले थी ताकि ज्ञान की खड्ग से आप की सब आपत्तियां दूर हों ।

स्त्री का तीर्थंकर होकर उपदेश करना ।

विदेह देश मिथिला नगरी कुंभ राजा इक्ष्वाकु वंशी प्रभावती रानीकी कन्या श्री मिल्ली कुमारी जो महाराज उन्नीसवां तीर्थङ्कर हुई हैं जिन्हों ने छे देशोंके छे राजाओंको प्रतिबोध करके योग धारण कियाहै और जिन्होंने सर्वज्ञ होकर राजाओंकी सभा में दया सत्यादि धर्मका स्वरूप प्रकट कियाहै जिनको

पैंसठ लाख वर्षके लग भग बीत चुके है इसका सविस्तर कथन ज्ञाता सूत्रके आठवे अध्ययन मे देख सकते है।

श्रीमती राजीमतीजी का सर्वज्ञ होना ।

(२) मथुरा नगरी यादव वंश राजा उग्रसेन की कन्या श्रीमती श्री राजीमती जी महाराज ने योग धारण करके श्री रहनेमि जी महाराज जैन मुनिको उपदेश करके उनको धर्ममें दृढ किया और फिर सर्वज्ञा होकर मोक्ष हुई जिनको अनुमान ८६००० वर्ष व्यतीत होचुके है, जिसका नीचे संक्षेप से वर्णन किया जाता है—

चिरकाल हुआ कि भारत खड मे कोशलदेश वनिता (अयोध्या) नगरीमे नाभि राजा मरुदेवी रानीका पुत्र ऋषभदेव भगवान इक्ष्वाकु वश काश्यप गोत्री जैन धर्मावतार हुए जिनके संसारी अवस्थामें १०० पुत्र थे उनमे से दो पुत्र मुख्य थे एक भरत और दूसरा बाहुबली भरतका पुत्र सूर्य्य जिससे सूर्य्य वंशी राजा होते आए है और दूसरेका पुत्र चंद्र जिससे चन्द्रवश चला है जिसको सोम वंश व हरि वंश भी कहते हैं । बहुत समय के पश्चात् हरिवंशमें एक यदु राजा हुवा है जिससे यादव वंशी कहलाने लगे

इन यादव वंशियोंमें लगभग छियासी सहस्र वर्ष व्यतीत हुए हैं तब द्वारिका नगरी में श्रीकृष्णचन्द्र वासुदेव हुए हैं जिनके पिताके बड़े भाई समुद्र विजय के पुत्र नेमी नाथ बाईसवें जैन धर्मके अवतार हुए हैं जिन्होंके गृहस्थाश्रम में सगाई के लिए मथुरापुरी के राजा उग्रसेनकी कन्या श्रीमती राजीमती मांगी तब राजा उग्रसेनजी ने सहर्ष श्रीमद्भगवान नेमी नाथको सगाई और साथ ही विवाह की लग्न पत्रिका भेज दी। श्रीकृष्ण वासुदेवजी ने श्रीमान् नेमीनाथ ज़ी की बरात सजाई। समुद्र विजय से लेकर वसुदेव तक दशों भाई पांच पाण्डव कृष्ण बलभद्र आदि बहुत से यादव वंशी बरातमें सम्मिलित हुए और बड़ी धूमधामसे जूना गढ़में राजा उग्रसेनके द्वार पर आए, राजा उग्रसेन ने इस विचारसे कि इस बरात में बहुत यादववंशी जिनेन्द्रदेव के मतको मानने वाले हैं और बहुत कर्मकाण्डी अर्थात् क्रियावादी हैं और कई अज्ञानवादी नास्तिक हैं और कई निर्वृत्ति वाले अर्थात् मद मांस के न खाने वाले और कई प्रवृत्ति वाले मांसाहारी भी हैं परन्तु हमने तो सबका सत्कार करना है, इस लिए मृग आदिक पशुओं के बाड़े भी भरवा दिए गये; जिस समय श्रीनेमिनाथ

जी महाराज मोतियों का सेहरा बांधे हुए रथमे सवार होकर परिवार सहित तोरण छूने को आए तो राज महल्लों की स्त्रियां राजीमती की माता भूआ और राजमती की सखि सहेलियां बड़े उत्साह से झरोखो में से देख रही थीं और परस्पर ऐसा कहती थीं कि राजमती के कैसे उत्तम भाग्य है जो ऐसा शुभ लक्षण गुणी पुरुष पति पाया है और राजमती भी स्नेह भरे हृदय से नेत्रों द्वारा प्रेम प्रकट कर रही थीं तथा छिपी आंख से देखती हुई निज पति के रूप और गुणों की मनमें प्रशंसा करने लगीं और नेमिनाथजी के रूप ने राजमतीजी के मन को इस प्रकार अपनी ओर खैंच लिया जैसे सूचि(सूई)को चुम्बक पत्थर। श्रीमती राजीमतीजी उस समय विचारने लगीं कि इस सुयोग्य पुरुष को देख कर मुझे ऐसा प्रेम उत्पन्न होता है मानो इस पुरुष से मेरी पहले ही की प्रीति है। बस ऐसे गंभीर विचार से (१) ईहा (२) अपोहा (३) मग्गणा (४) गवेषणा मे प्रवेश करती हुई जाति स्मरण ज्ञान को प्राप्त हुई अर्थात् जैसे कोई आवश्यकता पड़ने पर वर्षों की भूली हुई बात स्मरण करनी चाहे तो बड़े विचार से स्मरण कर सकता है क्योंकि वहां

तक मस्तिष्क और मन की शक्ति निर्मलता की सहायता से पहुंच जाए तो स्मरण होजाए अन्यथा नहीं। इसी प्रकार मति और श्रुति की पहुंच लगजाय तो पिछली जाति अर्थात् पूर्व जन्मकी बातें स्मरण हो जाती हैं इसका नाम जाति स्मरण ज्ञान है इस के अर्थ यह हैं—(१) ईहा—यह पुरुष कहीं पहले भी देखा है (२) अपोहा—देखा तो है परं कहां और कब देखा (३) मग्गणा—यह किसी पूर्व जन्म में मेरा पति था (४) गवेषणा—हां हां ओहो यह तो मेरा नौ जन्म से प्रीतम प्यारा है जब यह राजा थे मैं रानी थी जबयहदेवथे मैंदेवीथी कहीं मित्र मित्र थे, इस प्रकार राजीमती जी पूर्व जन्म के ज्ञान होने से नेमि नाथ की अत्यन्त अनुरागिणी हो गईं क्यों न हों यथा किसी रस्ते चलने वालेसे थोड़े काल के लिए मित्र भाव हो जाताहै और जब वह कहीं मिल जाताहै तो उसे प्रेम की दृष्टिसे देखाजाता है, यह तो पूर्व ९ जन्मों की प्रीति थी। इसी अन्तर में श्री नेमिनाथ जी को पशुओं के रोने का शब्द कर्ण गोचर हुआ और ग्रीवा ऊंचे को उठाए हुए उन्हें जीवन से निराश हुएहुए देखा तो घबराकर सारथी को पूछा कि हे सारथि! यह जीवन के

अभिलाषी पशु पक्षि क्यों रोके गए हैं। तब सारथी ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की, कि आपके विवाह में मांसाहारी राजाओं के भोजन के लिए काम आएंगे तब श्री नेमिनाथ जी महाराज के दयामय हृदय से दया का भाव उभर कर नेत्रों द्वारा टपकने लगा और सारथी से कहा (हा हा अकज्ञ) हाय हाय अकार्य्य ! मेरे विवाह के कारण पशुओं का वध होवे ऐसा विवाह कराना मुझ को उचित नहीं यह ले मुकुट और कंगन कड़े और शीघ्र इन पशुओं के बंधन तोड़ और रथ को पीछे मोड़, सारथी ने ऐसा ही किया, तब श्रीकृष्ण चंद्र आदि राजाओं ने रथ को आगे से रोक कर कहा हे कुलचन्द्र ! यह क्या विचारा, अर्धविवाहिता (तेल चढी) को छोड़ कर जाना पुरुष का धर्म नहीं है। तब श्रीनेमिनाथजी ने कहा कि यह जीव अनादि काल से मोह के फंदे मे फंसा हुआ चौरासी लाख योनिओ में घूमता चला आया है अब इस फंदे को तोड़ने का अवसर मिला है इसे कदापि न गवांऊंगा। इस वचन को सुनकर एक सहस्र राजकुमार और भी वैराग्य को प्राप्त हुए तब लोकान्तक देवों ने आकाशवाणी से जयकार करके कहा कि आप

धर्मावतार हैं आप गृहस्थाश्रम को त्याग कर योग धारण कर धर्मरूप होकर धर्म का प्रचार करें जिस से बहुत लोक सच्चे मार्ग पर चलकर अपना जीवन सुधार कर भवसागर से तरें तब नेमिनाथ महाराज को अतिशय वैराग हुआ और द्वारिका का राह लिया उससमय नगर निवासी लोग आश्चर्य्यसे कहने लगे कि यह क्या कारण जो यादवों की बरात पीछे लौट गई। तब राजीमतीजी जो प्रमुदित हृदय से नाना प्रकार के अपने प्रिय पति के संबंध में बांधनु बांध रही थीं वह रथ को मुड़ा और कोलाहल को देखकर चकित होकर सखिओं से बोलीं, हे सखि! यह यादव राय बरात सहित पीछे क्यों लौट गए। तब कञ्चुका दासी ने प्रार्थना की हे स्वामिनी पशुओं की पुकार सुनकर दयालु अपनी दयालुता निभाने के लिये पीछे लौट गए हैं। तब राजीमती जी इस हृदय वेधक वचन को सुनकर असह्य दुःख से मूर्छा खाकर धरणी पर गिर पड़ीं, रंग पीला होगया आंखें पथरा गईं सिरकी चोटी खुल गई चुनरी अलग होगई रत्न जटित चूड़ियां फूट गईं, सखिआं यह अवस्था देखकर व्याकुल होगईं किसी ने राज कन्या का सिर अपनी गोदमें

लेलिया किसी ने नाड़ी हाथ में रखली किसी ने नासाग्र उंगली धरी किसी ने गुलाव छिड़का किसी ने पंखा किया इत्यादि उपायों से सुधि में आई तो कहा हे सखिओ तुम ने मेरे साथ वहुत बुरा वर्ताव किया जो इस मूर्छा से बचा लिया अन्यथा इस मूर्छा में ही इस नश्वर जगत से और पति वियोग के दुःख से सदा के लिये विमुक्त (अलग) होकर सुखी हो जाती, तुम ने यह न विचारा कि यह राजदुलारी कोमलाङ्गी प्रियतम पति के वियोग रूप दुःख के पर्वत को अपने सिर पर आ जीवन कैसे निभाएगी, और देख इस कंचुका दासी ने मेरे जले हुए हृदय पर कैसा लोन मला है, कहती है कि वह दयालु दयालुता के निभाने के लिए चले गए हैं । अरी मूढ़ा ! जिसने मेरे हृदय रूपी कुमुदनी को जो सदैव आनन्द के जल मे रहने वाली है विरह की दावानल (अग्नि) से जलाकर भस्म कर दिया, क्या इसी का नाम दयालुता है । जिसने मेरे नौ जन्मों के पर्वत समान स्नेह को राई के समान भी न समझा क्या इसी का नाम दयालुता है । जिसने मेरी वज्र समान प्रीति की ज़ंजीर को कच्चे सूत की न्याई क्षण मात्र में तोड़ दिया क्या

इसी का नाम दयालुता है। जिस ने मुझ को पशुओं के समान भी न समझा क्योंकि पशुओं की तो दया की परन्तु मेरी दया न की, क्या इसी का नाम दयालुता है। हा! हा!! श्री नेमिनाथ यादव पति न्यायाम्वोनिधे! मेरे साथ यह अन्याय जो विना अपराध इतना दुःख रूप दण्ड दिया। हाय हाय मैं कुछ भी न जानती थी कि मेरे कर्म मुझे क्या क्या चरित्र दिखलावेंगे। जाओ सखि तुम शीघ्र जाकर नेमिनाथ का रथ रोको और मेरी सब दशा कह सुनाओ और बड़ी नम्रतासे प्रार्थना करो कि आप तो ज्ञानवान हो जानते होंगे कि यह नौ जन्मों की मेरी दासी है फिर विना अपराध मुझ से छल किया इसका क्या कारण है क्या कोई मेरी बुराई सुनी क्या किसी अन्य स्त्री से आपकी प्रीति है वह स्मरण होगई कि मैं तो उसे ही अंगीकार करूंगा अथवा किसी अन्य राजकुमारी ने आप के पास कोई दूती भेजी कि मैं आपके साथ विवाह कराना चाहती हूं इससे विवाह न करना, कुछ तो बताओ जिससे मेरे मन को शान्ति हो। कविओं का कथन है कि दासी नेमिनाथ जी को मिली और सब वृत्तान्त सुनाया तो नेमिनाथ जी

ने तुरन्त उत्तर दिया कि हे भद्रे न तो मैंने श्री राजीमती जी की निन्दा सुनी नाही किसी से मेरी प्रीति है और नांही किसी मांस, हाड, चाम, नस, मेद आदि मल की पुतली (स्त्री) से विवाह कराना चाहता हूं केवल अजर अमर मुक्ति से ही प्रीति है और उसी से विवाह करके उसके परमानन्द के अनुभव करने को संयम के लिये कटिवद्ध हुआ हूं और वर्ष भर दान देकर अवश्य संयम धारण करूंगा। तव दासी कुछ भी कहने को समर्थ न हुई लौटकर राजीमतीजी के पास आई और सव वृत्तान्त सुना दिया। तव श्रीमती राजीमती जी को सखि के मुख से सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर संतोप आगया और सखियों के प्रति वोली कि हे सखियो अव मैं किस आशा पर जीवन निभाउंगी, वस उचित यही है कि मे भी अपना जीवन मुक्ति के साधन मे ही लगाऊं। तव राजीमती जी के माता पिता इस वात को सुनकर वोले, हे पुत्रि ! तुमने यह क्या विचार विचारा है क्या हुआ जो नेमिनाथ जी चले गए तेरा विवाह तो उनसे नहीं होगया है, और किसी सुयोग्य राजकुमार से विवाह करदेंगे। तव राजमती जी ने दोनों हाथ अपने दोनों कानों

पर रख लिये और कहा पिता जी ! सतिओं का यह धर्म नहीं है कि जिस पर एक वार पति भाव कर लिया जाय फिर उसके सिवा मनसे भी किसी दूसरे की भावना करें मैं तो सिवा नेमिनाथ जी के संसार भरके पुरुषों को आप के समान अर्थात् पिता के समान समझती हूं इस लिए आप आज्ञा दें तो मैं संयम धारण करके साध्विओं की सेवा में अपना जीवन सुधारूं, अस्तु माता पिता ने आज्ञा देदी कि अच्छा इससे बढ़कर सुकृत और क्या है फिर सखिओंने भी प्रार्थना की, कि हम भी तुम्हारे साथ ही दीक्षा लेंगी तब थोड़ा काल के अन्तर सखिओं सहित राजीमतीजी ने दीक्षा धारण की ।

श्रीराजीमतीजीका नेमिनाथ भगवानके दर्शनोंको जाना ।

एक दिन साध्विओंके परिवारसे श्रीमहासती राजीमतीजी आर्य्या श्रीनेमिनाथ भगवानके दर्शनों को चलीं तो मार्गमें एकाएक काली घटा उठी और अंधकार होगया, वायु बड़े बेगसे चलने लगा अर्थात् भयानक अंधेरी चल पड़ी जिससे एक दूसरेको मिलना कठिन होगया कोई वृक्षकी

ओटमें खड़ी रह गई और मेघ गर्जने और विद्युत
चमकने लगी तथा वादल वरसने लगा तव वह
राजमतीजी विकट वनमें अकेली खड़ी रह गई
और देखती है कि कहीं विश्रामका स्थान मिले
इतनेमें विद्युतके चमत्कारसे गुफ़ाका द्वार देख पड़ा
वह उसमें प्रवेश कर गई और एकान्त निर्जन स्थान
समझकर भींगे हुए वस्त्रोंको उतार कर शिलापर
सुखानेके लिए विछा दिए। उस समय वहां श्री
नेमिनाथजी महाराजका छोटा भाई रथनेमि साधु
योग समाधि लगाए उस गुफाके अन्दर वैठे हुए
थे। एकाएक उनकी दृष्टि एक जन्मजात की तरह
नग्न स्त्री पर पड़ी, एक तो विद्युतका चमत्कार
दूसरे श्रीमती राजमतीजीके कंचन वर्ण तनुकी प्रभा
यथा सूत्र (विज्जु सोयामिनी पभ्भा) अर्थात्
विजलीकी भांति व सौदामिनी मणि जटित आभू-
पणकी न्याई राजमतीजीके शरीरकी प्रभा थी इस
लिए गुफामें कभी २ प्रकाश देख पड़ता था। रहनेमि
जी विचारने लगे कि यहां यह कौन स्त्री है जिस
का चन्द्रमाके समान गोल मुख और मृगके नयन
सरीखी आंखे और खंडेकी धारकी तरह ढलवां
नाक, गोल गोल कपोल, विंव ओष्ठ, अंवगुठी के

समान चिबुक (ठोडी), शंखावर्त ग्रीवा, विशाल हृदय, कंचन के कलशवत् कुच, मत्स्योदरी, वज्र के मध्य भाग जैसी झीणी कटि कदली स्तम्भके समान जंघें, हस्ति शुंडकी तरह गोल पिंडीआं और कछुएकी न्याई गोल चरण, मृणालके सदृश भुजाएं कमलपत्र के समान हाथ हैं, ऐसे एक मन और खचित दृष्टिसे देखते २ पहचानली कि अहह ! यह तो उग्रसेनकी राज वर कन्या राजीमती है जिसे तेल चढ़ीको त्याग कर श्री नेमिनाथ जीने योग धारण किया है। परन्तु राजमतीजीके रूपको देख कर रहनेमिजी का मन जो तप संयमसे वश में किया हुआ था वह संयमके अंकुशको न मानता हुआ चलायमान हो गया, जैसे किसी कवि ने कहा भी है—

दोहा

विद्या बुद्धि विवेक बल, यद्यपि होत अपार ।
मन्मथ रहे न जगे बिन, जहां एक नर नार ॥

बस राजमतीजी के पास आकर बोले कि हे सुन्दरी ..

यह वचन सुनतेही वह सुशीला सुकुमार साध्वी त्वरित संकुचित होकर बैठगई और थर थर कांपनेलगी और सोचने लगी हाय ! यह कौन

पुरुषहै कोई म्लेच्छ न हो जो मेरे शीलधर्मको लूट ले क्योंकि वाह्य धनलुट जाए तो कदाचित् फिर आजाए परन्तु ब्रह्मचर्य्यरूपी धन लुटा हुआ फिर हाथ नही आता।

रहनेमिजीका श्री राजीमती जीसे वचन।

रहनेमि वोले हे भद्रे मुझसे मतडर मैं कोई नीचपुरुष नहीं हूं मैं तो समुद्र विजय राजाकापुत्र नेमि नाथ जीका छोटा भाई तेरा देवर रहनेमि हूं मे तुझेकष्ट नहीं दूंगा सच्चे मनसे प्रेम करूंगा मेरी तेरी जोड़ी भोग विलासके योग्यहै मनुष्य जन्म वारम्वार नही मिलताहै इसलिए इस अपने रूप यौवनको सफलकर। वस फिरतो राजमती जी तुरन्त उठकर वस्त्र पहन चोकड़ी लगाकर साव-धान होकर वैठ गई। यह समझकर कि यह कोई अंजान दुष्ट पुरुष तो हैही नहीं जिसको समझाना कठिन हो क्योंकि वह दुष्ट अज्ञानी न तो पुण्य पापको मानता है और नां ही धर्माधर्मको जानताहै इसलिए उसको समझाना वहुत कठिन होताहै और यह तो ज्ञानवान श्रेष्ठ पुरुष है इनका समझाना तो सुगमहै न जाने किस कारण डिग गए हैं। तव

श्री राजमती जी महाराज साध्वी रहनेमि ऋषिको उपदेश देनेलगींहे रहनेमि राजकुमार? तुमने राज लक्ष्मीको और पचास महल व पचास रानियोंको क्या समझकर त्यागा और आज क्या समझ कर मेरे साथ भोग करना चाहतेहो रहनेमि चुपरहा राजमतीजी फिर कोपमें भर करबोलीं धिक्कारहै तेरी ऐसी बुद्धि पर। यथा सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन २२ वां गाथा ४२,४३।

धिगत्थु तेज्जसो कामी, जोतं जीवियकारणा।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयंते मरणं भवे ॥४२॥
अहंचभोग रायस्स, तंचसि अंधग वण्हिणो।
माकुले गंधरणा होमो, संयमं निहुउंचर ॥४३॥

अर्थ—धिक्कारहै तुझको हे अपयशके कामी जो तुम असंयम जीवतव्यके कारण तथा थोड़े जीवनके कारण वमनकिया हुआ भोग रूपी विष तिसको पुनःपीना चाहताहै इससे तो श्रेष्ठहै तुझको मरणहो अर्थात् त्यक्तवस्तुको फिर अंगीकार करना अर्थात् अपने प्रणको तोड़नेके पापको सिर पर धरना इससेतो मर जाना अच्छाहै ॥ ४२ ॥ अर्थ श्लोक ४३—मैं तो भोजकविष्णु राजाकी पोती और उग्रसेनराजाकी पुत्री हूं और तूं अंधकविष्णु राजा

का पोता और समुद्र विजय राजाका पुत्रहै, ऐसे उत्तम कुलमें जन्म लेकर तुझ और मुझ सरीखे पुरुप व स्त्रियां धर्मसे पतितहोजाएंतो महान् पाप और महा निन्दाका स्थानहै इसलिये न कुल खोटी जातिके सर्पकी न्याई जो अपने छोड़े हुए विषको पीलेताहै ऐसा मतहो और जो अगंधन कुलका सर्प होताहै वह अपने छोड़े हुए विपको नहीं पीता प्रत्युत मरना स्वीकार करताहै। ऐसें आपभी अपने कुल और देव गुरुधर्म शास्त्रकी ओर दृष्टि करके संयममें दृढ़ होकर विचरो। इसका तात्पर्य्य यह है कि उत्तम कुल अर्थात् श्रेष्ठाचार वाले कुलमें जन्में हुए पुरुप व स्त्रियोंको धर्म करना सुगम होताहै क्योंकि उस घरमें जन्मसेही धर्मकी सब सामग्रियें विद्यमान रहती हैं। यथाश्लोक—

देवजाप गरूपास्ति, स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां पट् कर्माणि दिने दिने ॥१॥

अर्थ—प्रथम परमेश्वरका जाप द्वितीय गुरु की सेवा तृतीय सामायिक और पाठका करना चतुर्थ जीवदया यहां तक कि विना छाने जल भी न पीना यथाशक्तिइन्द्रियोंको विपयोंसे बचाए रखना और अभक्ष्य आदिका त्याग अर्थात् मांस

मद आदिका सेवन न करना पंचम पर नारी का परित्याग, ब्रह्मचर्य्य आदि व्रत उपवास रूप तप करना, छठा सुपात्रमें दान देना यह छे धर्म रूप कार्य्य श्रेष्ठ (जैन) (आर्य्य) पुरुषोंको नित्य करने योग्य हैं यदि ऐसे कुलके धर्म न करें अथवा धर्म के स्थानमें कुसंगति करके हिंसा मिथ्या आदि पाप करने लग जाएं अथवा मद मांस आदि भक्षण करने लग जाएं तो उनको किरोड़ धिक्कार भी थोड़ी हैं, और नीच कुल अर्थात् अनार्य्य म्लेच्छ चमार चण्डालादि जिनके जन्मसे पहले ही पाप करनेकी सामग्री विद्यमान रहती हैं अर्थात् मच्छलिआं पकड़नेका जाल बटेरपकड़नेके पिंजरे मुरगी मारनेके चाकु अण्डे मारनेका शूल शराब पीनेकी बोतलें आदि और झूठ चोरी पिशुनता गाली गलौज यह उनका कर्तव्य है, निर्दयता तो उनकी जन्म घुट्टी है ऐसे पुरुषोंको दया सत्य दान शील आदि धर्म कहां। यदि ऐसे पुरुष सत्संगके प्रतापसे पूर्वोक्त पापोंको छोड़ कर दया आदि धर्म को ग्रहण करलें तो वे कोटि बार धन्यवाद देनेके योग्य हैं। अस्तु राजमतीजीने कहा कि मैं अपने कुल धर्म, आत्म धर्म और सतीत्व धर्म को कदापि नहीं

छोडूंगी चाहे प्राण जाएं तो जाएं, तू तो कुछ वस्तुही नहीं है यदि इन्द्र व नल कूवेर जैसे डिगावें तौ भी न डिगूं वस तुम भी ऐसे निर्लज्ज अपावन् भोगोंके लिए अपने मनको न डुलाओ ऐसा मन तो मूढ अज्ञानी दुष्ट जनोंका होता है जिनको अपने मन रोकनेकी समझ नहीं होती जिधर देखा उधरही श्वानकी तरह भागने लगे परन्तु जो विद्वान् धर्मात्मा विचार शील पुरुष होते है वे अपने मनको वशमें रखते है क्योंकि, उनको ज्ञानके वलसे मनको समझाने की विधि आती है, वस वे रह नेमि जी भी तो विद्वान् और धर्मात्मा पुरुष थे इस लिये राजीमती जी के गम्भीर और विचार पर्क वचनों को सुनकर मनको मोड़ा और दृढ़ चित्त होकर बोले, हे साध्वी जी ? आप वड़ी विदुपी पण्डिता और बुद्धिमती हो आप की सुशलिता सरलता गंभीरता आदि गुणो का वर्णन करने को सुर गुरु भी समर्थ नहीं है। आप जैसी शास्त्रों को जानने वाली स्त्रियां आप तरें और औरो को तारने वाली होती है। आपके वचन रूपी अंकुशसे मेरा मनरूपी हस्ति जो संयम रूपी घरसे वाहर निकल गया था वह फिर निज स्थान पर उपस्थित हुआ है। में आप

का उपकार कभी नहीं भूलूंगा जो मैंने आप की अविनय की है वह क्षमा करें बस वर्षाके ठहरने पर श्री महासती राजीमती जी महाराज साध्विओं से जा मिलीं और श्री भद्धगवान् नेमिनाथ के दर्शन किये और पश्चात् बहुत काल तक संयम तप अर्थात् दस प्रकार का यति धर्म पालती रहीं यथा—(१) खन्ती (२) मुक्ति (३) अज्जवे (४) मद्दवे (५) लाघवे (६) सच्चे (७) संजमे (८) तवे (९) चियाए (१०) बम्भचर्य बासे।

अर्थ—खन्ती (क्षमा) मुक्ति (निर्लोभता) अज्जवे (सरल हृदय) मद्दवे (कोमल हृदय) लाघवे (अपने आपको लाघव में रखना (अहङ्कार न करना) सच्चे (मन के सच्चे वचन के सच्चे और कर्म के सच्चे) अर्थात् मन से झूठे विचारों का न करना झूठ वचन का न बोलना और झूठे कर्तव्योंका न करना संजमे (इन्द्रियों को वशमें रखना) तवे (तपस्या करना अर्थात् संतोष करना) चियाए (धन और कामिनी का त्याग और ज्ञान का अभ्यास) बम्भचर्य्य बास (ब्रह्मचर्य्य में अर्थात् यति धर्ममें सर्वदा वास करना) इन धर्मों को पालकर कर्मरहित होकर सर्वज्ञ पद प्राप्त करके मोक्ष हुईं। इससे स्पष्ट है कि, जो लोक ऐसा कहते हैं कि,

स्त्री को दीक्षा, व शास्त्र पढ़ने का अधिकार नहीं है वे लोक सूर्य्यके होते हुए रात कहने वालेके समान हैं देखो उक्त लेखसे श्री राजीमतीजी साध्वी पण्डिता स्त्रीने किस प्रकार अपना और दूसरेका उद्धार कियाहै।

जैनाचार्य्यावालब्रह्मचारिणीचंदनवालासर्वज्ञ

अंग देश चंपा नगरी दधिवाहन राजा धारिणी रानी की पुत्री श्रीमती चंदनवाला चंद्रमुखी गज गामिनी माता पिता की आज्ञा पालने वाली थीं। जव वह आठ वर्षकी हुई तो माता पिताने विचार किया कि यह कन्या पूर्व जन्मके शुभकर्म्मोंसे इस वंशमें उत्पन्न हुई है। यदि इसको शास्त्र विद्या पढ़ा कर श्रेष्ठ आचार वाली धर्मके योग्य जिससे जन्म सफल हो, ऐसा न किया जाय तो यह पाप हमारे सिर पर होगा। यथा श्लोक—

माता शत्रु पिता वैरी, येन वालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये, हंस-मध्ये वको यथा॥

तव राजा ने श्रेष्ठाचारी अध्यापक के पास अध्ययन कराना आरम्भ कर दिया। वह वालिका थोड़ेही वर्षोंमें यथायोग्य अक्षरवोध (प्राकृत, संस्कृत, व्याकरण, भाषा) आदिकमे पढ़कर योग्य पण्डिता हो

गईं, वह सुलक्षणी राजवर कन्या जब अनुमान वारह वर्षकी हुई तव कौशाम्बी नगरी का राजा शतानीक जो राजा दधिवाहन का सवधु (सांढु) था उसने परस्पर किसी वैमनस्य (तनाजे) के कारण सेना लेकर दधिवाहन पर आक्रमण कर दिया उस युद्धमें दधिवाहन की पराजय हुई और वह भाग गया। राजा शतानीककी आज्ञासे उसकी सेनाने चम्पापुरीको लूटना आरम्भ किया। तव दधिवाहन की धर्मपत्नी रानी धारणीदेवी जी राजकन्या चन्दन वाला को साथ लेकर एक भूगृह अर्थात् भोरे में अपने धर्म और प्राणोंकी रक्षाके लिए छुपकर बैठ गईं। तब महलोंके लुट जानेके पश्चात् एक सारथी (रथवान) उस भोरे तक आपहुंचा उसको देखकर धारणी रानी कांप उठी और विचार करने लगी यदि धन चला गया तो कदाचित् फिर मिल जावेगा। परन्तु यदि मेरा सतीत्व नाश हो गया तो वह फिर कभी प्राप्त न हो सकेगा। इसलिए रानी ने अपने समग्र आभूषण उसको देने के लिए उतारने आरम्भ किए। तब उस मनुष्यने देखा कि जब तक यह भूषण उतारेगी तब तक सम्भव है कि कोई और मेरा साथी आजावे तब वह रथवान् रानी और

राजकन्या की भुजा पकड़ खैंच कर रथ में सवार कराकर भाग निकला। जब वस्तीसे बाहर बहुत दूर निकल गया तो एक ओर का पर्दा उठा कर यूं बोला—मैं कैसा भाग्यवान् हूं जो मुझको धन सम्पत् और रूपवती स्त्री हाथ लग गई। यह शब्द क्या था वज्र था जो रानीजी के शिर पर पात हुआ और वह गम्भीर विचार सागरमें डूब गई, हा! मैं किस वंशकी पुत्री और किस कुलकी वधु हूं हा हन्त! आज यह शब्द मुझे सुनना पड़ा बस उस ने अपने धर्मकी रक्षाके लिए अपने परमप्रिय प्राणों को तुच्छ समझकर आत्मघात करना उचित समझा, तब अपने इष्टदेव को स्मरण करके प्राण प्यारे पति के और राजपाट के और अपने जीवन सर्वस्व एक मात्र कन्याके स्नेहको छोड़ कर संसार से सदा के लिए वियुक्त होना स्वीकार करके अपने नेम-धर्म में जो कोई अज्ञात पाप हो गया हो तो उसकी मिच्छामि दुक्कड़ं (भूल) स्वीकार करती हुई। और सब प्राणि मात्र से क्षमा मांगती हुई अपने मरने का उपाय सोचने लगी। परन्तु वहां कुछ मरनेका साधन न पाकर अपने पैने दांतोसे ही अपनी जिह्वा को काट डाला। तब रक्त की धारा बह

निकली और ग्रीवा गिराकर तकिएके सहारे जा लगीं । अंजान चंदन वाला जो डरी हुई हिरनीकी न्याईं सहमी हुई वैठी थी अपनी माताके मुख से रक्त बहता हुआ देखकर कांप उठी और अपनी माताके गलेसे लगकर उसके मुखपर हाथ रखकर वोली हे मातेश्वरी ? यह क्या दशा है मुखसे रक्त (खून) क्यों वह रहाहै मातासे कुछ उत्तर न मिलने पर देखा तो आंखोंकी पुतली फिर गईहैं । और नाड़ी भी वंदहै तव वह बड़े ज़ोर से रोकर कहने लगी माता ? आपने तो स्वर्गकी यात्रा स्वीकार की परन्तु मुझे किसके आश्रय पर छोड़ा हे माता ? इस संसार में तुझसे अन्य मेरा कौनहै, तेरे विना मुझे यह जगत् सूना देख पड़ताहै हाय माता तूने मुझको बुरे समय पर धोखा दिया क्योंकि, पिता मेरा युद्धमें भाग गया नगरी लुट गई अब कहो तुम मुझको किसके हाथ सौंप कर इस अस्थिर जगत् से प्रस्थान कर गईं ।

हाय ? माता मैं अब क्या करूंगी किसके भरोसे जीऊंगी इत्यादि, इस विलापको सुनकर वह रथवान् पर्दे के अन्दर मुंह डाल कर देखता है कि, महा- तािकयेके साथ सिर लगाए पड़ी है और मुखसे

रक्त वह रहा है और कोई कोई श्वास शेष हैं और कन्या पास बैठी रो रही है। तब उसने विचारा कि हाय हाय यह पतिव्रता स्त्री मेरे शब्द को न सह सकी इस लिए इसने प्राण त्याग दिए क्यों न त्यागे भला तीतरी तखयार (तेजी तुपार) अर्थात् असली घोड़ा कोड़ा क्यों सहता है उसने तुरंत उठ कर रानी के भूषण उतार कर उसकी टांग पकड़ कर रथसे बाहर फेक दी इस विचारसे कि, कोई राज्य कर्मचारी देखले तो चोरी के स्थान में हत्याकी घटना समझे और उस कन्या को धैर्य दिया कि, हे बालिका? तू मत रो तू मुझको पिता समझ में तेरा निर्वाह करूंगा तब वह चंदन बाला किं कर्त्तव्य(क्या करसकती थी)विमूढ़सी होकर अन्तमें संतोष कर गई। रथवान् रथको वेगसे हांकता हुआ कौशाम्बी नगरीमें अपने घरके द्वार पर आ पहुंचा, उसकी गृहिणी पहले ही से उसकी बाट जोह रही थी कि, अन्य लोग जो युद्ध में गए थे वे धन लेले कर अपने घरों मे आ रहे हैं मेरा पति भी धन लेकर आवेगा। परन्तु जब उसने रथमें बैठी हुई राजकन्या को देखा तो आग बबूला होकर बोली क्या मेरे लिए सौतन (सौकन) लाया है बस इसको मेरे घर में मत ला इसको चौराहेकी मंडी

में वेच कर दाम उठा ला नहीं तो सरकार में रिपोर्ट कर दूंगी कि, यह किसीकी कन्याको चुरा लाया है । तव विवश होकर उस रथवान् ने उस अधमरी वाल कन्याको द्वार पर खड़ा कर दिया और रथको ठिकाने लगा कर उसकी वांह पकड़ मंडीमें लेगया और चौकमें खड़ी करके पुकारने लगा कि, यह कन्या विकाऊ है, जिसने लेनी होवे लेलेवे तव सैंकड़ों लोग उसको देखनेके लिए वहां एकत्र हो गए उसका कंचन वर्ण शरीर था । जो शोक और चिन्ताके कारण पीतल समान हो गया था तथापि उसकी वास्तविक सुन्दरता उससे पृथक् नहीं हुई थी (उसका रूप सुन्दरताका उद्बोधकथा उसे देखकर सबलोग लालसा के मारे मोल पूछने लगे परन्तु जब वीस लाख स्वर्ण मुद्रा मोल सुना तो मन मोस कर रह गए इतनेमें नगर नायिका वेश्याको सूचना मिली कि एक नव वयस्का स्वर्ण रूपसी कन्या विकने आई है तव वह नगर नायिका कई वेश्याओंको साथ लेकर वहां पहुंची और उसका रूप देख गद्गद् प्रसन्न हुई । और सोचा कि कोई राजकुमार व सेठ न खरीद ले इस लिये तुरंत ही अपने अनुचरों (आज्ञाकारी नौकरों) को आज्ञा दी कि, तुरन्त २० लाख स्वर्ण मुद्राके तोड़े

ले आओ । यह देख कर चंदन बाला पूछने लगी कि हे माता ? तुम्हारे कुलकी क्या रीति है और मुझे किस लिए मोल लेती हो, तब नगर नायिका बोली कि तू कुछ चिन्ता न कर हमारे नित नए शृंगार नित नए भोग अच्छा खाना अच्छा पहिरना आदिक भोग विलास की सामग्री सब प्रकार की विद्यमान रहती है । इस बातको सुनते ही वह कुलवती चंदन बाला मूर्छा खाकर गिर पड़ी तब रथवान्ने देखा कि मेरी तो आजीविका ही गई शीघ्रही अपनी बांह के सहारे उठा कर उसकी धूलिको अपने वस्त्र से पोछा और वायु करी जब उसको सुधि आई तो कहने लगी हाय पिता तूने मुझको इस मूर्छामे ही मरने क्यो न दिया, क्यो जिवाया हाय शोक ! मेरा पिता तो युद्ध में भाग गया और माता मेरी जिह्वा काट कर मर गई जिसको मरे पशुके समान जंगल में फैंक दियागया, जिसके जलानेको लकड़ी भी न मिली और मुझको इस मंडी मे पशु की न्याई बेचा जाता है और खरीदती कौन है वेश्या। ऐसे दुःखमे दुःखी हुई २ मस्तक उठा कर निहारने लगी कि यहां कोई मेरा रक्षक सज्जन भी है परन्तु कहां था, न देस न देसका जाया सब लोक

पराया था। तब उसने दोनों हाथ भूमि पर टेक दिए और वे सुधि आने लगी उसके इस दुःखकी दशाको देख कर धर्म रक्षक दैव भी न सह सके और ऐसा दैवयोग हुआ कि, अचानक एक ओर से वानरों की सेना आगई और वे उन वेश्याओं और दूसरे लोगों की ओर घूर घूर कर टूट पड़े किसीके चीर फाड़ डाले किसीके नाक कान काट डाले तब वे सब लोग भाग गए और नगरमें कोलाहल मच गया कि, न जाने इस कन्यामें क्या जादू है, फिर क्या था कोई मनुष्य डर के कारण उसके पास न फटकता था। उस कौशाम्बी नगरी में एक धनदत्त नाम श्रेष्ठाचारी साहुकार रहता था उसने भी यह बात सुनी तो समझा कि, यह कोई सत्यवती है चलो उसके दर्शन तो करें उस सेठने वहां जाकर देखातो जान पड़ा कि यह तो कोई राजकन्या हैं। न जाने इस पर यह विपत्ति क्यों कर पड़ी।

तब साहुकारने कहा हे रथवान्! इसका मोल क्या है? उसने उत्तर दिया बीस लाख स्वर्ण मुद्रा सेठने कहा कि एक लाख दे सकता हूं उस रथवान् ने सोचा कि जाते चोरकी पगड़ी ही सही अतः स्वीकार कर लिया। तब चन्दन बाला उस सेठ

से पूछने लगी कि पिताजी आपका क्या आचार व्यवहार है और मुझको किस लिए ख़रीदते हो? सेठने उत्तर दिया हे पुत्रि! मैं जैनमतका श्रावक हूं मेरे घरकाव्यापार शाहूकाराहै और आचार मेरा यह है मांसनखाना, मद्यनपीना, चोरी न करना, झूठी साक्षी न देना, पूरा तोलना, पूरा मापना, सर्कारी महसूल न चुराना, किसी प्राणीको जान बूझ कर दुःख न देना, पर धनको मट्टीके समान समझना, और पराई स्त्रीको भगिनीके तुल्य समझना और प्रातःकाल परमात्माका जप करना, गुरुके दर्शन करने, सुपात्र दान करना इत्यादि और मेरे संतान नही है इस लिए तुझको पुत्री बनानेके लिए खरीदता हूं, बस फिर क्या था वह चन्दन बाला आनन्द से गद्गद् होगई झट उठ कर सेठ के हाथ की अंगुली पकड़ कर बोली कि चलो पिताजी शीघ्र अपने घरको चलें और वह साहुकार एक लाख स्वर्ण मुद्रा उसे देकर उस कन्याको अपने साथ घरमें ले आया और अपने भाई बन्धुओं मे जन्म महोत्सवकी भांति व्यवहार बांटा और उस को विशेप विद्याध्ययन करना और उभयकाल सन्ध्या सामायिकका करना और दान मान आदि

आचारों पर चलाना आरम्भ किया । इस प्रकार छेवर्ष व्यतीत होगए । और वह कन्या अनुमान १८वर्ष की होगई जिसके रूप यौवनकी क्रान्तिसे आंखें चुंधियाने लगीं और उसको उसकी मतई माता (उप-माता) ने बहुतसे कष्ट भी दिये परन्तु चंदन बाला उन कष्टोंकी ओर ध्यान न धरती हुई अपने क्षमा धर्मपर आरूढ़ रही, जब राजा शतानीकको सूचना मिली कि मेरी सालीकी कन्या दधिवाहन राजा की राजकुमारी सेठके घर बिकी हुई आई है तब राजाने सेठको कहा कि यह कन्या मेरी है इसका मैं किसी उत्तम वंशके राजकुमारसे विवाह करूंगा, सेठने कहा कि मेरी धर्म पुत्री है इसको किसी अच्छे साहुकारके बणिकपुत्रसे व्याहूंगा, इस प्रकार कुछ चिर परस्पर विवाद होता रहा फिर चंदन बाला से पूछा गया कि तुझको क्या स्वीकार है उस ने उत्तर दिया कि सेठजी मेरे धर्म पिता हैं जिन्होंने मुझको घोर विपत्तिमें आश्रय दिया है और विवाह के विषयमें यह है कि न मैं राजकुमारसे विवाह कराऊंगी और न किसी अच्छे साहुकारके बणिक पुत्रसे । जिस समय श्रीमद्भगवान् चौबीसवें तीर्थङ्कर महावीर स्वामीको सर्वज्ञ (केवल) ज्ञान होगा तब

जैन योग धारण करूंगी अर्थात् साध्वी बनूंगी तब राजा और सेठ दोनोंने हर्षपूर्वक स्वीकार कर लिया और उसने ऐसाही किया वह कुमारी चन्दन वाला वालब्रह्मचारिणी परम सुशीला परम पण्डिता साध्वी जी कई साध्विओंके परिवारसेदेश विदेश धर्म उपदेश करती हुई विचरने लगी। और अनेक पुरुष व स्त्रियोंको धर्मके पोत (जहाज) पर चढ़ा २ कर भवसागरसे पार किया जिनकी ३६००० उच्च वंशों की राजकुमारी तथा सामान्य कुल सेठोंकी पुत्रिये चेली हुई उस चन्दन वाला साध्वी को ३६००० आर्य्याओंकी प्रवर्तिनी अर्थात् आचार्य्या पद प्राप्त हुआ और फिर वह स्वयं सर्वज्ञ पद प्राप्त करके मोक्ष हुई और चेलियोंमेंसे कई एक स्वर्ग और कई मोक्ष हुई जिनको लगभग २५०० वर्ष हुए हैं इसका वर्णन नाम मात्र सूत्र संवायांगमें और सूत्र कल्प कथामें तथा अन्य कथाओंमें सविस्तर है।

स्त्रीका सभामें निज पतिको उपदेश।

सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन १४वें में अधिकार है—ईखूकार नगर तिसका ईखूकार नाम राजा तिसघर सुलक्षणी कमलावती नामनी राणी होती

हुई एकदा समय किसी वैरागीके वैराग्यका कथन सुनकर विरक्त भावको प्राप्त होकर अपने पतिको मध्य सभामें उपदेश देने को उपस्थित हुई और कहा कि, अयि राजन् यह संसार असार है इसमें सार एक श्रीजिनधर्म है इसलिये प्रमादको तजकर शीघ्र आत्म कार्य करनेको सावधान होजाइये और मिथ्या पदार्थोंकी प्रीति छोड़ दीजिये—धन रह जायगा खजानेमें, नारि रह जायगी महलोंमें, परिवार खड़ा रह जायगा श्मशान भूमिमें, देह रह जायगी चिखामें, इसलिये जो साथ जाने वाला आत्म ज्ञान है उसकी चिन्ता कीजिये किन्तु इस संसार रूपी उद्यानमें सर्वदा मनुष्य जन्म रूपी अनेक कलियां खिलतीहैं। और अनेक कुमलाकर झड़ जाती हैं तब राजाजी आश्चर्यमें भरकर बोले कि, अयि राणी क्या तुझे कोई रोग उत्पन्न हुआ है अथवा कोई दैवयोग हुआ है राणी बोली क्या रोगियों के मेरे जैसे वचन होते हैं मैंतो आपको समझाने और वैराग्य दिलानेके लिये आई हूं राजा—प्रथम तूतो समझदार और वैरागन बनके दिखला फेर मुझकोभी उपदेश करियो राणी—मैं वैरागन बनी तो आपको समझाने आई अन्यथा मेरी क्या

समर्थथी जो इस प्रकार सभामे आकर आपसे वाद विवाद करूं प्रत्युत मैं तो महलोंमेंसे सपथ (कसम) खाकर आई हूं कि मै अव संयम धारण किये विना इन महलों में पग न धरूंगी तव राजा को भी वैरागप्राप्त हुआ और खड़े राज को त्याग कर दोनों ने संयम धारण किया राणी ने साध्वी-ओंकी मंडलीमें और राजाने साधुओंकी मंडलीमें ज्ञान क्रिया सहित विधि पूर्वक साधना करके शरीरी और मानसी दुःखोंसे मोक्ष पाया इत्यर्थः ।

स्त्रीका सभामें शास्त्रार्थ ।

(४) कौशाम्बी नगरीमे राजा सहस्रानीककी पुत्री और राजा शतानीककी भग्नी और राजा उदाइकी भूआ श्री जयन्तीजी जिसने देवों ऋषियों और मुनिओंकी सभामें श्री मद्भगवान् महावीर स्वामीजी महाराजसे प्रश्नोत्तर कियेहैं और फिर जैन साध्वी होकर धर्मका प्रचार करके मोक्ष हुई हैं जिसको लगभग २५०० वर्षके हो गए हैं, इसका वर्णन भगवती सूत्र शतक बार-हवें उद्देसा दूसरेमे सविस्तार है ।

पाठक ! देखिये श्रीमहासती जी महाराजने जैन सूत्रानुसार भी सिद्धकर दियाहै कि जितना

स्वत्त्व ज्ञान प्राप्त करनेका पुरुषको है उतना ही अवि-
द्याके दूर करनेका स्वत्त्व (अधिकार) स्त्रीको भी
प्राप्तहै जब स्त्रियां अरिहन्त (तीर्थंकर) सर्वज्ञ तककी
पदवी प्राप्तकर चुकीहैं तो फिर यह माननाकि स्त्रीको
वेद विद्याके पठन पाठनका अधिकार नहीं है कैसी
भूलकी बातहै इसलिये आशाहै कि सज्जन पुरुष
स्त्रिओंको विद्याकादान देना कदापि अधर्म न
समझेंगे ।

बुद्ध मत की स्त्रियां विद्या में सर्वज्ञ ।

पाठक ! श्री महासती पार्वतीजी महाराजने
१९१२ ई० में मुझे बुद्धदेव जी का जीवन चरित्र उर्दू
जिसके चतुर्थ भाग में बुद्ध तपस्त्रिनिओं का वर्णन
लिखाहै दिखलाया जो आपके पढ़नेके लिए नीचे
लिखा जाता है—

बुद्धदेव जी का जीवन चरित्र चतुर्थ भाग उर्दू
भाषामें लाहौरमें नवलकिशोर प्रैस में मुद्रित अक्तूबर
१९११ ई० के पृष्ट ५९, ६० पर लिखा है कि बुद्ध
लोगों में बुद्ध तपस्विनिओं का बहुत आदर सत्कार
किया जाता था उनकी विवेक शक्ति ज्ञान, प्रतिष्ठित

परिवारों में आना जाना और सोसायटी में उनके आदर और सत्कार का वर्णन मालती माधव आदि संस्कृत नाटकों में पाया जाताहै । बुद्ध सन्यासिन अपनी प्रतिभा विद्या और पवित्रता के द्वारा श्रमण की पदवी को प्राप्त कर सकती हैं यहां तक कि वे अरिहन्त होने की अधिकारिणी समझी जाती हैं। क्षिमया आदि बहुत सी बुद्ध सन्यासिनों ने अपनी असाधारण प्रतिभा और विद्वत्ता के कारण बुद्ध मण्डल में बहुत कीर्ति प्राप्त की थी। सूत्र टपक थिरा गाथा और थिरी गाथा नामक दो पुस्तकों के भाष्यमें उनके लेखकाओं के नाम और उनका जीवन वृत्तान्त लिखाहै। इससे प्रतीत होताहै कि बहुत सी स्थविरों तपस्विनिओं ने बुद्धदेव जी के जीवनमें ही थिरी गाथा रची थीं इनमें बहुत सी गाथाएं अत्युत्तम हैं और उन के लेखकाओं की अलौकिक प्रतिभा और धर्मभाव का प्रमाण देती हैं कि, यह सब तपस्विनिआं बुद्धधर्म के संबंध में उच्च शिक्षा और उपदेश देतीथीं बहुतसे भिक्षु और भिक्षुकाएं उनका उपदेश सुनने के लिए एकत्र होते और उनको सुनकर मुग्ध हो जाते थे। थिरी भाष्य में सोना नामी एक तपस्विनि का वर्णन है, वह

राजा बिम्भसारके सभा पण्डित की पुत्री थी बुद्ध धर्म में दीक्षा लेनेके पश्चात् बहुत ध्यान धारण और साधना द्वारा उसने अरिहन्त की पदवी प्राप्त की।

पाठक—देखिए बुद्ध मतके ग्रन्थ, उनसे भी यही सिद्ध होताहै कि स्त्रियोंने अरिहन्त तककी पदवीको प्राप्त कियाहै। इसलिए जो श्रुति पण्डित जीने दूसरे प्रश्नमें लिखीथी कि स्त्री शुद्रको दीक्षा ग्रहण और वेदपढ़नेका अधिकार नहींहैं वह भ्रम-दूर होगया औरयहसिद्ध होगया।किउनको अधिकार है। अब रहा शुद्रोंके विषयमें वह भी सुनिये।

शुद्रोंको वेदका अधिकार।

(१) श्री महासती पार्वती जी महाराजने दूसरें प्रश्नके ऊत्तरमें शुद्रोंके विषयमें जो कुछ कहा वह नीचे लिखाजाता है पहले तो भागवतके बनाने वाले सूतजी ही शुद्र हुएहैं, सुनाहै कि सूतजीको शौनकादि ऋषिओंने कहाहै कि हे सूतजी? कोई ऐसा सूत्र सुनाओ जिससे सुरती अर्थात् मनोवृत्ति ईश्वरकी भक्तिमें लीन होजाए, तब सूतजीने ऊत्तर दिया कि हे शौनकजी! मैं तो शूद्रहूं मुझसेक्या सूत्र सुनोगे, तब ऋषिओंने कहाकि हे महात्मा? धर्म

नीतिमें तो वर्णकी कोई प्रधानता नहीं होती ज्ञानकी प्रधनाता होतीहै। तब सूतजी ने भागवत का उपदेश किया।

वाल्मीक मुनि।

(२) फिर श्री महासती जी महाराज ने कहा कि वाल्मीक मुनि इतर अर्थात् नीच जाति के हुए हैं। सुना है कि, महाभारत इतिहास के शान्ति पर्व मे जहां ऋषिओं का अधिकार है वहां यह श्लोक लिखे हैं।

चाण्डाली गर्भ सम्भृतो वाल्मीको महामुनिः।
क्रियायां ब्राह्मणो जातः तस्माज्जातिरकारणम्॥

अर्थात्—वाल्मीकि मुनि चण्डाली के गर्भ से उत्पन्न हुए परन्तु क्रिया उनकी ब्राह्मण वृत्ति को पहुंचती थी इस लिये जाति धर्म का कारण नहीं है क्रिया ही धर्म का कारण है।

(३) वेदव्यास जी मांच्छिनी अर्थात् मल्लाहिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए हैं।

श्लोक—कैवर्ती गर्भ सम्भृतो व्यासो नाम महामुनिः।
क्रियायां ब्राह्मणो जातःतस्माज्जातिरकारणम्॥

अर्थ—वेद व्यास जी कैवर्ती अर्थात् जलमें

रहने वाली (मल्लाहिनी) के गर्भ से उत्पन्न हुए क्रिया के विषय में वह ब्राह्मण पद को पहुंचे इस लिए धर्म में जाति का काम नहीं है इत्यादि।

किसी पण्डित ने यह भी कहा है—

शूद्रोऽपि शील सम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो मतः।
ब्राह्मणोऽपि क्रिया हीनः शूद्रादधर्मी भवेत्॥

अर्थ—जो शूद्रशील अर्थात् दया सत्य आदिक से संस्कृत हो उसको गुणवान ब्राह्मण माना है यदि ब्राह्मण क्रिया हीन हो वह शूद्रसे भी बढ़कर अधर्मी होता है अर्थात् उसको शूद्र कहना चाहिये।

देखिए एक और पण्डितजी क्या कहते हैं—

शीलं प्रधानं न कुलं प्रधानं कुलेन किं शील विवर्जितेन। वहवो नराः नीच कुले प्रसूताः स्वर्गं गताः शीलमुपेत्य धीराः॥

अर्थ—शील अर्थात् श्रेष्ठाचार ही प्रधान है, कुल की प्रधानता नहीं, अच्छे कुल अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय आदि द्विज कुलमें जन्म लेनेसे क्या सिद्धि है जोशीलसेरहित है। बहुत नर नीच कुलमें उत्पन्न हुए हुए श्रेष्ठाचार को पालन करके धैर्य्यवान स्वर्ग को गए हैं इत्यादि।

जैनमतके सूत्रोंमें भी ऐसा भाव पाया जाता

है यथा—(श्वेताम्वर मतका सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन १२वां गाथा ३७वीं)।

सक्खंखू दीसई तवो विशेषो।
नदीसई जाईविशेषकोई॥

अर्थ—साक्षात् दीखता है तपका विशेष अर्थात् प्रभाव नहीं दीखता जाति का विशेष कोई अर्थात् मुक्तिके विषयमें जाति की प्रधानता नहीं है इत्यादि।

ऐसे ही दिगम्वर मतके तत्त्वार्थ नामक ग्रन्थ के २८वे श्लोक में कथन है।

सम्यग् दर्शन सम्पन्न मपि मातङ्ग देह जम्।
देवादिवं विदुभस्म गूढ़ाङ्गारान्तरौजसम्॥

अर्थः—जो तत्त्ववेत्ता पुरुष हो अपितु जिस की देह चेद् यदि चाण्डाल कुल में उत्पन्न हुई हो तथापि आत्मा का गुण आत्मा में रहेगा अर्थात् ज्ञान दर्शन चरित्रादि गुणोसे मोक्ष होगा यथा भस्ममें दवा हुआ अङ्गाराग्नि अग्निके स्वभाव से न्यारा न होगा इत्यादि।

हिज़ हाईनैस महाराजा साहब बहादुर नाभा की सम्मति और आपका उपकार।

जब श्री महासती पार्वतीजी महाराजने इन

दोनों प्रश्नों का न्याय पूर्वक उत्तर देकर निश्चय करा दिया, और जो पंडित प्रश्नों को लाए थे उन्होंने वे लिख लिये और वे उत्तर महाराज नाभा नरेशके सम्मुख उपस्थित हो कर पण्डित जीको सुना दिए जब महाराजने इन उत्तरोंको सुना तो अत्यन्त प्रसन्न हुए और पण्डितोंको कुपित होकर कहा कि तुम कैसे मिथ्या प्रश्न करते हो देखो तुम्हारेही ग्रन्थोंसे तुम्हारे प्रश्न मिथ्या सिद्ध होगए हैं। अस्तु हिज़ हाइनैस बहादुरने लाला बख्शी राम मालेरिया श्रावकको यह कहला भेजा कि माईजी श्रीमती पार्वतीजी महाराजसे विनय करदो कि एक विशाल भवन उनके लिए हम देंगे जिस में आप ठहर कर स्त्रियोंको शिक्षा दिया करेंगी, इस पर लाला बख्शी राम श्रावकने श्री महासती पार्वती जी महाराजके चरणों में उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि श्री महाराज नाभा नरेश आप को राजकीय भवन देनेके लिए कहते हैं इसका हम क्या उत्तर दें तब आपने कहा कि हे भाई! क्या आप नहीं जानते हैं कि हम जैनके साधु व साध्वी लोग एक स्थान पर एक मकान अपना बना कर नहीं ठहरते हैं क्योंकि हमारे जैन सूत्रों

का नियम है कि गांव गांवमें विधि पूर्वक विचर कर धर्म उपदेश करते रहना किसी मकानका लोभ न करना अर्थात् डेरा बना कर एक स्थान पर न रहना इसलिये हम कोई मकानादि द्रव्य नहीं लेंगी जब लाला बख्शी रामने महाराजको श्रीमहासती जीकी ओरसे यह उत्तर सुनाया तो वे अत्यन्त प्रसन्न हुए और जैन मुनियों की निर्लोभता की प्रशंसा करने लगे। इस प्रकार आप अपने उपदेशों के प्रकाशसे सत्यासत्यकी परिक्षा दिलाती हुई वहां से विहार करके मालेर कोटला लुधियाना जालन्धर होती हुई हुशयारपुर पधारीं और वहांके श्रावक और श्राविकाओंकी धर्म रुचि देख कर सं० १९४५ का चतुर्मासा वहां का ही स्वीकार किया।

सं० १९४५ वि० का चातुर्मास्य हुश्यारपुर में

श्री महासती पार्वती जी महाराजका चतुर्मासा सं० १९४५ का हुश्यारपुरमे चौथी वार हुआ वहांके श्रावक श्राविकाओंने धर्म ध्यानका यथाशक्ति अच्छा उद्यम किया और चतुर्मासेकी समाप्तिपर आप विहार करके ग्राओ ग्राओं नगर नगरमें दया क्षमादि धर्म रूप अमृतकी वर्षा करती हुई अमृतसरमें विराजीं

वहांके श्रावक श्रावकाओंने आपके आगमन पर बड़ा हर्ष मनाया और आपके व्याख्यान प्रति दिन होने लगे तब श्रावक और श्राविकाओं की धर्ममें रुचि बहुत बधगई और आपके व्याख्यानोंकी प्रशंसा घर घरमें फैलगई तो जैनियोंके अतिरिक्त समाजी, खालसा पंथी, वैष्णवआदि प्रत्येकजाति व प्रत्येकमतके लोक आपके व्याख्यान सुननेके लिए आने लगे और वे सब लोग प्रसन्न होकर आपकी प्रशंसा करने लगे और आपने वहां जो धर्मोपदेश किया उसका स्वरूप भी कुछ एक नीचे लिखा जाता है।

आपका व्याख्यान अमृतसरमें।

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने अमृतसर में उपदेश किया कि ३६ बोलके थोक अर्थात् जैन शास्त्र व प्रकरणोंमें पण्डित जनोंने कहाहै कि मनुष्य के लिए आठ बोलों (बातों) का जीतना अति दुष्कर है पहले आठ कर्मोंमें मोह कर्मका जीतना दुर्लभहै।

आठ कर्मोंका स्वरूप।

आपने कहा कि संसारमें जीव शुभ अशुभ

कार्य्य करनेमें मन वाणी कर्मणासे जो क्रिया करते हैं वह क्रिया जिस वासनासे की जावे उस वासना के प्रयोगसे सूक्ष्म प्रकृति अर्थात् परमाणु व परमाणुओंके स्कन्ध खिच कर अन्तःकरणमें इकट्ठे होते हैं जिनको सञ्चित कर्म कहतेहैं वे परमाणु आठ प्रकारसे आत्म प्रदेशोंपर बंटकर भिन्न भिन्न प्रकारके फल देनेके योग्य होजाते है उन्हें जैन मतमे कर्म कहतेहै जिनके नाम यह है—

(१) ज्ञानावरणी कर्म (२) दर्शनावरणी कर्म (३) वेदनी कर्म (४) मोहिनी कर्म (५) आयु कर्म (६) नाम कर्म (७) गोत्र कर्म (८) अन्तराय कर्म।

पहला ज्ञानावरणी कर्म।

आपनेकहा कि यह पहला ज्ञानावरणीकर्म जीवात्मके ज्ञान गुणको आच्छादन करताहे (ढकताहै) इसको अज्ञान और अविद्या भी बोलते हें जैसा गीता में भी कहाहै—"अज्ञानेनावृतंज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः अर्थात् कृष्णजी ने अर्जुनजीको कहाहे कि अज्ञान से जीवात्मा का ज्ञान अवृत होगयाहे अर्थात् ढका गया है तिस करके संसारी जीव मूर्छित अर्थात् बेवश हो रहे हैं इत्यर्थः।

दूसरा दर्शनावरणी कर्म।

यह कर्म चेतन का निश्चय अर्थात् यथावत पदार्थका रूप जो चेतनकी पवित्रतामें प्रकाश होता है उसको आच्छादन करता है अर्थात् ढकताहै जिससे यथार्थ पदार्थ पर श्रद्धा (निश्चय) होने नहीं पाती।

तीसरा वेदनी कर्म।

आपने तीसरे कर्मका नाम वेदनी कर्म बतलाया और कहा कि इस संसारमें प्राणि मात्रको शुभ अशुभ कर्मोंके फल कड़वे और मीठे यह कर्म चखाता है अर्थात् सुकृतके फल मीठे अर्थात् सुख और दुष्कृतके फल कड़वे अर्थात् दुःख दिखलाता है।

चौथा मोहिनी कर्म।

आपने चौथे कर्मका नाम मोहिनी कर्म बतलाया और कहा कि यह मोह चेतनके आनन्दमें और समदृष्टमें विघ्न पहुंचाता है जैसे सरोवर का जल टिका हुआ होताहै परन्तु उसमें वायुका संचार होनेसे नाना प्रकारके तरंग उठने लगजाते हैं जिससे जलका स्थिरभाव नहीं रह सकता इसी प्रकार चेतनके आत्मिक आनंद स्थिति भावमें मोह कर्म रूप वायु का संचार होनेसे तरह तरह की प्रकृतियां बदलती

रहतीहैं अर्थात् कभी काममे कामी, कभी क्रोधमें क्रोधी कभी लोभमें लोभी, कभी अहंकारमें अहंकारी, कभी हंसीमें, कभी हर्पमें, कभी विपादमें, कभी रोनेमें, कभी भयमें, कभी शोकमें, कभी किसी पदार्थसे रागमें आकर स्नेह का करना, कभी किसी पदार्थसे द्वेपमे आकर घृणा करना इत्यादि प्रकृतियोंके वदलनेसे चेतनका आत्मा नन्द स्वभाव विगड़ जाता है अर्थात् अपनी वास्तविक स्थिति को भूल कर जिस अवस्थामें हो उसी प्रकारकी अवस्थामे हो जाता है जैसे किसी पुरुपने मद्य पान किया हो उसके मदमें वह पुरुप अपनी वास्तविक स्थिति को भूल कर कभी हंसता है कभी रोता है कभी सुख मानता हुआ सुखी होता है और कभी दुःख मानता हुआ दुःखी होता है इत्यादि, इसलिए इस मोहिनी कर्मको जीतना सवसे कठिन है।

पांचवां आउपा कर्म।

पांचवे कर्म का नाम आउपा कर्म है जो चेतन को देह के साथ सम्वन्ध रखने के लिये काल के वांधने वाला है जैसे जव तक कैदी कैद की अवधि को न भोग लेवे तव तक कारावास से छुटकारा नहीं पासकता, इसी प्रकार आउपा कर्म के अनुसार

जितनी आयु जीव बांध कर लाया है निश्चयनयेकी अपेक्षा उसमें से न्यून व अधिक करने की अर्थात् एक क्षण भर के लिये इस देह में रखने की कोई भी समर्थ नहीं रखता है इत्यर्थः।

छठा नाम कर्म।

छठे कर्म का नाम "नाम कर्म" है जो चेतन के तरह तरह के भले व बुरे नाम पैदा करने का उपादान कारण है अर्थात् जीवात्मा को कभी नरक में नारकी कभी तिर्य्यञ्च में एकेन्द्रिय शाक पात आदि, द्वीन्द्रिय अर्थात् कृमि आदि, त्रीन्द्रिय च्यूंटी आदि, चतुरेन्द्रिय मक्खी मच्छर आदि, पंचेन्द्रिय जलचर मत्स्यादि, स्थलचर गौ भैंस आदि, और नभचर शुक कपोत आदि, कभी मनुष्य गति में स्त्री, पुरुष क्लीब, स्वरूप, कुरूप, अच्छी चाल, बुरी चाल, भला, बुरा राजा, रंक, साधु, चोर इत्यादि कभी स्वर्ग में देवी देवता, इन्द्र, इन्द्राणी आदि कहलाता है यह सब नाम कर्म के ही फल हैं। इत्यर्थः।

सातवां गोत्र कर्म।

सातवां गोत्र कर्म—यह कर्म परिपक्क होने पर चेतन को ऊंच नीच पद दिलाता है, अर्थात् शुभ कर्म

के उदय से आर्य उत्तम गोत्री क्षत्रिय इक्ष्वाकु वंशी, सूर्य्यवंशी, चन्द्रवंशी, काश्यप गोत्री, वसिष्ठ गोत्री, तीर्थंकर चक्रवर्ति, वलदेव, वासुदेव, पण्डित, तपस्वी, शूर, इत्यादि उच्चपद प्राप्त कराता है और कभी अशुभ कर्म के उदय से अनार्य चण्डाल, चमार, खटीक, झीवर, म्लेच्छ, दूत, वधिक, पांमर आदि नीच पद प्राप्त कराता है इत्यर्थः ।

आठवां अन्तराय कर्म।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज ने आठवें कर्म का नाम अन्तराय कर्म वतलाया, जिसका काम जीवात्मा की शक्ति अर्थात् पुरुपार्थ को रोकना है अर्थात् यह कर्म चेतन को अनन्तवीर्य्य के होते हुए भी निर्वल अवस्था को प्राप्त करादेता है अर्थात् प्राणी किसी प्रकार का पुरुपार्थ विशेप प्रगट नहीं कर सकते, जैसे कई मनुष्य चाहते हैं कि हम सुपात्र दानदें परन्तु दान देने की सामर्थ्य होने पर भी अर्थात् आर्य्य और धनाढ्य होने पर भी देश काल और सुपात्र के न मिलने से दान नहीं देसकते, और कई लोग चाहते हैं कि, हम इतना धन कमाएं, कि, लाखपति करोड़पति होजाएं परन्तु उद्यम के करते हुए भी कंगाल ही रहते हैं, अथवा दीवाले निकल जाते हैं, कई लोग चाहते हैं कि हम अच्छा

खायें पहनें और भोग विलास करें परन्तु पदार्थ पास होने पर भी रोग आदि के कारण से भोग नहीं कर सकते और कई लोग चाहते हैं कि हम युद्ध में अपने शत्रुओं पर विजय पाकर यश लेवें परन्तु जय नहीं पाते और कई यह चाहते हैं, कि हम संन्यासी (साधु) होकर शास्त्र विद्या पढ़ें और देश विदेश घूम कर धर्मोपकार करें और तपस्या करके कर्म क्षय करें परन्तु कई निर्बल होनेसे अथवा रोगी होनेसे अथवा निस्सहाय होने से व माता पिता स्त्री पुत्र मित्र आदि की बाधासे पूर्वोक्त कार्य नहीं करसकते यह अन्तराय कर्म के फल हैं ।

कर्मों से रहित होने का सार ।

श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने कहा कि यदि ज्ञानावरणी कर्म, दर्शनावरणी कर्म, मोहनी कर्म, अन्तराय कर्म यह चारों कर्म तप संयम के साधनों से क्षय किए जावें तो इस चेतन के चार गुण प्रगट होजाते हैं जो नीचे लिखे जाते हैं—

(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) अनन्त आनन्द, (४) अनन्त वीर्य्य, (शक्ति), जिससे वह चेतन सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग (आनन्दरूप)

अनन्त शक्तिमान् कहलाता है जिसको जीवन मुक्त भी कहते हैं, शेप चार कर्म भी देह के त्याग अर्थात् निर्वाणकाल मे क्षय होजाते हैं उस समय उस शुद्ध चेतन को वंद्ध मुक्त (विदेह आत्मा) कहते है अर्थात् सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण) और साथ ही सर्व कर्मों से मोक्ष होजाता है फिर चार गुण और प्रगट होजाते हैं अर्थात् सच्चिदानन्द, सिद्ध, वुद्ध, मुक्त इस पद को प्राप्त होजाता है इसलिए जैनशास्त्रों में परमेश्वर के उत्कृष्ट अष्ट गुण कहे हैं जो निम्न लिखित हैं—

(१) सर्वज्ञ, (२) सर्व दर्शी, (३) निर्वाध अर्थात् अरूग्य (वाह्याभ्यंतर रोग रहित), (४) सर्वानन्दरूप, (५) अचल, (६)अमूर्ति, (७)अयोनि, (८) अनन्त शक्तिमान्,अर्थात् ज्ञानावरणी कर्मके न होनेसे सर्वज्ञ, दर्शनावरणी कर्मके न होनेसे सर्वदर्शी,वेदनी कर्मके न होनेसे निर्वाध,मोहनी कर्मके न होनेसे सर्वानन्दरूप, आउपा कर्मके न होनेसे अचल, नाम कर्मके न होने से अमूर्ति,गोत्र कर्मके न होनेसे अयोनि, और अन्तराय कर्मके न होने से अनन्त शक्तिमान् इन पूर्वोक्त अष्ट कर्मो की १४८ प्रकृतियां उनकी स्थिति और उनका अनुभाग अर्थात् रम और उनके वंधन आदिका जैनसूत्रो मे वहुत विस्तारसे वर्णन है मैने-तो यहां

केवल नाममात्र ही लिखा है, अस्तु आठ कर्मों में से मोहनी कर्मका जीतना बहुत दुष्कर है ।

व्याख्यान अमृतसर नं० २

तीन योगों में मन का जीतना दुर्लभ है इस उपदेश में श्री महासती पार्वतीजी महाराज ने यह दर्शाया है कि चेतन के लिए तीन योगों (मन, वाणी, कर्मणा) में से मनको जीतना दुर्लभ है अर्थात् (१) कर्मणा—कायासे जो जीवघात चोरी आदिक दुष्कर्म होते हैं उनकी रुकावट के लिए तो राजा आदि की व्यवस्थाएं बनी होती हैं जिनके आधार पर अपराधियों को दण्ड दिये जाते हैं इसी कारण मनुष्य कायिक पापोंसे कदाचित् रुक सकता है ।

(२) वाणीसे जो असत्य वचन झूठी साक्षी बुरा बोलना गाली गलोज आदि देनेके कर्म हैं उनकी रुकावटके लिए भी राजदण्ड पंचदण्ड माता पिता आदि बड़ोंका दण्ड होता है जिससे मनुष्य वचन के खोटे योगसे भी कदाचित् बच सकता है ।

(३) परन्तु जो मनका योग है अर्थात् प्रत्येक भान्ति दुष्ट विचारोंकी तरंगे मनमें उत्पन्न होती हैं जैसे कि किसी अकलके अन्धे गांठके पूरेका

धन लूट लूं। किसी को अपने वशमे लेआऊं किसी को मार डालूं किसी की कन्या बहन व स्त्री को हरलाऊं किसीके (अभियोग) मुकदमे को विगाड़ दूं किसीकी धरोहर रख कर मुकर जाऊं, अपने किए दोषों को और के सिर लगा दूं किसी प्रकार मुझे धन सम्पत्ति की प्राप्ति हो जाये अमुक मनुष्य का पुत्र मर जाय मेरी सौतन का पुत्र मर जाय मेरे वैरी नष्ट होजाय इत्यादि जो मन से बुरे कर्म किए जाते हैं इन्हें कौन रोक सकता है? केवल सद्गुरु का उपदेश और शास्त्रों का सुनना व पढ़ना ही मन को रोक सकता है अर्थात् यही आध्यात्मिक शिक्षा है जिससे यह ज्ञान होसकता है कि मनके कर्मो का दण्ड (फल) कदाचित् इस लोक में भी कुछ मिल जाय। यथा कहावत है कि जैसी नीयत वैसी बरकत परन्तु इसका फल अधिकतर परलोक में ही भोगा जाता है अर्थात् नीच गति, हीन इन्द्रिय, दरिद्री, परवशी, रोग शोक आदि से।

इस लिये मनका खोटा योग केवल (सिरफ) ज्ञान केवल से ही रुक सकता है। आपने मन की चाल पर जल का दृष्टान्त भी दिया कि जिस प्रकार जल स्वभावतः निमान की ओर जाता है इसी प्रकार

मन भी स्वभावतः नीचे को पूर्वोक्त अशुभ संकल्पों (नीच कर्मों) की ओर जाता है, और जिस प्रकार नल के और कला आदिक के प्रयोग से जल ऊपर को चढ़ता है इसी प्रकार सत्संग, ज्ञान, वैराग, त्यागादि के प्रयोग से मन भी ऊपर को शुभ विचारों में चढ़ता है इत्यर्थः इस लिये आपने यह भी बतलाया कि विद्वानों ने तीन अंकुश भी कहे हैं जो निम्न लिखित हैं—

(१) बड़ों का अंकुश, (२) लज्जा का अंकुश, (३) ज्ञान का अंकुश, जो कर्म काया से किये जाते हैं उनके रोकने के लिये राजा आदिक अथवा गुरु आदिक बड़ों का ही अंकुश होता है और वचन के कर्मों को रोकने के लिये पंचआदिक व भाइयों की लज्जा का अंकुश होता है, परन्तु मनके कर्मों को रोकने के लिए केवल (एक) ज्ञान का ही अंकुश होता है। यथा—कोई मनुष्य किसी ऐसे एकान्त स्थान पर कुछ हिंसा व मिथ्या व व्यभिचार आदि कुकर्म करता हो, जहां पर उसको किसी राजा व किसी और बड़े बूढ़े के दण्ड का भय न हो और ना ही पंचों की लाज हो तो वहां उसको किस का अंकुश काम देसकता है अर्थात् उसके मनमें किस अंकुश

का भय हो जो वह ऐसे स्थान पर कुकर्मसे वच सकता है, इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि ज्ञान ही का अंकुश काम दे सकता है अर्थात् किसीने आध्यात्मिक शिक्षा (ज्ञान वैराग्य की शिक्षा) प्राप्त की हो और उसका वीज उसके हृदय पर जम चुका हो तो वही पुरुष ऐसे एकान्त स्थान पर खोटे कर्मसे अपने आपको वचा सकता है क्योंकि ज्ञानके सुनने व सीखने वालोंके विना और कौन जान सकता है कि इस लोक व परलोक में शुभाशुभ कर्मोका फल अवश्यमेव भोगना पड़ता है जैसे कोई मनुष्य राजा व माता पितादि से छुप कर विष खाए तो वह विष उसीको मारता है राजा आदिकको नहीं इस लिये यह ज्ञानका अंकुश लोक और परलोक के सर्व कार्यों के सुधारने वाला है यथा दोहा—

अंकुश विन विगड़े सभी कुशिष्य कुपुत्र कुनार।
अंकुश कर सुधरे सभी सुशिष्य सुपुत्र सुनार॥

किसी कविने और भी कहा है—

परमेश्वर परलोक का, निश्चय नही जिस चित्त।
गुह्य देश में पापसों, कवहुन वचतो मित्त॥

इस पर श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने

एक बड़ा प्रभावशाली दृष्टांतरूप व्याख्यान भी दीया जो नीचे लिखा जाता है—

(परलोक के मानने में लाभ)

यथा एक सुन्दरपुर नगरमें धनदत्त नामक श्रेष्ठी निवास करता था जिसके कुलमें पूर्वजोंसे जैन धर्म के नियमानुसार वर्ताव था, यथा देव अरिहन्त, गुरु निग्रन्थ, जिन भाषित दया सत्यादि धर्म और गणधर कृतशास्त्र इन पर निश्चय यह तो उनका मन्तव्य था और कर्तव्य यह था कि, सात कुव्यसनों का तो अवश्य ही त्याग होता है यदि बन पड़े और सन्तोष हो तो रात्री भोजन का परित्याग, कन्दमूल का परित्याग, बिनाछाने जलपीने का त्याग, और प्रातःकाल सामायिक और पाठका करना, साधु दर्शन, शास्त्र श्रवण, सुपात्र को दान, बड़ों की विनय, भ्राताओं से प्रेम गरीबों पर दया, किसी को गाली तक का न देना, नीति से व्यवहार का करना इत्यादि यथा—

श्लोक—स्वर्गस्थितानां महाजीवलोके,
चत्वारि चिन्हानि वसन्तिदेहे।
दानः प्रसंगी मधुरा च वाणी,
देवस्य जापं गुरुवन्दनञ्च ॥

अर्थ—स्वर्ग के जाने वालों में चार लक्षण रहते हैं, दान देना, मीठी वाणी, परमेश्वर का जप और गुरुजनोंकी वन्दना इत्यादि, जिसके चार कुमार थे तीन तो सदाचारी थे परन्तु चौथे कर्मदत्त कुमार को कुसङ्गत के प्रभावसे जूआ खेलने का अभ्यास पड़ गया कभी जीत गया तो छाती निकाल कर चलने लग गया कभी हार गया तो घर के भाजन भी उठाके लेगया जब माता पितादि घरकी रखवाली करने लगे तो पत्नी के भूषण वस्त्रों पर वस चला किं वहुना कुटुम्ब से निरादृत (निरादर) होगया तो फिर निर्वाह होना दुष्कर होगया, तब धन विना जुहारिये भी द्युतस्थान (जूएखाने) में नहीं बैठाते यह प्रकृति का स्वभाव है कि, जूएवाज अकसर चोरी की ओरही झुकते हैं। अतः एकदा समय एक श्रेष्ठि के घर चौथे विवाहमें पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई थी जब वह वड़े उत्साह से वहुत द्रव्य व्यय (खर्च) करके बड़े प्रेम प्यार से पलकर वर्ष दिनका हुआ जिसकी वर्ष गांठ (सालगिरह) के महोत्सव पर उसे रत्न जड़ित, लाख रुपये के कङ्कन (कड़े) पहराकर पालकदास की गोदमें देकर दुकान पर भेजा, पथ में वाजार के चौकमें नाटक होरहा था वह पालक देखने में

निमग्न हुआ तब वह धनदत्त श्रेष्ठिपुत्र कर्मदत्त जुआरिया धनार्थी उस बालक को पालक की गोद में से लेताही वस्त्र से ढककर भीड़ में होकर भाग गया और नगर से बाहर दूर निर्जन स्थान एकान्त पहुंच कर उस मोहिनी मूर्ति सुकुमार बालक को भूमि पर रख दीया, वह बालक भय करके क्षुभित हृदय हिचकियें लेले कर उसका मुख देख देख रोने लगा, तब उस जुआरिये ने उसके सम्पूर्ण भूषण उतार कर अपनी कमर के फेंट में बान्ध लिये और खोज मिटाने के लिये उस बालक के गले में अङ्गुष्ठ देने लगा, तब विचार आया कि, कोई गोपाल (गवाला) व गडरिया (भेड़ चराने वाला) इस जंगल में देखता न हो जो चोरी के बदले खून के अपराध में फंस जाऊं। फिर सोचा कि यदि गोपाल आदि देखभी लेंगे तो क्या करलेंगे। खबर देदेंगे व काम पड़े गवाही देदेंगे जिनकी मुझे शङ्का हुई, परन्तु अरे मूढ़मन क्या तैने गुरु महाराज से सुना नहीं है कि सिद्ध,बुद्ध,मुक्त,परमात्मा परमेश्वर,सर्वज्ञ,सर्वदर्शी, अन्तर्यामी अर्थात् जो मनकी उत्पत्ति को भी जानता है (सबकी मनकी वृत्ति को) जान रहा है, कर्तव्य का तो कहना ही क्या है, उसकी शङ्का

करनी चाहिये हा ? हा ?? मुझे ऐसा करना योग्य नहीं अस्तु वालक की ग्रीवापर से हाथ उठा लिया वह सुकोमल गुलाव के फूल के समान वालक धूली में पड़ा हटकोरे ले रहा है, फिर जुआरी विचारने लगा कि, परमेश्वर निस्सन्देह सर्वज्ञ अन्तर्यामी है परन्तु वालक के मारते वकत न तो मेरा हाथ पकड़ा कि, इसे न मार और नाहीं कुच्छ हा हत कही और नाही परमेश्वर ने मुकद्दमा चलने पर गवाही देनी है कि हां इसने मेरे सम्मुख वालक मारा है, तो फिर परमेश्वर का क्या भय करना है, हां लज्जा तो करनी चाहिए क्योंकि, लज्जा तो वालक की व निर्धन (कंगाल) की भी आजाती है कि, मैं इसके देखते हुए कुकर्म कैसे करूं, और परमेश्वर तो सर्वोपरि प्रधान है । उसके देखते कुकर्म कैसे किया जाय । फिर इधर उधर देख कर मनमें आई कि इसको मारही डालता हूं किस २ वातकी सर्वज्ञ से लाज की जा सकती है, और सर्वज्ञ के तो न राग है न द्वेष है अर्थात् (कोई भला करो कोई वुरा करो) भले पर राग नहीं वुरे पर द्वेष नहीं इसी कारण परमेश्वर कर्म कर्ता नहीं है, फिर सोचा कि अरे मन ? भले वुरे कर्मों का फ़ल तो अपने आपको

ही अवश्य मेव भोगना पड़ेगा प्रथम तो इसी भव (इसी जन्म में) इस देह में रोग दण्ड शोक दण्ड वियोग दण्ड राज दण्डादि से भोगना पड़ेगा कदाचित् किसी कारण से इस लोक में न भी भोगा जाय तो परलोक में नरक तिर्यक् मनुष्य दीन दुःखी दरिद्री रोगी सोगी परवशी आदि से अवश्य ही भोगना पड़ेगा यथा श्लोक—

कृत कर्म क्षयो नास्ति, कल्पकोटि शतै रपि ।
अवश्य मेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभा शुभम् ॥

हा ! हा !! यह मेरे कुकर्म (मनुष्यघात १ बालघात २ निरपराधी को मारना ३ और इसके माता पिताकी आन्तोंको दाघ करना ४) (इन का फल मैं कैसे भोगूंगा हा ! हा !! मैं तो इसे नही मारूंगा, उनके घरके द्वार पर इसे रख कर कहीं चला जाऊंगा । इतने में पीछे बालक के न मिलनेसे पालकने घर जाकर पुकार करी कि, भीड़के बीचमें से कोई ठग कुमारको मेरी गोदमें से खैंच कर ले भागा, इतनी सुनतेही सर्व कुटुम्बी जन व्याकुल होकर चहुंदिशि दौड़े और राज सभामें जापुकारे, राजाने भी अपने नगर रक्षक (कोतवाल) को बुलाकर प्रचण्ड आज्ञा करदी

कि, अपने कर्मचारियोंको साथ लेकर शीघ्र वन वसतीसे खोज निकाल कर आज्ञा मोड़ो अन्यथा जो चोरको दण्ड सोई तुझको होगा अस्तु फिर क्या था राजकीय लोग और साथही जिनदत्त, सेठ और सेठके चाकर नगरसे बाहर खोज निकालते २ उसी एकान्त प्रछन्नस्थान पर जा पहुंचे जहां वह कर्मदत्त जुआरिया कुछ सोच रहा था बस उस बालकको भूमि पर पड़ा देखतेही कोतवालने तो उस ठगको कड़ी लगा कर दृढ़ बन्धनसे बांध लिया, और बालकके पिताने उस भयभीत धूली भरे बच्चेको शीघ्रतासे उठा कर अपने हृदयसे लगा लिया, और उसे मुरझाया हुआ रोनेकी भी शक्तिसे हीन देख कर दासको आज्ञा दी कि शीघ्र वस्तीमें जा जहां से दूध मिले लेकर हमको पथमें ही आमिल ऐसा न हो कि कदी का भूखा प्यासा मेरा लाल...... अस्तु चाकर तो आज्ञाके साथही मुट्ठिएं बांध कर पवनवेग होगया नगरसे बाहरही एक गुज्जर महिप वालेके घरसेही एक पात्रमें दुग्ध लेकर पीछे सेठ जीको शीघ्रही आमिला और सेठजीने गोद वाले हाथमें भाजनको ग्रहण किया और दूसरे हाथकी अंगुलियें दूधसे भरभरकर बालकके मुखमें डालते

हुए कोतवालके साथ राज सभा में पहुंचे, राजाने सादर सब वृत्तान्त पूछकर उस अपराधीके सम्मुख होकर कहा अरे दुष्ट तू चोर है और यह अपराध तैनेही किया, अपराधी बोला हे स्वामिन्! मैं चोर नहीं चोर का भाई नहीं चोर मेरी जाति नहीं मैं तो इसी नगरका निवासी धनदत्त नाम सेठका पुत्र कर्मदत्त हूं परन्तु यह अपराध मैंने अवश्य किया है—

राजा—क्यों?

अपराधी—कुसंगके कारण जूएका अभ्यास होनेसे धनके लिये।

राजा—बालकके विषयमें तेरा क्या विचार था?

अपराधी—भूषण उतारे पीछे बालक को मारकर भूमिमें गाड़ देनेका था परन्तु मारा नहीं।

राजा—मारनेका विचार क्यों था, और न मारने का कारण क्या था।

अपराधी—मारना था खोज मिटानेके लिये और नहीं मारनेका कारण प्रथम तो यह था कि, कोई देखता न हो जो खूनके मुकद्दमे में फंस जाऊं, दूसरे यह सोचा कि, कोई देखे न देखे परन्तु परमेश्वर तो सर्व दर्शी देख रहा है फिर

सोचा कि, परमेश्वर जानता है और देखता भी है परन्तु मुझे कुकर्म करते न हटाता है और न हां हत करता है नाही काम पड़े साक्षी (गवाही) देगा कि, हां मेरे सम्मुख मारा है तो फिर मार ही क्यों न दूं, फिर ध्यान में आया कि परमेश्वर कुछ कहो न कहो साक्षी दो न दो परन्तु कर्मों के फल तो कर्मों के करने वाले को ही भोगने पड़ेंगे, प्रथम तो इसी लोक में अन्यथा परलोक मे तो अवश्यमेव भोगने पड़ेंगे इस कारण में इस वालक को इसके घर पर ही छोड़ दूं इतने में आप के कर्मचारियो के हाथ आप के दर्शन मिले, जो कुछ था सो मैंने तो सच सच कह सुनाया अव आपके अधीन है इच्छा हो मारें इच्छा हो छोड़दे। तव राजा साहिव सभासदों की ओर दृष्टि करके वोले अयि सज्जन पुरुषो ? देखो यह पुरुष चोर नही चोर की जात नही परन्तु कुसंग के प्रभाव से कैसा दुष्ट कर्म किया। तथापि याद रखने की वातहै, कि इसको श्रेष्ठाचारी कुल में उत्पन्न होनेके कारण और महात्मा त्यागी साधुओं की शिक्षाके प्रभावसे कहां तकका लाभ हुआहै कि दुष्टकर्म करनेके समय इसकी पूर्वसुमति ने इसको प्रेरणा की, कि परमेश्वर और परलोक भी तो है।

तब इसने सुमति का निरादर न किया अर्थात् (सुमतिकी शिक्षा पर विश्वास किया) अर्थात् परमेश्वर और परलोक को माना जिसका परिणाम यह हुआ कि प्रथम तो अनमोलक रत्न बालक के प्राण बचे, द्वितीय इसके प्राण बचे, तृतीय इसका परलोक न बिगड़ा, चतुर्थ श्रेष्ठी जी के हृदय का टुकड़ा कुल दीपक पुत्र रत्न नये सिरे मिला यदि उस वक्त यह सुमति का आदर न करता अर्थात् परमेश्वर और परलोक को न मानता तो बालक के प्राण जाते १ और न्याय होने पर राजनीति के अनुसार इसको सूली भेद किया जाता २ और बाल घातादि दोषके प्रयोगसे दुर्गतिके महा कष्ट चिरकाल तक भोगने पड़ते ३ और श्रेष्ठीजी को महा दुःख अनुभव होता प्रत्युत कुलक्षय होता ४ और इसके पिता पत्नी आदिक दुःखी होते ५ इत्यादि इस लिये परमेश्वर और परलोक का मानना मनुष्यमात्र का परमधर्म है। फिर राजा साहिबने न्याय किया, कि तुझको सात वर्ष कारागार (कैद) में रक्खा जाये परन्तु मैं तेरे श्रेष्ठी पुत्र होने का लिहाज न करता हुआ केवल तेरे सत्य बोलने पर साफ छोड़ता हूं परन्तु याद रखना कि फिर जूआ आदि कुव्यसनों को कदाचित् ग्रहण न करना

सभा सम्मुख शपथ (कसम) खा और सेठ से कहा कि यह बालक के भूषण इस कर्मदत्त को देदे और बालक का सुख मनाता हुआ घर को जा और कहा कि शुभाशुभ कर्तव्यके प्रत्यक्ष फल देख लिये, तब सेठ जी ने वे भूषण (गहने) उसके सम्मुख किये कि ले तब कर्मदत्त बोला कि मैं मंगता भिखारी नहीं हूं मैतो श्रेष्ठी पुत्र हूं यह कर्म तो मेरेसे कुसंगति ने कराये, इन भूषणों को तो आप इस बालक के मस्तक परसे वार कर पुण्य करदो अर्थात् गोरक्षादि अभय दान में, विद्यालय, अनाथालय, विधवाओ के धर्मरक्षा आदिकमें लगादो, तवसव सभासद धन्य धन्य कर उठे और सेठजी ने ऐसे ही किया सभा विसर्जित हुई। और सेठ जी अपने जीवन प्राण पुत्र रत्न को लेकर घर आए और मंगल रचाये। और कर्मदत्त अपने घर गया, उसकी प्रशंसा सुनते हुए कुटुम्बियों ने हर्ष प्रकट किया और आदर से निर्वाह होने लगा और घर २ इस वात का प्रचार हुआ कि संसार में धर्म ही सार है। ऐसा कहकर श्रीमहासती श्रीपार्वती जी महाराज ने कहा कि अयि भव्य जनो ध्यान रखना परमेश्वर और परलोक को उपरोक्त जैन सूत्रानुसार अवश्य मानों इसमें पूर्वोक्त वहुत लाभ है।

यदि आप लोगों की समझमें परमेश्वर और परलोक का स्वरूप न भी आवै तौ भी मानना आवश्यक है यथा किसी पण्डित ने श्लोक भी कहा है—

संदिग्ध परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्य संग्रह ।
नास्तिच नास्तिनोहानि आस्तिचनास्तिकोहतः ॥

अर्थः—यद्यपि किसीको परलोक और परमेश्वर के मानने में सन्देह भी हो तथापि पुण्य (सुकृत) दयादानादि शुभ कर्म का संग्रह (सञ्चय) करना योग्य है चेद् यदि परलोक नहीं भी होगा तो भी हमारे को कोई हानी न होगी किन्तु हमारे शुभकर्मों का फल हमको यहां ही अच्छा मिलेगा अर्थात् सज्जनों में आदर देश विदेश में यश इत्यादि यदि परलोक होगातो हमको परलोक में बड़े २ स्वर्गादि सुखदायक फल मिलेंगे,परन्तु नास्तिकों को बड़ी हानि होगी क्योंकि वह परमेश्वर और परलोक को न मानते हुए पूर्वोक्त किसी प्रकार के कुकर्मों से न बचते हुए इस लोकमें अपयश अथवा राजदण्डादि अनेक कष्ट भोगेंगे और परलोक में नरकादि महाकष्ट भोगेंगे इस लिये आस्तिक मत में स्थित होकर धर्मात्मा बन कर मनुष्य जन्म को सफल करो इत्यर्थः—

व्याख्यान अमृतसर नं० ३

पांच इन्द्रियोंमें रस इन्द्रियका जीतना दुर्लभ है । श्रीमहासती पार्वती जी महाराज ने कहा कि पांच इन्द्रय यह है, (१) श्रोत इन्द्रय (२) चक्षु इन्द्रय (३) घ्राण इन्द्रय (४) रस इन्द्रय (५) स्पर्श इन्द्रय इन पांचों इन्द्रयोंमें से रस इन्द्रयको जीतना बहुत दुर्लभहै किन्तु इस रसना के कारण कई लोक अपने धर्म नियम को तोड़ देते हैं और इसी रसनाके लिए कई लोग दाल रोटी पर संतोष न करते हुए नाना प्रकारके कुकर्म (हिंसा झूठ चोरी ठग्गी मायाचारी आदिक) से धन इकट्ठा करते हैं कि हम अच्छे २ पदार्थ और नाना प्रकारके सरस व्यञ्जन खाएं यहां तक कि धर्मसे विरुद्ध अभक्ष्य पदार्थों को भी भक्षण करने लग जाते हैं इस रसना के कारण कई संयमी सयम वृत्ति से भी पतित हो जाते हैं ।

यथा दृष्टान्त—राजगृह नगरके बाहर वनमें एक साधु रहता था जिसने अपनी इन्द्रियों के वश करनेके लिए इन्द्रियों के सब विषय त्याग रखे थे; मनको यहां तक साध लिआ था कि भूख लगने पर वनके सूखे पत्रों पर ही निर्वाह कर लेता था । एक दिन वहां पर वनक्रीड़ा करता हुआ एक राजा

आ निकला जिसने साधुको देख कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर आदर पूर्वक खड़ा रहा, परन्तु साधुने उधर आंख उठाकर भीन देखा, क्योंकि वह साधु निर्लोभी था उसे राजासे प्रयोजन ही क्या था।

तब राजाने सोचा कि इसने तो मेरी ओर देखा तक भी नहीं अस्तु राजाजी अपने घर प्रति चले गये और मनमें विचार करने लगे कि यह साधु कहां तक वैराग में पहुंचा हुआ है इसकी परीक्षा लेनी चाहिए कि क्या यह पूरी सिद्धि तक पहुंच गया है अथवा कुछ कमी है ऐसा सोच कर उसने एक चतुर वेश्याको बुलाया जिसका नाम काम लताथा राजाने वेश्याको उस साधुका पता बतला कर आज्ञा दी कि किसी न किसी विधि से उस साधुको वशमें करके मेरे पास लाओ, वेश्याने कहा बहुत अच्छा, वेश्याने अपने घर पर आकर कुलीन स्त्रियोंकासा वेष पहना और एक स्त्रीको दासी वना कर साथ लिया और एक स्वर्णके थालमें अच्छे २ खानेके पदार्थ और कुछ स्वर्ण मुद्राभी लेकर उसी वनमें साधुके चरणों में उपस्थित हुई और प्रणाम करके बैठ गई और भेंट चढ़ा करके प्रार्थना की कि महाराज आप यह भेंट स्वीकार करें और एक

मेरी विनती भी सुने कि मैं एक अच्छे घराने की स्त्री हूं मेरे हां आपकी कृपासे धन सम्पति आदिक सब सुख है परन्तु पुत्र नही है आपकी वड़ाई सुन कर सेवामें उपस्थित हुई हूं आपकी कृपासे मेरी आशा पूर्ण हो जायगी। साधु वोला हमें किसी पदार्थ की इच्छा नही है और नां ही हम किसी को शाप अथवा वर देते हे। हमतो अपनेही ध्यान में मग्न रहते हैं तव विवश होकर वेश्या अपने घर प्रति चली गई फिर कुछ दिन ठहर कर वही वेश्या उसी साधुके पास पहुंची और कुछ मिठाई सामने रख कर वोली महाराज मैंने भागवत की कथा विठाई थी जो आज पूरी हुई है उसका प्रसाद लेकर आई हूं, यदि इसमें से थोड़ासा प्रसाद आप भी अंगीकार करें तो वड़ी ही कृपा होगी। साधु वोला कि हम मिठाई नहीं खाते हैं हमारा भोजन तो सूखे पत्ते हैं वेश्याने वहुतही विनयकी परन्तु साधुने मिठाई को अंगीकार न किया। वेश्या अकृतकार्य्य होकर फिर परतकर घर आगई और सोचने लगी कि इसे कैसे वश में करूं इसको तो खानेकी ही इच्छा नहीं है क्योंकि जो पशु, पक्षी. मनुप्य, देव वसमें होते हें वह सव खानेसे ही वस होते हें अच्छा उद्यम

बड़ी चीज है अपितु वह वेश्या कई दिनके पश्चात् फिर साधु के पास आई और अपने साथ एक थाल खीरका लाई और साधुको प्रणाम करके कहने लगी, हे दीन दयालु! कृपासिन्धो! एक विनती करना चाहती हूं यदि आप स्वीकार करें तो साधुने उसको पहचान कर मनमें सोचा कि यह बड़ी ही भगता प्रेम वाली जान पड़ती है इसकी विनती सुनने में क्या हानि है साधु बोले कहो कहो क्या कहना चाहती हो वेश्या बोली महाराज मैंने ब्रह्म भोज किया है उसकी खीर लाई हूं यदि आप जैसे उत्तम ऋषि इसको अंगीकार न करेंगे तो मुझे ब्रह्म-भोज से क्या लाभ होगा इसलिये यदि आप इसमें से एक उंगली भी चाटलें तो मेरा ब्रह्म-भोज साराही सफल हो जावेगा। साधुने विचारा कि यह स्त्री बारम्बार विनती करती है इसकी विनती स्वीकार करके एक अंगुली भरकर खीर खाही लेते हैं आपितु उस साधुने उसमेंसे एक अंगुली भरकर चाटली जब उसका स्वाद बहुत अच्छालगा तो चार पांचग्रास और भी लेलिये तब, वेश्या मनमें बहुतही प्रसन्न हुई कि जिसकामका विचार था वह विचार आज सफल हुआ और थाल उठा कर प्रणाम करके निज

घर आकर अपनी दासी को समझा दिया कि दूसरे तीसरे दिन वहीं साधु के पास नाना प्रकारके मेवे और पक्वान ले जाया कर। इस प्रकार साधु कभी कोई मेवा खा लेता कभी कुछ मिठाई खा लेता और कभी सलूना भोजन भी चख लेता था जब वेश्याने देखाकि अव तो वह मेरा भक्त हो चुका तब एक दिन स्वयं वहुतसे पदार्थ लेकर गई तब साधुने दूरसे ही आती हुई को देख कर कहा कि अयि सेठानी! अब तो तुमने वहुत दिन के पश्चात् दर्शन किया है। वेश्यामनमें," बस अब तो कार्य सिद्ध होगया, मुस्कराकर बोली मुझे कुछ काम रहता है, और कहा आप भोजन करले, साधु ने भोजन कर लिया। फिर वेश्या बोली कि आपकी बड़ी कृपा होगी, यदि भोजन के समय आप मेरे घर पर पधारा करें। साधु को जिह्वा का रस तो पड़ ही चुका था, इसलिए बोला—मैं तुम्हारा घर नहीं जानता हूं, वेश्या बोली कि दासी आपकी सेवामें उपस्थित है, अभी साथ चलकर मेरे गृह को पवित्र कीजिए, साधु साथ हो लिया, वेश्याके घर की सजावट उसके लिए मानों स्वर्गधाम थी। वेश्याने उसे पलंग पर बैठने को कहा, और बड़ी भक्ति

से स्वादिष्ट खाने खिलाए। इसके पश्चात् साधुजी प्रतिदिन वेश्या के घर पर आया करते और भोजन करके वापिस वनको लौट जाया करते थे। एक दिन वेश्या जान बूझकर घर से चली गई, दासी ने साधु को खड़ा रखा जब वेश्या आई तो कहने लगी, आज यहां ही विश्राम कीजिए, अब समय जाने का नहीं रहा, तब साधु वहीं ठहर गया, अब साधुजी वेश्याके वशमें तो हो ही चुके, फिर वनमें जाने की क्या आवश्यकता थी, एक दिन वेश्या ने साधु से कहा, महाराज ! यह सब घर बार, धन, दौलत महाराजा साहब की कृपा से हैं, आप मेरे साथ चलकर उनसे अवश्य मिलें, ताकि आपका दरबार में भी आदर हो, साधु तो वेश्या का भक्त हो ही चुका था, उसके कथन को ब्रह्मा का वाक्य समझता था, तुरन्त साथ हो लिया। राजा सिंहासन पर बैठा हुआ था, वेश्या और साधु दोनों सन्मुख जाकर खड़े हो गए, राजाने कुछ देर साधु की ओर देखकर कहा क्या आप वही साधु हैं, जिनके दर्शन मैंने बन में किए थे, जब आपने मेरी ओर आंख उठाकर भी न देखा था। हंसकर यह हमारी इस वेश्या का ही प्रताप है कि आपने मेरे मकान पर

आकर दर्शन दिए हैं, यह सुनकर साधु वड़ा लज्जित हुआ और अपनी भूल का पश्चात्ताप करने लगा, साधुने समझ लिया कि यह सव कुकर्म राजा ही ने वेश्या से करवाया है। सचमुच इन्होंने मेरी परीक्षा के लिये यह प्रपञ्च रचा शोक ! मैं परीक्षा में अवतीर्ण हुआ (गिर गया) यदि मैं रस इन्द्रिय के वशमे न पड़ता तो अपने योगसे कभी भ्रष्ट न होता और ना ही इस समय इतना अपमान सहना पड़ता इस प्रकार अपनी प्राभवता पर शोक करता हुआ राजा की ओरदेखकर वोला कि अव के तो मैं परीक्षा में अवतीर्ण होगया, परन्तु आपकी कृपासे आशा है कि अव न हूंगा, राजाने कहा तथास्तु ऐसा ही होना चाहिए,अस्तु वह साधु फिर अपने धर्म पर आरूढ़ होकर वन को चला गया, और रीति पूर्वक प्रायश्चित हो अपने योगमें दृढ़ होगया, इत्यर्थः। इसी लिये पांच इन्द्रियों में रस इन्द्रिय का जीतना वड़ा दुर्लभ कहा गया है॥

व्याख्यान अमृतसर नं० ४.

पांच यमोंमें ब्रह्मचर्य्य का पालन करना दुर्लभ है। श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने ब्रह्मचर्य के विषय पर एक वड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान

दिया । आपने बतलाया कि यह जो पांच महाव्रत (यम) हैं, अर्थात् अहिंसा, सत्य, दत्त (अचौर्य) ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह अर्थात् निर्ममत्व इन पांचों में से चौथे महाव्रत ब्रह्मचर्य्य का पालन करना अति दुर्लभ है।

आपने कहा कि पहला यम दया, करुणाभाव से पाला जासकता है, दूसरा यम सत्य, विवेक से बोला जासकता है । तीसरा यमदत्त (अस्तेय) सन्तोष से पल सकता है, पांचवां यम अपरिग्रह निर्ममत्व भावसे पल सकता है, परन्तु चौथा यम ब्रह्मचर्य्य यह विना ज्ञान और वैराग्यके और पांच इन्द्रिय तथा छठे मनके वशमें किये विना पल ही नहीं सकता। जैसे मछली जलके और रेल गाड़ी रेल की सड़कके विना चलही नहीं सकती। ऐसे ही कामदेव को वस किये विना ब्रह्मचर्य्य भी नहीं पल सकता, इत्यर्थः । फिर आपने कहा कि इस कामके वशमें होकर लोक अनेक प्रकार के कुकर्म करलेते हैं और नाना प्रकार के कष्ट भी सहते हैं । कई राजाओं ने इसके वशमें होकर रावणके समान राज्य का नाश कर दिया और शिर तक कटा दिया, बहुत लोगों ने इसका दास बनकर अपनी उत्तम जाति कुलवंश को कलंकित कर दिया । इसी कामदेव ने

लाखों मनुष्यों को वर्णाश्रमके धर्मसे पतितकर दिया, यह एक ऐसा चाण्डाल है जिसने मनुष्यों को तो क्या विचारे पशु पक्षियों तक को भी दुःखों में डाला हुआ है, वे भी इसके वश होकर एक दूसरे से लड़ लड़के मरते है, इन पर ही वस नही है, प्रत्युत इस कामदेव ने योगियों महात्माओं और ऋषियों की समाधियों को भी निर्दयता से तोड़ डाला। यही कारण है कि इस कामदेवके वेग अतिशय साधनाओंके करते हुए भी रुकने कठिन है।

फिर श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने कामदेवकी प्रवलता दर्शाने के लिये एक दृष्टान्त भी दिया जो निम्नलिखित है:—

ब्रह्मचर्य्य के विषय में दृष्टान्त।

एक महात्मा ब्रह्मचारी साधुने ब्रह्मचर्य्य यममें उत्तीर्ण (पास) होकर सफलता का सार्टीफ़िकेट (प्रशंसा-पत्र) प्राप्त करने के लिए वस्ती में रहना त्याग दिया, और वसन्तपुर नगर के वाहर दूर जाकर एक वनकी गुफामें ध्यान लगाया, जो ऐसा एकान्त स्थान था कि जहां स्त्रियों का पाओं तक न पड़ता था, यहां तक कि पशु जाति की स्त्रियां भी दृष्टि-गोचर न होती थीं। इस स्थान पर वह ब्रह्म-

चारी इस चौथे यम का साधन यथा रीति करता रहा, जब उसे भूख लगती तो वहां धरा ही क्या था जिसे खालेता, वस अत्यन्त भूख लगने पर वह वनके सूखे पत्ते ही खालिया करता था, इस प्रकार उस महात्मा पुरुषने चोवीस वर्ष तपस्या में बिता दिए, आप जानते हैं कि शरीरका निर्वाह अन्न पर ही निर्भर है, देहके योग्य भोजन न मिलने से उस महात्मा का शरीर अतिकृश होगया, लहू सूख गया नाड़ियां दीखने लगीं, हड्डियां उठते बैठते खड़ खड़ाने लगीं, जिससे उस तपस्वी को पूरा विश्वास होगया कि अब तो मेरा तन, मन मेरे वशमें होगया है, इस लिये चौथे यम (ब्रह्मचर्य) में मुझे पूर्ण सिद्धि प्राप्त होगई है। अब मुझे बस्ती के निकट रहने में कोई हानि नहीं है, ऐसा विचार कर वह उस निर्जन वनसे चल दिये और बस्ती में रहने की इच्छा से एक वागीचे की झोंपड़ी में जो वसन्तपुर नगरके निकट थी, आडेरा जमाया, इस झोंपड़ीमें लोग अग्नि की धूनी लगा रखते थे, और शौच कर्म से निवृत्त होकर वहां से आग लेकर सेका करते थे; व कई लोक तमाखू पिया करते थे। जब लोगोंने इस झोंपड़ीमें एक महात्मा ब्रह्मचारी साधुको विराजमान देखा तो सबने उस

को प्रणाम किया, और कहा कि हमारे अहोभाग्य हैं, कि हमको ऐसे श्रेष्ठाचारी महात्माके दर्शन हुए है, और सब इस महात्मा की प्रशंसा करने लगे, और जो आता, उसकी निर्लोभता और वैराग्यताको देखकर आश्चर्य रह जाता। धीरे धीरे नगर भर में ब्रह्मचारी के गुणोकी चर्चा फैलगई और नर नारियोके समूह आने लगे, यहां तक कि राजाके कानों तक भी उसकी कीर्ति पहुंच गई, और राजाजी स्वयं दर्शन को उपस्थित हुए और उसके क्षीण शरीरको ही देखकर समझ गये कि महात्मा सचमुच पूरा ब्रह्मचारी है। राजा साहव अत्यन्त प्रसन्न होकर प्रणाम करके चले आये और रात को रणवास मे गये तो उस महात्माकी प्रशंसा राणीसे भी की, तब महाराणी वोली, कि हमें क्या सुनाते हो, हम तो आपके आयु भरके कैदी है, हम क्या जानें कि कहां क्या होरहा है, कैदी तो कैदकी अवधि पूरी करके छूट जाते हैं, परन्तु हम विना अपराध ही एक ऐसी कैद मे वन्द है, जिस की कोई अवधि ही नही है, तव राजाने कहा, आप निःशङ्क होकर साधुके दर्शन को जाएं, मैं आज्ञा देता हूं, प्रत्युत (वल्कि) अभी जाएं, क्योंकि रात

का समय ही आपके लिए अच्छा है। दिनके समय तो वहां मेला लगा रहता है।

महाराणीजी राजाकी इस बात पर बहुत प्रसन्न हुईं और बोलीं बहुत अच्छा अभी जाकर उनके दर्शन कर आती हूं॥

महारानीजी को ब्रह्मचारी के दर्शन।

राजाके कथन पर स्वयं महारानी एक दासी और एक सखी को साथ लेकर पीनस में चढ़कर चलदीं, पालकी कुटियाके समीप जाकर ठहराई गई वहां चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार था, कोई स्त्री व पुरुष आस पास दिखाई न पड़ता था। महाराणी पालकी से नीचे उतरीं और दासी को आज्ञा दी कि लालटैन को साम्हने करो और आप बाहर खड़ी होकर कुटियाके अन्दर दृष्टि डाली तो क्या देखती है कि एक राख का ढेर है, जिस पर एक महात्मा परमात्माके ध्यानमें अवस्थित है। महारानी निस्संकोच होकर अन्दर चली गईं और पालकी उठाने वाले कहार व दासी सब बाहर ही रहे। महारानीके लिए वहां कोई कुर्सी व सिंहासन आदि तो रखा ही न था, उसी राख की ढेरी के निकट साधु को प्रणाम करके बैठ गईं।

जव ब्रह्मचारीजीने ध्यान खोला तो चकित होकर सोचते हैं कि क्या मे स्वप्नमें हूं व जाग रहा हूं क्योंकि कहां यह राखसे भरी हुई कुटिया और वनवासी योगी, और कहां लालटैनके तीक्ष्ण प्रकाश के सन्मुख एक महाराणी के वस्त्रोंकी जगमगाहट. दूसरे भूषणोंके मणिओ की कान्ति मानो कुटिया में देवलोकको भान्ति तारोंकी सी दीप माला हो रही थी। ऐसा अवसर उस महात्माने जीवन भर में पहले कभी देखा ही न था, क्षण क्षणमें विद्युत् की सी तीखी लिश्क उसके नेत्रों पर पड़ रही थी, चकित था कि रात्रिके समयमे यह सन्मुख वैठी हुई अलौकिक सुन्दरी कौन है क्या स्वर्ग लोकसे इन्द्राणी स्वयं मेरे दर्शनोंको आई है फिर स्वयमेव विचार किया कि शास्त्रोंमे सुनतेहैं कि ब्रह्मचारियों को इस शरीरके छोड़ने पर अवश्य स्वर्ग मिलता है परन्तु मैंने तो इसी शरीरमे स्वर्गकी अपसराको देख लियाहै । इधर ऋषि इन विचारोंमें निमग्न हो रहे थे उधर महाराणी ऋषिके ब्रह्मचर्य्य आदि गुणो. को मनमे धारण करती हुई ऋषिकी ओर देख २ कर विस्मित हो रही थी, इस प्रकार ऋषिकी दृष्टि. राणीके चन्द्र मुख और कमलदल नयन और

उसके हीरों पन्नों आदि रत्नोंसे जड़े हुए भूषणों पर पड़नेसे उस मुनिका मूर्छित काम देव विना जागे न रह सका, और उसकी दृष्टि तत्काल ही फिर गई। महाराणीजी भी स्वयं बुद्धिमती चतुर और पण्डिता थीं तुरंत जान गईं कि ऋषिजी तो ब्रह्मचर्य्यके सिंहासनसे गिर गए, मैं तो इस ब्रह्मचारीकी अतिशय साधनाकी प्रशंसा स्वयं (अपने) महाराजके मुखसे सुनकर आई हूं परन्तु शोक! अतिशोक!! कामरूपी सर्पने इसकी वृत्तिको भी डसकर विषैला बना दिया हाहा!! दुष्ट कामदेव, अस्तु महाराणीजी उसके क्षीण और भस्म रञ्जित शरीरको देख देखकर गम्भीर विचार सागर में निमग्न होकर गोते खाने लगीं।

राणीका कामकी प्रबलता पर विचार।

महाराणीजी सोचती हैं कि इस ब्रह्मचारीकी इतनी साधना परभी विषयोंने इनका पीछा न छोड़ा, यथा श्लोक—

भिक्षाशनं भवनमायतनैक देशः। शय्याभुवः परिजनोनिज देह भारः॥ वासश्च जीर्ण पट खण्ड निबद्ध कन्था। हा हा तथापि विषयान्नजहाति चेतः॥

अर्थ—भिक्षा मांगकर भोजन करना किसी घरके एक कोनेमें वास करना भूमिपर शय्या कर के सोना अपनी देहके सिवा दूसरा कोई पास नहीं है, फटे पुराने चीथड़ोंकी गोदड़ी का ओढना, हा शोक ! इस दशामें भी विषय पीछा नहीं छोड़ते।

महाराणी ने फिर विचार किया कि यह विचारा तो क्या वस्तु है इस कामदेवने वड़े वड़े वलवानों और उत्तम पुरुषोंको भी अपने वश में किया है, जैसा कि भर्तृहरि कृत शृंगार शतक श्लोक १ में भर्तृहरिजी लिखते हैं—

श्लोक—शम्भु स्वयम्भु हरयो हरिणेक्षणानां।
येनाक्रियन्त सततं गृह कर्म दासाः॥
वाचामगोचर चरित्र विचित्र ताय।
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय॥

अर्थ—शम्भु (शिव) स्वयम्भु (ब्रह्मा) हरि (विष्णु) इन तीनों देवताओंको मृगाक्षिणी स्त्रियों के जिस कामदेवने घरके काम करनेको दास वना दिये इस कामदेवकी विचित्रता लिखने और पढने से परे है, इसलिए भर्तृहरिजी कहतेहैं कि (मैं ब्रह्मा, विष्णु, और शिवको क्या नमस्कार करूं) जिस कामदेवके यह तीनों वशमेंहैं उसी कामदेवके ताईं

नमस्कार करता हूं। इसप्रकार भर्तृहरि जीने काम देवके विषयमें शोक प्रकट कियाहै। महाराणीके इसविचारको वर्णन करते हुए श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने श्रोता जनोको बतलाया कि धन्यहैं श्री अरिहन्तदेवजी महाराज कि जिन्होंने ऐसेकाम-देवको जीतलियाहै और निष्काम, निष्क्रोध, निर्लोभ निर्ममत्व होकर सर्वज्ञ जिनेन्द्र पदको प्राप्त कियाहै। फिर महाराणीका विचार इस कामदेवकी नचि-ताकी ओर गया कि देखो इसदुष्ट कामदेवने नीच से नीचके घटमें भी आसन जमानेसे घृणा न की यथा श्लोक—शान्तिशतके तथा भर्तृहरिशतके:—

कृशःकाणः खञ्जः श्रवणः रहितः पुच्छविकलो।
व्रणीपूयक्लिन्नः कृमिकुल शतैरावृततनुः॥
क्षुधाक्षामो जीर्णोऽपि करक कपालाऽर्पित गलः।
शुनी मन्वेतिश्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः॥

अर्थ—श्वा अर्थात् कुत्ता कैसा कुत्ता सूखा हुआ काणा, लंगड़ा, कान गलकर गिर गए हुए, पुच्छ भी गल सड़ कर गिर गईहुई खुजलीसे देहपर घाव हुए हुए जिनमेंसे रादवहरहीहै और उनमें कीड़े कुलबुलकर रहेहैं भूखका मारा हुआ खानेके वास्ते जीर्ण भाण्डेमें मुंह डालनेसे और भाण्डेके फूटजानेसे भाण्डेका गलमां

गलेमें पड़ा हुआहै, ऐसा होने पर भी वह कुत्ता कामदेवके वशमें हुआ २ कुत्तीके पीछे जाताहै और वह कुत्ती उसको काटनेको पड़तीहै, जिसपर भी कामदेव उस कुत्तेके हृदयसे अपना आसन नही उठाता हा शोक !

पाठक ! देखिए अवराणीजी उस महात्माको कैसे समझातीहैं।

महाराणी का ब्रह्मचारी पर उपकार ।

जव महाराणी ने वड़े वड़े वलवान् उच्चसे उच्च और नीचसे नीच मनुष्यों और पशुओं को कामदेवके वश में पाया तो सोचा कि अव मुझे कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे यह ब्रह्मचर्य से गिरा हुआ योगी फिर ब्रह्मचर्य में आरूढ हो जाय ताकि इसकी वहुत वर्षोंकी साधना मट्टी में न मिल जाय और मेरा यहां आनाभी सफल हो जाय, यह सोच कर उसको सुमार्ग पर लाने के लिए महाराणी ने उस ब्रह्मचारी से प्रार्थना की, कि आपकी क्या इच्छाहै आज्ञा करो मैं उपस्थित हूं । ब्रह्मचारी उसकी इस वात पर वड़ा प्रसन्न हुआ और अपने मनका भाव प्रकट किया महाराणी जो वड़ी ही पतिव्रता

और पण्डिता थी उसने तुरंत अपना पचास हज़ार रुपयेका दुशाला अपने ऊपरसे उतारकर उस राख के ढेर पर बिछा दिया, तब ब्रह्मचारी तुरंत ही चमक कर बोला कि हैं हैं ऐसे बहुमूल्य दुशालेको राखमें क्यों ख़राब करती हो, तब महारानी ने ब्रह्मचारी के मुख की ओर देखकर उत्तर दिया कि हे ब्रह्मचारी? मेरा यह दुशाला तो पचास हज़ार रुपयाका है राख लग गई तो क्या हुआ झाड़ने से शुद्ध (साफ़) हो जाएगा परन्तु आपका ब्रह्मचर्य्य धर्म जो २४ वर्ष के घोर परिश्रम और बड़े कष्टों से कमाया हुआ है जिस का मोल ही नहीं अर्थात् अमोलक है आप उसको विषय भोगकी राख में डालकर नाश करने लगेहो, क्या उसका तुझको शोक नहीं है। महाराणीकी यह शिक्षा सुनतेही वह ब्रह्मचारी संभल गया और अपने पहले अभ्यासके अनुकूल वैसाही शान्तभाव धारण कर लिया और मन में पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा कि हे मातेश्वरी! हे गुरुणी!! मैं तुझ को धन्यवाद देता हूं कि आपने मुझ पतितको अच्छी शिक्षा देकर उबार लिया है, आपके इस उपकारको जीवन पर्य्यन्त न भूलूंगा। तब महाराणी बोली आपको भी धन्य है जो आप

पुनः धर्ममें सावधानहो गएहैं इसके पश्चात् महारानी ने ब्रह्मचारी को नमस्कार किया और अपने महलों में परतकर चली गई ।

यह दृष्टान्त सुनाकर श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि आयि श्रोताजनो ! अब आप समझ गए होंगे कि पांच महां व्रतों में से चौथा महा व्रत अर्थात् ब्रह्मचर्य्यका पालना कहां तक दुष्करहै ।

व्याख्यान अमृतसर नं० ५ ।

पांचवें बोलसे आठवें तकका वर्णन ।

पांचवें बोलमें श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि छे ६ कायामेसे वायुकायाकी दयाका पालनकरना अतिदुर्लभहै फिर कहा कि पहली कायाका नाम पृथ्वीकायाहै अर्थात् ऐसेजीवहैं-किजो कर्मानुसार स्थावरकाया योनिभोगतेहैं जिनकी देह यह सब-प्रकारकीपृथ्वी अर्थात् मट्टी होतीहै) (२) ऐसेही अपकाया (सब प्रकारका जल) (३) तेयुकाया (सब प्रकारका अग्नि) (४) वायुकाया (सब प्रकार के वायु) (५) वनस्पतिकाया (सबप्रकारके हरे शाकपात आदि उद्भिज) फिर आपने कहा कि यह पांचों स्थावर काया में एकेन्द्रिय जीव

होतेहैं अर्थात् वस्तुतः ज्ञान इन्द्रियां पांच होती हैं (१) श्रोत्र इन्द्रिय (कान) (२) चक्षु इन्द्रिय (आंख) (३) घ्राण इन्द्रिय (नासिका) (४) रस इन्द्रिय (जिह्वा) (५) स्पर्श इन्द्रिय (शरीर) अर्थात् जिनके केवल शरीरही होताहै कान, आंख, नाक, मुंह नहीं होता जैसे मट्टी, जल, अग्नि, वायु, सब्जी यह पांचो उपरोक्त स्थावर काया होतेहैं और छटीकायाका नाम तर्स काया अर्थात् जंगम काया (चलने फिरने वाले जन्तु) केहेहैं अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरेन्द्रिय पंचेन्द्रिय। द्वीन्द्रिय जीव उसको कहतेहैं जिसके केवल मुख और शरीरही होताहै अर्थात् कृमि गण्डूया जलौका (जोक) आदि, त्रीन्द्रिय उसको कहते हैं जिसके देह मुख और नासिका हो अर्थात् च्यूंटी, कुंथु, खटमल, चिचड़ी, जूका, कान खजूरा आदि, चतुरेन्द्रिय उसको कहते हैं जिसके शरीर मुख नासिका और नेत्र होतेहैं जैसे मक्खी मच्छर ततैया बिच्छु आदि, पंचेन्द्रिय जीव उसको कहते हैं जिसके पांचों इन्द्रियां अर्थात् शरीर, मुख, नासिका आंख और कर्ण हों यथा जलचर अर्थात् कच्छ मच्छ मण्डूक आदि, स्थलचर पशु गौ भैंस घोड़ा हाथी ऊंट आदि, नभचर पक्षि अर्थात्

शुक, सारिका, काक, कपोत आदि, -इनके अतिरिक्त नारकी मनुष्य और देवता भी पंचेन्द्रिय है--फिर आपने कहा कि इन पूर्वोक्त छे कायामे से वायुकाया की दया (रक्षा) का करना कोई स्थान खाली न होने से व दृष्टि गोचर न होनेसे अति दुर्लभ है ।

(६) छठे वोलमें आपने कहा कि पांच सुमति-ओंमें से भाषा सुमतिका पालन करना अति दुर्लभ है ।

(७) सातवें वोलमें कहा कि शक्तिके होते हुए क्षमा करना अतिदुर्लभ है ।

(८) आठवें वोलमे कहा कि इन्द्रियोंके भोग मिलते हुए त्याग करना अति दुर्लभ है । इन ८ आठों वोलों (वातो) का व्याख्यान करके आपने यह भी कहा कि जो दुर्लभ कार्य्यको करते हैं वही धार्मिक सुपात्र शूरवीर स्त्रियें व पुरुष होते हैं ।

यथा सूत्र दसवै कालिक अध्ययन ३ गाथा १४ वीं—

दुक्कराइं करित्ताणं, दुस्सहाइं सहेतुय !
केइत्थ देव लोएसु, केइसिज्झंति नीरया ॥१४॥

अर्थ—जो दुष्कर है करना अर्थात् तपस्या आदिक जिसको जो करते हैं, जो दुष्कर है सहना अर्थात् कटुवचन आदि जिसको जो सहते है ऐसे

शूर मनुष्य कई स्वर्गमें उत्पन्न होते हैं और कई कर्म्म रजसे रहित होकर मोक्ष हो जाते हैं इसलिए जो पुरुष व स्त्रियां मोक्ष होना चाहें तो उपरोक्त धर्म में अवश्य उद्यम करें यही हमारी शिक्षाका परमार्थ है।

जब श्रोता जनोंने आपके यह पवित्र उपदेश सुने तो वहां के लोग गद्गद प्रसन्न होकर आपकी प्रशंसा करने लगे और बहुतों के हृदय स्थलमें सत्य धर्म अंकुर उत्पन्न हुए।
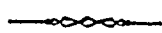
हठ धर्मियों का सुमार्ग से गिराने का प्रयत्न।

पाठक ? यह बात भी वर्णनीय है कि, जब श्री महासती पार्वती जी महाराज के प्रभावशाली व्याख्यानों के दीपकसे श्रोताजनों के हृदयोंमें सत्यासत्य पदार्थों की परीक्षा करनेके लिए पर्य्याप्त प्रकाश होगया और आपके ज्ञान व वैराग्य भरे उपदेशों की महिमा अनेक ब्राह्मण व क्षत्रिय भी आपस में अपने संबंधी और मित्रों के साथ करते हुए जैन मुनियों की साधना और उनके तप जप संयम की प्रशंसा करने लगे तो चाहे कोई कैसा ही भला कर्म क्यों न करे परन्तु सबकी सम्मति एक नहीं हो सकती,

जैसे सूर्य के प्रकाश को न चाहने वाले भी कई एक जीव होते हैं, इसी प्रकार कुछ हठधर्मी लोक यूं कहने लगे कि अजी आप नहीं जानते हैं, हमको तो जैनके साधुओं के दर्शन तक करना भी मना है तो फिर यह कैसे हो सकता है कि उनका व्याख्यान सुना जावे, यदि तुम इन के शास्त्र सुनोगे तो सम्भव है कि तुम जैन मतको अंगीकार भी करलो, फिर तो तुम्हारा जन्म ही पलट जायगा अर्थात् तुम वर्ण संकर हो जाओगे जिसका परिणाम यह होगा कि तुम जातिसे निकाल दिए जाओगे।

इस पर श्रोताजन बोले सुनो भाईयो हम लोग माई पार्वतीजी देवी का व्याख्यान कई दिनसे सुन रहे हैं और हमने उनसे कई एक नियम भी किए हैं परन्तु ऐसा करने पर न तो हमारा जन्म पलटा है और नां ही हम वर्ण संकर हुए हैं आप ही कहें कि क्या हम मनुष्य से पशु हो गए हैं अथवा आर्य (हिन्दु) से अनार्य (मुस्लमान) होगए हैं अर्थात् हमारा क्या विगड़ गया है, हां यदि सच पूछते हो तो हमारा पहले की अपेक्षा सुधार अवश्य हुआ है अर्थात् पहले हम मांसाहारी थे मद्यपान करते थे वेश्या गमनादि कुकर्मों से भी घृणा नहीं करते

थे झूठी साक्षिको यद्यपि बुरा समझते थे परंतु नियम न था माता पिता की सेवा भक्ति करना तो एक ओर रहा उल्टा उनसे झगड़ा करते थे परन्तु जिस दिनसे हमारे हृदय में जैन वाणीके दीपकका कुछ प्रकाश हुआ है उस दिन से हमारे हृदय ऐसे अकार्य्यों से घृणा करने लग गए हैं ऐसे कर्म करने से हृदय धड़कता है अब आप स्वयमेव पक्षपातको छोड़ कर विचार दृष्टि से देख कर वतलाएं कि जो इन उपरोक्त कर्म्मोंके करने वाले मनुष्य हों उनको जातिसे बहिष्कृत (बाहर) करना उचित है व हमको ।

अस्तु कुछ पर्वाह नहीं यदि तुम लोग पक्षपात की मदिरामें मतवाले होकर हमको अपनी जातिसे वहिष्कृत भी कर दोगे तौ भी हमारी कोई हानि न होगी हम अन्य सदाचारियोंसे बर्ताव कर लेंगे ।

जैनधर्मके महत्वपर मिथ्यामतियोंके विचार

जब अमृतसर के ब्राह्मण और क्षत्रियों में परस्पर झगड़ा होने लगा तो वे श्रोता लोक निन्दा करने वालों में से कई मनुष्यों को साथ लेकर श्री महासती पार्वतीजी महाराजकी सेवामें आए और आपके चरणोंमें उन्होंने निम्नलिखित चार प्रश्न किए—

१ प्रश्न—एक मनुष्यने यह कहा, अजी जैनियोंमें और तो सब बातें अच्छी हैं परन्तु यह लोग स्नान नहींकरते जो स्नानधर्म स्वर्ग और मोक्षका देनेवाला है जबवही नहीं तो शेष क्रिया शुद्ध कैसेहो सकतीहैं।

२ प्रश्न—किसी पुरुषने यह कहा कि हमारे शंकराचार्य्यने जैनियोंके दर्शन करनेका निषेध किया है।

३ प्रश्न—कोई पुरुष यूं बोला, अजी कई ब्राह्मण लोग हम को यह कहते हैं कि जैनी लोग विवाहके अवसरपर आटेकी गौबनाकर उसका वधकरते हैं।

४ प्रश्न—किसी ने ऐसा कहा अजी जैनियों की निन्दा तो हमारे गुरु नानकदेवजी ने भी लिखी है।

श्री महासती पार्वती जी महाराजने इन चारो प्रश्नोंको सुन कर और श्रोता जनोंको उत्तरके लिए उत्सुक पाकर चुप रहना अनुचित समझ कर निम्न लिखित उत्तर दिया—

अरे भाइयो! इस गड़बड़का कारण केवल द्वेष भाव ही है और अधिकतर तो जबसे जैन मुनियों की मण्डली मे से पृथक् होकर श्रीमान् जीवनरामजी महाराज के चेले आत्मारामजी ने पीताम्बर मतको धारण किया है तबसे ही उन्होंने

और उनके सेवकोंने जैन मुनियों को द्वेष भावसे ढूंढिये नाम कह कर निन्दा करना और निन्दा का सर्व साधारणमें सम्यक्त्व शल्योद्धरादि पुस्तकों द्वारा प्रचार करना मुख्य धर्म मान लिया ॥

आत्मारामजी संवेगीके द्वेषभावका कारण

पाठक! आत्माराजी सम्वेगीको जैन मुनियों से द्वेष क्यों था इसका भी थोड़ासा उल्लेख कर देना समुचित समझता हूं, मोहनलाल श्रावक अमृतसर निवासीने अपनी बनाई हुई "दुर्वादी मुखचपेटिका" नामक पुस्तक जो सं० १९४९ में ऐंग्लो संस्कृत यंत्रालय अनारकली लाहौरमें ला० रामचन्द मैनेजरके प्रबंधसे छपी थी जो जैन सभा अमृतसरसे मिल सकती है कुछ तो उसमेंसे और कुछ जैन जातिके बड़े बूढ़ों से सुनने में आए हैं उनमेंसे कई नोट लिखता हूं।

स्वामी आत्मारामजी पहले श्री श्री श्री जीवन रामजी महाराजके चेले थे परन्तु गुरुमहाराजने उनको विमुख हुआ जान कर अलग कर दिया तब पंचनद (पंजाब) देशके समग्र जनपदों (ज़िलों) को छोड़ कर आत्मारामजी आगरे पहुंचे और

स० १९२० में वहां पर जैन मुनि श्री स्वामी रत्नचन्दजी महाराजकी शरणली और उनसे जैन सूत्रों के पढनेकी प्रार्थना की । तव श्री स्वामी रत्नचंद जी महाराजने उनकी विनतीको स्वीकार करके जैनके कई सूत्र पढ़ा दिए परन्तु जैसा जिसका स्वभाव होता है वह वैसाही काम करता है सुतरां आत्मारामजी ने स्वामी रत्नचन्दजी के उपकारका वदला यह दिया कि स्वामीजी महाराजके ही कई क्षेत्रोंके सेवकोंको फुसलाना (वहकाना) आरम्भ कर दिया और कई एक भोले भाले सेवकों की श्रद्धा को डिगा ही दिया, उनकी इस चालने अन्त मे वहांसे भी निरादर कराया और इसके अतिरिक्त और भी कई विशेष कारणोंसे आत्मारामजी को विवश होकर पंचनद (पंजाव) मे ही वापिस आना पड़ा । श्री श्री श्री स्वामी जीवनरामजी महाराज से तो पहले ही विमुख होकर गए थे इस लिए उनकी शरण में तो आही नही सकते थे परन्तु आत्मारामजी ने श्री १००८ जैनाचार्य्य पूज श्री अमरसिहजी महाराजके चरणोकी शरण ली । वे वड़े दयालु थे उन्होंने उसको आदर देकर अपने सम्मुख उनके व्याख्यान करवाए और अपने

शिष्यों को भी आत्मारामजीके साथ विचरने की आज्ञा देते रहे परन्तु शोक! आत्मारामजी ने इस का बदला भी अपने स्वभावके अनुसार ही दिया अर्थात् पूज अमरसिंहजी महाराज के टोलेमें ही भेद डाला अर्थात् पूजजीके बिशनचंद आदिक ११ चेलोंको अपने फेर में लाकर बहका लिया।

नोट

इसका प्रमाण वल्लभ विजय जी कृत आत्माराम के जीवन चरित्र में उल्लिखित है जो आत्मारामजी कृत तत्वनिर्णय प्रासाद ग्रंथ प्रथमावृत्ति का छपा हुआ है उसके आरम्भ में लिखा है कि किस प्रकार बिशनचंद आदि साधु बहकाए गए थे और उसी जीवन चरित्र के पृष्ट ३४ से ३७ तक स्वयम् वल्लभ विजय जी लिखते हैं कि आत्माराम जी के पिता गणेशदास जी डाका मारते रहे और उसका फल यह हुआ कि दस वर्ष कारावास में रहे इत्यादि॥

तो श्री पूजजी महाराज ने विचारा कि अक्सर पिता पर पुत्रकी बुद्धि होती है कि जिसने भलाई के बदले में हमको इतनी क्षति पहुंचाई। इस लिये पूजजी महाराजसे भी निरादर ही पाया, तब दक्खन देश में चले गये जहां मूर्ति पूजक जैनियों के बहुतसे

मन्दिर हैं। अन्तमें उन्होने अपने उस विचारको पूरा कर लिया जो आरम्भसे ही उनके मनमें घर कर चुका था अर्थात् सं० १९३२ व १९३३ मे मुख वस्त्रिकाको जो जैन मुनियों का चिन्ह है उतार दिया। जो श्वेताम्वरी मत अर्थात् श्वेत वस्त्र धारने वाला मत है उससे विरुद्ध पीताम्वर अर्थात् पीले वस्त्र धारणकर लिए और उसी समयसे आत्मारामजीने द्वेष भावके कारण जैन मुनियोकी ढूंढिये नामसे निन्दा करना कर्त्तव्य समझ लिया।

पाठक! भली भान्ति समझ गए होंगे कि आत्मानन्दी क्यो जैन मुनियोंसे द्वेष भाव रखते हैं।

प्रथम प्रश्नका उत्तर स्नानके विषय में

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने पहले प्रश्नकेउत्तर मे कहा कि उनलोगों को उचित है कि वे पहले इन्हीं आत्मानन्दी साधुओं और श्रावकोंसे पूछे कि उनके पीताम्वरी साधु स्वयं स्नान करतेहैं व नहीं यदि करतेहैं तो किस सूत्रके अनुसार करते है, यदि नहीं करते है तो वे अपने आपको किस विसात पर सुचे (स्वच्छ) मानते हैं। फिर श्री महासतीजी महाराजने कहा कि हमारे निशीथ" "सूत्रके चतुर्थ उद्देसामें लिखा है कि

साधुके शरीर व वस्त्रपर विष्टा राध अथवा रक्त लगजाय तो उसे शुद्ध किये विना शास्त्र पढ़े तो दण्ड आताहै इत्यादि, परन्तु स्नान के विषयमें आपने कहा सो जैन गृहस्थ तो स्नान करते ही हैं किन्तु ब्रह्मचारियों और साधुओंके लिए स्नानका तो शृंगारका कारण होने से प्रत्येक शास्त्रों में निषेध है। यथा महा भारत शान्ति पर्व ब्रह्मचर्य्यके अधिकारमें ऐसे श्लोक सुने जाते हैं—

सुख शय्याशंन वस्त्रं, ताम्बूलं स्नान मर्दनम्।
दन्त काष्ठं सुगन्धं च, ब्रह्मचर्य्यस्य दूषणम्॥

अर्थ—(१) सुख शय्या (२) सब रस भोजन (३) बहुत महीन वस्त्र (४) ताम्बूल चर्वण (५) स्नान (६) मालिश आदि (७) दांतोंको काष्ठसे घिसना अर्थात् दातन करना (८) इतर आदिक सुगंधित द्रव्य लगाना। इन आठ कार्य्योंका करना ब्रह्मचारियोंके लिए दोष है और ऐसे ही कई ग्रंथ कर्ता लिखते हैं कि मनुस्मृति तथा गोतम स्मृति आदिक में ब्रह्मचारियोंके प्रति अधो लिखित २३ कार्य्य निषेध हैं। (१) मधु (२) मांस (३) सुगन्धि (४) पुष्पमाला (५) दिनको सोना (६) नेत्रोंमें अंजन आंजना (७) उबटना करना (८) सवारी घोड़ा, ऊंट,

हाथी, वग्घी, रेल आदि पर चढना (९) जूता पहनना (१०) छत्री लगाना (११) काम (मैथुन करना) (१२) क्रोध (१३) लोभ (१४) मोह (१५) वाजा वजाना (१६) स्नान करना (१७) दातन करना (१८) हर्ष (१९) नृत्य (२०) गान (२१) निन्दा करना (२२) मद्य पान (२३) भय। पाठक! देखो नं० १६वां स्नानका है जो ब्रह्मचारियों के लिए वर्जित हैं। इसी प्रकार जैन मूलसूत्र दशवैकलिक अध्ययन ३ में ५२ कार्य्य ब्रह्मचारी (साधुओं) के लिए वर्जित कहे हैं जिसमें स्नानका स्पष्ट तया निषेध किया है देखो श्लोक नं० २ उद्देसियं, कियगडं, नियागं, अभिहडाणिय, राइभत्ते, सिणाणेय, गंध, मल्लेय, वीयणे २

अर्थ—(१) साधुके नामसे भोजन वनाया जावे (२) साधुके लिए पदार्थ मोल लिया जावे (३) साधुको न्योताका भोजन अथवा प्रति दिन किसी विशेष गृहका भोजन लेना (४) मकान पर आया हुआ भोजन लेना (५) रात्रिमें भोजन करना (६) स्नान करना (७) सुगन्धि लगाना (८) पुष्प माला आदिका धारण करना (९) पंखा करना यह साधुओं के लिये दूषण है। इसी प्रकार और भी दूषण

बतलाए हैं विस्तृत् भयसे नहीं लिखे गए, जिनका विस्तृत वर्णन इसी सूत्र के इसी अध्ययन की आठवीं गाथा तक देख सकते हैं अर्थात् यहां भी छेवें बोल में साधुको स्नान निषेध है।

आत्मारामजी संवेगी की सम्मति।

फिर श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि, स्वयं आत्मारामजी संवेगी भी अपने बनाए जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ जो कि सं० १९४० वि० का छपा हुआ है पृष्ठ १०२ पर लिखते हैं कि, ऐसी अशुचि देहको महा मोहांध पुरुष शुचि मानते हैं तथा जलके १०० घड़ोंसे स्नान करके सुगन्धि पुष्प कस्तुरी आदि पदार्थोंसे बाहर की त्वचा को कितने काल ताईं मुग्ध जीव शुचि सुगंधित करते हैं परंतु विष्टाका कोठा मध्य भागमें कैसे शुचि होय इत्यर्थः

श्री गुरु नानक देवजी की सम्मति।

महासती पार्वतीजी महाराजने गुरु नानक देव जी की सम्मति वतलाई कि, उन्होंने भी स्नान करने को शुचि नहीं माना यथा—शब्द

सुच्चे सो न नानका बैठे पिण्डा धो।
सुच्चे सो ही नानका जिस मन वसिया सो॥

और ऐसा भी कहा है—
जलके मंजनजे गत होए मेंडक नित नित न्हावें।
जैसे मेडक तैसे वो नर फिर फिर जोनि पावें॥

कबीर साहबकी सम्मति।

इसके अनन्तर श्री महासती श्रीपार्वतीजी महाराजने कबीरजी की सम्मति बतलाई कि कबीर जीने स्नानको कैसा माना है—
कबीरा चल्ली न्हावणें दिल खोटे मन चोर,
बाहरों धोती तूंबड़ी अन्दरों विसियर घोर।
साधु भले विन न्हातियां चोरसो चोरो चोर,
साहबकी कर बंदगी तू भी साहब हो॥

श्री महासती श्रीमती पार्वतीजी महाराजने स्नानके विषयमें जब यह सिद्ध कर दिया कि ब्रह्मचारियों तथा साधुओंके लिए स्नान करना केवल जैन मतमें ही वर्जित नहीं है प्रत्युत अन्य मतवाले भी इसमे सहमतहै अस्तु शास्त्रकार दो प्रकारके स्नान वर्णन करतेहैं जिनका उल्लेख नीचे कियागया है–दर्व (बाह्य) स्नान और भाव (अभ्यन्तर स्नान) जैसे एक पुरुष निद्रामे सोया पड़ाहै उसको एक मच्छरने काटा तो उसने निद्रामें ही पांओंसे पाओं

मल डाला तो वह मच्छर मरगया और उसका रक्त पाओंमें लगगया। एक और दूसरे मनुष्यको मच्छर ने नींदमें काटा तो उसने जागकर मारनेके विचार के बिना पाओंसे पाओं मलडाला ऐसे ही तीसरेको मच्छरने काटा तो उसने जागकर मच्छरको क्रोधसे दांत पीसकर मसलडाला अब प्रातःकाल होने पर जो लोग कहते हैं कि स्नानकरनेसे हमारे पाप दूर हो जातेहैं सो यह उनकी भूलहै, हां वाह्य स्नानसे देहके ऊपरका मैल उतरजाताहै परन्तु अभ्यन्तर मैल अर्थात् किए हुए पाप कर्म कदापि दूर न ही होते जैसे पहले मनुष्यसे नीदमें अनजाने मच्छर मारा गया था जिसको अनादृष्ट पाप भी कहतेहैं उसका वाह्य स्नान करनेसे जो मच्छरका रक्तलग गया था वह उतरगया परन्तु अज्ञानमें मच्छरके प्राणनाश होनेसे जो हिंसाका दोष अर्थात् अनादृष्ट पाप लगा था वह नहीं उतरा, वह कैसे उतरताहै वह अंतरंग स्नान अर्थात् परमेश्वरके नाम लेनेसे अर्थात् जप करनेसे उतरताहै जिसको स्वाध्याय भी कहतेहैं। दूसरे मनुष्यने जागृत होकर बिना विचारे मच्छर मारडाला था यह पाप नाम लेनेसे नहीं उतरता यह पाप दान देनेसे उतरताहै, तीसरे

मनुष्यने जान बूझकर तममें अर्थात् क्रोधमें भरकर दांतपीस कर मच्छरको मार डाला यह पाप दान देनेसे भी नहीं उतरेगा यह पाप तपस्या करनेसे उतरताहै यदि उपरोक्त तीनों धर्मोंमेसे एक धर्म भी न किया जावेतो फिर इन पापोंका फल परलोक अर्थात् नीच गतिमें भोगना पड़ेगा यथा दृष्टान्त—

किसी मनुष्यका रुमाल भूमि पर गिरपड़ा उसको धूलिलग गई तो झाड़नेसे साफ होगया जैसा कि प्रथम मनुष्यका पाप था। यदि गीला रुमाल भूमि पर गिर पड़े तो झाड़नेसे धूली नही उतर सकसी वह धूपमे सुखाकर मल डालनेसे उतरतीहै जैसाकि दूसरे मनुष्यका पापथा। यदि चिकना रुमाल भूमि परपड़े तो उसकी धूली धूपमे सुखाने व मलनेसे भी नहीं उतरती वह सज्जी सावन लगाने व खुम्भ पर चढ़ानेसे और शिलापर पछाड़नेसे उतरतीहै जैसाकि तीसरे मनुष्यका पापथा अर्थात् किसीसे हिंसा आदि का पाप अज्ञानमें होजाय तो नं० १ सूखे रुमालकी न्याईं मिच्छामि दुक्कड़ं ... के देनेसे अर्थात् भूल माननेसे व नाम लेनेसे उतर जाताहै। जो जानकर व्यवहार मात्रमें अर्थात् साधारणतया पाप किया जाय तो नं० २ गीले रुमालकी न्याईं दान देनेसे

व कुछ दण्ड प्रायश्चित्त लेनेसे उतर जाताहै और जो पाप जीव हिंसा आदि जानबूझकर कामके वश अथवा क्रोधके वश व जिह्वाके स्वाद आदि के लोभके वशमें किया जाय तो वह नं० ३ चिकने रुमालकी न्याईं कठिन तपस्या करनेसे और संयम व ब्रह्मचर्य्य आदि कठिन साधनाओंसे उतरताहै अन्यथा परलोकमें कई प्रकारके दुःखोंसे भोगना पड़ता है। इन बातोंको सुनकर लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और आपकी अतिशय प्रशंसा करने लगे और निन्दक लोक निरुत्तर होकर चुप कर गए।

द्वितीयप्रश्नकेउत्तरमें

जैनमुनिका ब्राह्मणोंसे शास्त्रार्थ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने पहले प्रश्नका संतोषजनक उत्तर देकर दूसरे प्रश्नका उत्तर देना अधोलिखित प्रारम्भ किया—

आपने कहा यह जो दूसरा भाई कहताहै कि शंकराचार्य्यजी कह गएहैं कि जैनियोंके दर्शन न करने चाहिए इसका कारण भी द्वेष ही है। इस समय मुझे श्री स्वामी रत्नचन्दजी महाराजकी एक पुरानी बात स्मरण हुई है वह यह है कि लगभग

सं० १९१८ वि० में एक दिन स्वामी रत्नचंदजी महाराज जो बहुधा आगरे में रहा करते थे, नित्य नियम के पश्चात् किले के समीपवर्ती मार्गसे होकर यमुना तीरपर शौचके लिए जा रहे थे, इतने में एक ब्राह्मण आता हुआ, मार्ग में मिला जिसने स्वामीजीको देखकर सिर हिलाया। स्वामीजी बोले क्यों सिर क्यों हिलाया ब्राह्मण बोला इस लिए कि तुम्हारे दर्शनसे नरक मिलता है। स्वामी जी मुस्कराकर भला तुम्हारे दर्शन से क्या मिलता है। ब्राह्मण हमारे...हमारे दर्शनसे स्वर्ग मिलता है।

स्वामीजी—वाह वाह फिर हम तो बड़े लाभ में रहे क्योंकि तेरे दर्शन हमको हुए हैं हमको तो स्वर्ग मिलेगा और तुमको नरक.. ब्राह्मण लज्जित होकर और कुछ चुपसा रहकर बोलाकि अजी हमारे शंकराचार्य्य शंकर दिग्विजय में शिक्षा दे गए हैं कि, जैनियों के दर्शन न करने चाहिए, ऐसा श्लोक भी लिखा है—

न पठेद्यावनीं भाषां न गच्छेज्जैन मन्दिरम्।
हस्तिना ताड्यमानोऽपि प्राणैःकण्ठगतैरपि॥

अर्थ—मत पढ़ना यावनी भाषा को (म्लेच्छोंकी भाषा अर्बी फारसी आदिक)को और जो हाथी मारने

को आता हो उससे डरकर भी प्राण कंठमें आजावें तो भी जैन मन्दिर में मत जाना इत्यादि.

स्वामीजी—जैनियोंने ऐसी क्या बुराई की थी कि जिसके कारण शंकराचार्य्यजी ने ऐसा लिखा है इस बुराई का भी तो कहीं उल्लेख किया होगा ।

ब्राह्मण—कुछ चुपकासा होकर, ऐसा लिखातो स्मर्ण नहीं है ।

स्वामी जी—क्यों यह स्मरण क्यों न रहा लो मैं स्मरण करा देता हूं, वही शंकराचार्य्य जो लगभग ७०० संवत् विक्रमी में हुए हैं जो बाल्यावस्था में संन्यासी बने थे और ३२ वर्षकी आयुमें परलोक सिधार गए थे परन्तु आनन्दगिरिकृत शंकर दिग्विजयके पढ़नेसे यह सिद्ध होताहै कि, जब शंकराचार्य मण्डुक ब्राह्मणकी स्त्री सरसवाणी (सरस्वती) से शृंगार रसकी चर्चा में निरुत्तर हो गए तो एक मृत राजाके शरीर में प्रवेश करके उसकी रानीसे नाना प्रकार के भोग करके वाममार्गी हो गए थे, सुतरां आगम प्रकाश ग्रंथ का कर्ता भी कहता है कि शंकर स्वामी शाक्त अर्थात् वाममार्गी थे जिसका प्रमाण आत्मारामजी संवेगीने भी अपने बनाए हुए

अज्ञानतिमिरभास्कर ग्रन्थ प्रथमावृति वाले में लिखा है कि शंकराचार्य्य अद्वैतवादी परमहंस थे।

अस्तु, कुछ हों परन्तु वैदिक हिंसाको अहिंसा कहते थे अर्थात् यज्ञमें वेदों के अनुकूल पशु वध करने में दोप नही है ऐसा मानते थे।

शंकराचार्य्यका बौद्धों और जैनियोंसे वर्ताव

श्रीमहासतीजी महाराजने कहा कि जैसा मनुजी ने भी मनुस्मृतिके पांचवें अध्याय के श्लोक ३९, ४०, ४१ में लिखा है जो सं० १९५० वि० में छपी और उल्लूकभट्ट विरचित अन्वार्थ वाली तृतीयावृत्ति सं० १९५९ कल्याण बंबई की छपी में देखो।

यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा।
यज्ञश्च भूत्यै सर्वस्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः॥
मधुपर्के च यज्ञे च पितृ दैवत कर्माणि।
अत्रैव पशवो हिंस्या नान्यत्रेत्यब्रवीत्मनुः॥

अर्थ—यज्ञकी शुद्धिके लिए प्रजापति अर्थात् ब्रह्मा ने आप ही पशु उत्पन्न किए हैं यज्ञ सम्पूर्ण जगतकी वृद्धिके लिए होता है इस लिये यज्ञमें पशु होम करना अवध है अर्थात् हिंसा नहीं है। "समांस मधु" अर्थात् मांस विना मधुपर्क नहीं

होता इस लिए मधुपर्क में और यज्ञ में और श्राद्ध आदि पितृ तथा देवकर्ममें पशु मारने योग्यहैं अन्यत्र नहीं मनुजीने यह कहा है। परन्तु जैन और बौद्ध इस बात को नहीं मानते हैं वह कहते हैं कि समस्त आर्य धर्म (जैन,बौध,सनातनादि) का मूल मंत्र है- "अहिंसा परमोधर्मः" तो फिर वे वेद ही क्या जिसमें पशु बध लिखा है, और वह यज्ञ ही क्या है जहां रुधिरकी नाली बहती हो, यह तो अनार्य भूमि ठहरी, किसी पण्डितने कहा भी है-यथा श्लोक-

यूपे बध्वा पशुं हत्वा कृत्वा रुधिरकर्दमम् ।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केनगम्यते ॥

अर्थ—यज्ञमें एक यूप (खम्भा) खड़ा किया जाता है जिससे पशु बांधे जाते हैं फिर वे पशु मार कर अथवा जीते ही अग्निमें डाल दिए जाते हैं और वहां रुधिर का कीच किया जाता है,यदि ऐसा करनेसे स्वर्गमें जावें तो नरकमें किस करके जा सकते हैं, इससे सिद्ध हुआ कि इस कर्मसे नरकमें ही जायंगे नतु स्वर्गमें इत्यादि-अतःइस कारणसे परस्पर विवाद था, तब शंकराचार्य्यजी की ओर कई राजे होगए, क्यों न होते उनको ऐसी शिक्षासे इस प्रकार

की स्वच्छन्दता मिल गई कि, यज्ञमें बनाए हुए मांस को खा भी लें और स्वर्ग भी मिल जाय।

यथा मनुस्मृति अध्याय ५

प्रोक्षितं भक्षयेन्मांसं ब्राह्मणानाञ्च काम्यया।
यथा विधि नियुक्तस्तु प्राणानामेव चात्यये॥

अर्थ—ब्राह्मणोकी कामना मांस भक्षणकी हो तो यज्ञ में परोक्ष विधि से अर्थात् वेद मंत्रानुसार शुद्ध करके भक्षण कर ले और श्राद्धमें मधु पर्कसे इत्यादि।

अस्तु इस पर शंकराचार्य्यने बौद्धों को कहीं तो मरवा डाला और कहींसे निकलवा दिया और जैनियोके शास्त्र कुछ फूक दिए कुछ जलमे वहा दिए इन घोर अत्याचारों के अतिरिक्त द्वेपभाव से पूर्वोक्त यह भी कह गए कि, जैनियोंके दर्शन नहीं करना, भला तुम ही वतलाओ कि इसमें जैनियों का क्या अपराध है।

जैनमुनि और ब्राह्मणके शास्त्रार्थका परिणाम

जब स्वामीजीके वचनोंसे ब्राह्मणको संतोष आगया तो वह ब्राह्मण कुछ निरुत्तरसा होकर बोला, अजी जैन मतमें त्याग वैराग्य क्षमा तपस्या

आदि व्रत तो अच्छे हैं परन्तु सरावगियों में दोष है तो एक......

स्वामी जी—अटके क्यों कहो कहो क्या दोषहै?

ब्राह्मण—यही कि, सरावगी न्हाते नहीं वैष्णव लोग न्हा लेते हैं।

स्वामीजी—बस सरावगियों के सारे गुण छोड़ कर केवल एक बाह्य वृत्ति स्नानको प्रधान रख कर वैष्णव निर्दोष बन बैठे क्या इसीका नाम पण्डिताई है अच्छा जैनियों को, गौ, समझलो जो कभी नहीं न्हाती और वैष्णवों को भैंस समझ लो जो प्रतिदिन न्हातीहै परन्तु स्मरणरहे, न न्हाने वाली गौओंका तो मूत्र भी पीकर वही वैष्णव पवित्र होना मानते हैं और नित न्हाने वाली भैंसका तो दर्शन भी अच्छा नहीं मानते। ब्राह्मणने जब यह सच्चाईसे भरी हुई वक्तृता सुनी तो निरुत्तर होगया और लज्जित सा होकर हंसकर चला गया, स्वामी जी भी अपने कार्य्यमें लग गए। फिर श्रीमहासती जी ने कहा कि हे श्रोताजनो! अब तुम आपही विचार करलो कि यह द्वेष भाव नहीं तो और क्या है, सचतो यह हैकि ऐसे पवित्र अहिंसाधर्मके पालनेवालो के कई मतमतान्तरी लोग द्वेषी हैं, क्योंकि जैनमें मद

मांसका व्यवहार सर्वथा नहीहै दयाका ही अधिकतर प्रचार है और और अनेक मतावलम्बी जो अहिंसा को परमधर्म कहते हैं परन्तु अहिसाको परमधर्म कहते हुए भी जिह्वाके वशमे होकर मदमांसाहारी वनकर हिंसासे वच नही सकते अर्थात् कोई यज्ञके छद्म(छल) से (वहानेसे) कोई पितृदानके नाम से कोई झटके के नामसे कोई हलाल के नामसे हिसाको निर्दोप कहकर उसको कर ही लेते हैं। इसलिए वे लोग स्वयं अच्छा वननेके लिए जेनियोंके दया सत्यादि महत्वके यशको न सहन करते हुए व उनके मन्तव्यो और कर्तव्यों को न जानते हुए अथवा किसी मांसाहारी हिसक के वहकाए हुए जैनको कोई नास्तिक कह देताहै कोई अनीश्वरवादी कह देताहै कि जेनी ईश्वरको नही मानते हैं और कोई कह देताहै कि जैनी न्हाते नहीं मैले रहते हैं इत्यादि यह सव पूर्वोक्त द्वेप भावका ही कारण है। किसी पण्डित ने कहा भी है—

मूर्खाणाम् पण्डिता द्वेष्याः, निर्धनानां महाधनाः।
व्रतिनः पापशीलानां, असतीनां कुलस्त्रियाः॥

अर्थ—मूर्खोंको पण्डितोंसे द्वेप होता है और निर्धनोंको धनवानोसे द्वेप होता है, पापियो को दया सत्यादि व्रतके पालने वालोसे द्वेप होता है, असती

अर्थात् व्यभिचारिणियों को कुलस्त्रियों अर्थात् सतियों से द्वेष होता है, इत्यादि ।

तृतीय मिथ्या रूप प्रश्न का उत्तर ।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने तीसरे प्रश्न के उत्तरमें कहा कि इस भाईने जो कहा था कि लोग ऐसा कहते हैं कि जैनी लोग विवाह के अवसरमें आटेकी गौ बनाकर बध करते हैं सो ऐसा कहने वालोंकी अज्ञानताहै क्योंकि, जैन ऐसा कर्म करने की कदापि आज्ञा नहीं देता ऐसा दुष्ट कर्म्म करना तो एक ओर रहा जैनी लोग तो ऐसे कर्मके नाम मात्रसे भी घृणा करते हैं । फिर श्री महासतीजी महाराजने कहा कि हां जैनी लोगोंके विवाह आदि अवसरों पर प्रायः ब्राह्मण लोग ही कार्य्य करतेहैं इसलिए जो कार्य्य उन अवसरोंपर जैनी करते होंगे वह सब ब्राह्मणोंके आदेशानुसार ही करते होंगे इस लिए यह प्रश्न ब्राह्मणोंके साथ सम्बन्ध रखताहै उन्हीं से पूछना योग्य है कि उन्होंने विवाहके समय वेदों के अनुसार क्या क्या विधियां बतलाई हैं, क्योंकि आप सब जानते हैं कि, हम जैन साधु गृहस्थोंके किसी भी संसारी कार्य्यमें सम्मिलित नहीं होते हैं

प्रत्युत विवाह वाले घरमें भिक्षा लेने भी नहीं जाते हैं इसलिए विवाहकी रीतिको ब्राह्मणही जानते होगे। फिर श्रीमहासतीजी महाराजने यह भी कहा कि इस बातको तो हम भी भली भांति स्वीकार करते हैं कि इस दुष्ट कर्म्मको जैनी लोग किसीके बहकाने पर भी नहीं करते होंगे क्योंकि जैनसूत्र तो एक मात्र दयासे परिपूर्ण हैं तो फिर उनको माननेवाले ऐसा अकार्य्य कर ही नही सकते। हे भाई ! जो लोग ऐसा कहकर तुमको भ्रम जालमें फंसाते हैं उन्हींके धर्म शास्त्र मनुस्मृत्यादि मे ऐसे श्लोकहै, देखो मनुस्मृति अध्याय ५ श्लोक ३७

कुर्य्याद् घृत पशुंसंगे, कुर्य्यात् पिष्टपशुं तथा।
नत्वेवतु वृथा हन्तु, पशु मिच्छेत् कदाचन ॥३७॥

अर्थ—जो मांस खानेकी बहुतही इच्छा हो तो घीका अथवा चूनका (आटेका) पशु बनाकरखाएं और देवताओंके निमित्तके बिना कभी पशुओंके मारने की इच्छा न करें।

अब सोचना चाहिए कि यहां पशु शब्दमे सभी पशु आगए क्योंकि यहां पर किसी विशेष पशुका नाम तो लिखा ही नहीं, यथा बकरा, बैल, गौ, घोड़ा इत्यादि सो अपने शास्त्रोंके ऐसे लिखने

पर विचार न करते हुए दयावान मनुष्योंके सिर दोष धरने, यह द्वेषभाव नहीं तो और क्या है। अपितु इस द्वेषभाव (ईर्षा) के लक्षणही हैं कि विना अपराधीको अपराधी बनाकर मरवादेना व निकलवा देना सच्चेको झूठा बना देना यथा सूत्र निरावलिका कौनक राजाकी राणीने अपने देवर "वहल कुमार" को अथवा "पाण्डव-चरित्र" में कौरवोंने पाण्डवों को इत्यादि—

चतुर्थ निन्दारूप प्रश्नका उत्तर।

चतुर्थ प्रश्नके उत्तरमें श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि यह जो चौथा भाई ऐसा कहताहै कि गुरु नानकदेवजीने भी ग्रन्थ साहिबमें जैनियों की निन्दा लिखी है-सो सुनिये कि गुरु नानकदेवजी ने जैनमार्गकी निन्दाकीहै कि प्रशंसा अर्थात् न जाने किन सर्वाङ्गिओंके विषयमें ऐसा आदि ग्रन्थ साहिब माझा दीवार श्लोक महल्ला पहिलामें लिखाहै कि—

"सिर खुहाएं पिएं मलवानी जूठा मंग मंग खाएं।
फोलफदीलतमूह लैन भड़ासां पानी देख संगाएं॥
भेडावागूंसिर खुहाएं भरी हत्थ सुहाई।
मां पिऊ किरत गुआएं टबर रोवन ढाई॥

ओन्हां पिण्ड न पतल किरया न दीवा मोए किथाई।
अठ सठ तीरथ देन न ढोई ब्राह्मण अन्न न खाई ॥
सदा कुचील रहें दिनरातीं मत्थे टिक्का नाही"।

इत्यादि—श्रीमहासती जीने कहा कि यह कहना एकान्त (केवल) वेसमझी का है कि गुरु नानकदेवजीने यह जैन मतके विषयमें लिखाहै क्योंकि इसमें जैनमतका तो कहीं नामही नहीं है किन्तु जब जैन ऐसे कर्मही नहीं करता तो वे जैन का नाम लिखतेही कैसे-प्रत्युत (वल्कि) गुरु नानकदेवजीने जैनमतकी वड़ाई तो अवश्य लिखीहै,देखो सुखमनी साहिव अष्टपदी—

"न्योली कर्म करें वहु आसन।
जैनमार्ग संयम अति साधन" ॥

अर्थात् जैनमार्गमें संयमके वहुत ही उत्तम और कठिन साधन हैं, जब श्रीमहासतीजी महाराजने यह सिद्ध कर दिया कि गुरु नानकदेवजी ऐसे मनुष्य न थे कि वे जैनधर्म जैसे सर्व हितकारी पवित्र धर्मकी निन्दा करते प्रत्युत उनके वाक्यों ने यह सिद्ध कर दिया कि उन्होंने जैनधर्मकी साधना को सर्वोत्कृष्ट (अतिकठिन) माना है, फिर श्री महासती पार्वतीजी महाराने कहा कि इसको जो

निंदा पर्क लगाया गया है कि "मत्थे टिका नहीं" तो क्या सिक्ख लोग मस्तक पर टिका लगाते हैं हमने तो सिक्खों को टिका कभी नहीं देखा है। फिर आपने कहा कि इसको जो निन्दा पर्क समझा गया है कि "ओन्हां पिण्ड न पत्तल किरिया न दीवा मुए किथाओं पाई, अठ सठ तीरथ देन न ढोई ब्राह्मण अन्न न खाई।"

इस पर भी विचार करके देखो कि कैसी भूलकी बात है कि यहां पर तो ऐसे लिखा है, और फिर इन्हीं बातों का गुरु नानकदेवजी ने स्वयं खण्डन भी किया है, देखो जन्मसाखी गुरु नानक साहब उर्दु में अमृतसर प्रैस में छपी जिसका पृष्ट २०७, जब गुरुजी ज्योति जोत समावन लगे तब संगत ने पूछा कि आपकी दीवा बत्ती आदि क्या करें, तब गुरु जी ने कहा, राग आसा—

"दीवा मेरा एक नाम दुःख विच्च पाया तेल।
उन चानन ओह सुक्खिया चौंका जमसों मेल॥
रहाओ" पिण्डपत्तल मेरीकेसों किरिया सच्चनाम करतार
ऐथे ओथे अग्गे पिछे एह मेरा आधार॥
गंग बनारस सिफ्त तुम्हारी न्हावे आतमराम।
सांचा न्हावण तां थिए जहां अह निस लागो भाव"॥

श्रीमहासतीजी महाराज ने कहा कि, देखो बावा नानक साहव जी ने क्या अच्छा कहा है कि, मेरी क्रिया पिण्ड पत्तल आदि केसी हे, इस लोक और परलोकमें सव स्थानोमें जो ईश्वर का सच्चा नाम है इसीका मुझे आधार हे, (ईश्वर परमात्मा का जो गुण गाता है यही गंगा वनारस तीर्थ है) इसमें आत्मराम न्हावे तव सच्चा स्नान होता हे कि जहां दिन रात यही भाव लगे हों। अव देखिए कि, पहिले तो इन्हीं उपरोक्त कर्मोंका न करना निन्दा में दाखल किया है और अव स्वयमेव इनका न करना स्वीकार किया है।

अव आप श्रोताजन स्वयं विचारलें कि यह सव वातें कहां तक ठीक हें और यह जो निन्दा में दाखिल किया हे कि ब्राह्मण अन्न न खाएं, सो जेनीयोंके हां तो ब्राह्मण अन्न प्रसन्न होकर खाते हें वरंच सिक्खोंके हां ब्राह्मणोंको अन्न खाते कम सुना हे वे अपने सिक्खोंको ही खिलाते हे।

सो अव किस प्रकार माना जावे कि, गुरु नानकदेवजी ने ऐसा कहा हे या वेसा कहा है।

जव श्रीमहासतीजी महाराज ने इन चारों ही प्रश्नोंके ऐसे संतोषजनक उत्तर देदिए तो वे

लोग अत्यन्त प्रसन्न हुए और जो सत्यधर्मके जिज्ञासु थे उन्होंने सत्यासत्य को परख कर असत्य मार्गको त्याग सच्चे मार्ग को ग्रहण कर लिया ।
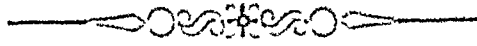
निन्दा के कड़वे फल ।

पाठक ! यह कितने शोककी बात है कि, आजकल ऐसे प्रकाश के समय में भी जब कि नगर नगर में पाठशालाएं और स्कूल खुले हुए हैं और छापेखाने चल रहे हैं जिनके प्रताप से हरएक मतके शास्त्र छपके प्रकट हो गये हैं तथापि लोग उन मिथ्या शंकाओं पर विचार नहीं करते जो अदूरदर्शी और पक्षपाती लोगोंकी ओर से जैनधर्म के विरुद्ध केवल द्वेषके कारण फैलाए गए हैं जैसेकि पीछे चार प्रश्नों के उत्तरमें उल्लेख किया गया है, सो बहुत से झूठे कलंक तो मूर्ति पूजकोंने द्वेषसे लगाए हैं और बहुत से वैदिक और पौराणिक मत वालोंने केवल इस अभिप्राय से लगाए हैं कि लोगोंको जैन मुनियोंके पवित्र उपदेश सुननेका शुभ अवसरही न मिल सके जिससे वे इस योग्य न हो जाएं कि सत्यासत्य की परीक्षा कर सकें। क्योंकि यदि वे जैन वाणीको सुनेंगे तो वे मूर्ति पूजन और श्राद्ध आदि को अज्ञान क्रिया

समझ कर छोड़ देंगे जिससे उनकी आजीविका में हानि होगी, इत्यादि।

परन्तु प्रकृति भी एक शक्ति है उसका नियम सर्वव्यापकहै अर्थात् ज्ञानामृतकेपिपासु सत्यका निश्चय करनेवाले पुरुषभी प्रत्येक जाति व प्रत्येक मतमें विद्यमान होते हैं इसलिए जो पक्षके मदमे उन्मत्तथे वे तो पूर्व वत् इस जालमे फसें ही रहे परन्तु जो निष्पक्ष थे वे इस आन्दोलन से और भी जैनधर्म में दृढ़ हो गए और जैनके अटल नियमों पर निश्चय करलिया और कहने गले कि जिन्होंने हमारे पास जैनकी चुगलीकी कि जैनी ऐसे हैं जैनी वैसेहैं वे वास्तवमें भूलमें पड़े हैं इनका संग अब हम कदापि न करेंगे इत्यादि इस पर दृष्टांत भी है।

यथा—किसी नगरमे एक राजाको एक ब्राह्मण कथा सुनाया करता था राजा उसको प्रतिदिन एक मोहर दक्षिणा में दिया करता था। एक नापित जो महाराजका क्षौर (हजामत) किया करता था वही उस ब्राह्मणका भी नाई था एक दिन वह नापित ब्राह्मण का क्षौर करता हुआ बोला कि आप प्रतिदिन सरकारसे मनमानी बातें सुनाकर एक मोहर ले आते हैं एक दिन एक

मोहर हमको भी दे दीजिए, तब ब्राह्मण बोला तुझे किस बातकी दूं मैं यूंही तो नहीं ले आता मेरा मस्तिष्क (मगज) लगताहै एक घण्टा परिश्रम उठाकर एक मोहर पाता हूं, तब नापित रुष्ट हो गया और जब राजाका क्षौर करने गया तो चुगली की कि हे महाराज ? यह ब्राह्मणजो आपको कथा सुनाने आताहै वह कहताहै कि भाई मोहरके लोभसे राजाको कथा सुनाता हूं परन्तु मुझको राजाके मुखसे दुर्गन्धि आतीहै इसलिए मैं नाकढांप कर अर्थात् मुंडासा बांधकर कथा सुनाता हूं आपने कभी विचार किया होगा कि वह खुले मुंह कथा नहीं करता, तब राजाने कहा अच्छा । उसकी नाक ऐसी पतलीहै तो अब ध्यान रखूंगा, तब वह नाई फिर पण्डितके पास आया और कहने लगा कि आज मैं राजाका क्षौर(हजामत)करने गयाथा तो वे कहते थे कि पण्डितजी कथा तो अच्छी करते हैं परन्तु उनके मुखसे दुर्गन्धि आती है इसलिए हम को घृणा होतीहै, अबतो कि किसी औरसे कथा सुना करेंगे यह सुनतेही मैं सीधा आपके पास आया हूं कि आप राजाकी इच्छाको जानलें । मैं इस विषय में आपको एक उपाय भी बतलाता हूं यदि पसन्द

हो तो स्वीकार करें, पण्डितजी बोले कहिए, नाई ने कहा, कल, कथा सुनाने जाएं तो मुंडासा बांध कर सुनावें। पण्डितने नापित की सम्मति को मान लिया और जब कथा सुनाने गए तो मुख पर मुंडासा बांध कर सुनाने लगे। राजाको नापितके कथनसे खियाल तो पहले ही से था, मनमें सोचा कि नाई सत्य कह गया है कि मुंडासा बांध लेता है। राजा जी अपने क्रोध को प्रकट न करके पूर्ववत कथा सुनते रहे परन्तु कथाके समाप्त होने पर पण्डित को कहा कि पण्डित जी इस समय हमारेपास मोहर नहीं है हमारी चिट्ठी खजानचीके पास ले जावे वह आपको तुरंत मोहर देदेवेगा। ब्राह्मण बोला बहुत अच्छा अतः महाराजने एक चिट्ठी लिख कर ब्राह्मण को देदी। पण्डित जी चिट्ठी जेबमें डाल कर तत्काल खजानेकी ओर चलपड़े परन्तु भाग्यवश वही नापित मार्गमें मिला। ब्राह्मणने सोचा कि यह नाई नित्य मुझसे एक मोहर मांगा करता है इस लिये आजकी मोहर इसको ही देदू इसकी मांग हटेगी और मेरा खजाने तक जानेका कष्ट मिटेगा सुतरां उस ब्राह्मणने वह चिट्ठी उस नापितको देदी और कहा कि जा आज तू ही मोहर खजानेसे लेले। नाई बहुत ही प्रसन्न

हुआ और वहांसे खजानेको चलदिया और जाते ही वह चिट्ठी खजानचीके हाथमें देदी और कहा कि मोहर देदो खजानचीने लिफाफा खोला तो एक आज्ञप्ति (हुकमनामा) पाया जिसमें यह लिखा था कि इस पत्रका लाने वाला तुमसे एक मोहर मांगेगा तुम तुरन्त उसकी नाक काटलेना खजानची महाराजकी आज्ञानुसार तत्काल ही चाकू लेने अन्दर चला गया, नापित बहुत प्रसन्न हुआ कि देखो कितनी शीघ्रता से मोहर लेने गया है, खजानची शीघ्र ही लौट आया और झट पट चाकूसे उसकी नाक काट डाली नाईने कहा हैं हैं यह क्या मोहरके बदले मेरी नाक क्यों काट ली तब खजानची ने कहा कि इस चिट्ठी में सरकारी हुकम यही था तब नाई रोता हुआ ब्राह्मणके घर आया और कहा तूने मेरे साथ बड़ा छल किया जो चिट्ठी देकर मेरी नाक कटवादी, ब्राह्मण चकित रह गया कि हैं यह क्या हुआ मुझे तो इस बात का कुछ पता ही न था कि सरकारने इसमें ऐसा लिखा है तब नापित अपने मनमें समझ गया कि यह मेरी पिशुनता (चुगली) करने का फल है ब्राह्मणका दोष नहीं और ब्राह्मण भी इस भेद को

सुनकर हंसपड़ा—किसी कविने कहाभी है—

भले भलाई, बुरेबुराई कर देखोरे भाई।
चिट्ठि दीनी ब्राह्मणको, नाक कटाई नाई॥ इत्यर्थः—

जब श्री महासती पार्वती जी महाराजने सत्यके दीपकसे यथार्थ पदार्थ का दर्शन करा दिया और बतला दिया कि वे शंकाएं निर्मूल थीं तो बहुत से अन्य मतके पुरुषोंने जैन धर्म के महत्त्वको जान लिया और उसके नियमोंको मुक्तिका दाता समझ कर उन पर यथा शक्ति चलना स्वीकार कर लिया अर्थात् समायिक सम्बर आदिभी करने लगगए और उनलोगोंने अमृतसरके जैनीभाईयोंके साथहोकर आप के चरणों में सं०१९४६के चतुर्मासा करनेकी अतिशय विनतीकी जिस पर आपने कहा कि हमारी इच्छा स्यालकोटकी ओर जानेकी है परन्तुचौमासा तो वहीं का होगा जहां की श्री श्री १००८ पूज मोतीरामजी महाराज आज्ञा देंगे आपके इस वचनको सुनकर लाला सोहनलाल जौहरी, लाला सुखानन्द, लाला मोहनलाल, लाला सर्घाराम, लाला भानाशाह आदि चतुर्मासकी अनुज्ञा लेनेके लिए मालेर कोटला चले गए जहां पूज्य मोतीरामजी विराजमानथे उनके दर्शन किए और फिर उनके चरणों में प्रार्थना की, कि

श्री श्री श्री महासती पार्वती जी महाराजके अमृत-सर पधारने से जैन धर्म का बड़ा प्रचार हुआहै वहुत से अन्यमती लोगोंको भी जैन धर्मकी लग्न होगई है। इसलिए यदि आप श्री महसतीजी महाराजको अबके सं० १९४६ वि० का चतुर्मासा अमृतसरमें ही करनेकी आज्ञा देदें तो वहुत ही उपकार होगा और आपकी बड़ी ही कृपा होगी। इस पर श्री पूज जी महाराजने रीति पूर्वक आज्ञा देदी और भाई आज्ञा लेकर अतीव प्रसन्नता से वापस आकर सर्व वृत्तान्त श्री महासती जी महाराजके चरणों में सुना दिया। सुतरां आपने श्री पूजजी महाराज की आज्ञानुसार वहां का ही चतुर्मासा मानकर विहार कर दिया सं० १९४६ वि० का चातुर्मास्य अमृतसर में आप स्यालकोट पसरूरकी तर्फ धर्मका प्रचार करती हुई विचर कर पूज्यजी की आज्ञानुसार पुनः अमृतसर पधारीं, आप यह तो भलीभांति जान ही चुके हैं कि आपकी प्रशंसा अमृतसरमें कहांतक थी अव चतुर्मासामें पूर्वोक्त परिषधा यहां तक बढ़ गई कि उस स्थानमें श्रोताजनों के बैठनेको स्थान न मिला तव श्रावक जनोंने सरदार नरेन्द्रसिंह जी की हवेली की याचना करके आपकी सेवामें विनती

की कि, आप उसमें व्याख्यानकी कृपा किया करें सुतरां उनकी इच्छानुसार आपके व्याख्यान उस हवेलीमें प्रतिदिन होने लगे और श्रोता जनों की संख्या पांचसौके लगभग होती थी वहुतसे अन्यमती लोगोने आपके उपदेशसे नाना प्रकारके नियम भी किये अर्थात् कई लोगोने मांस भक्ष्यादि सात कुव्यसनों का परित्याग किया और वहुत लोगोंने झूठी साक्षि तक देनेका त्याग कर दिया और जैनमें जो आठ दिनके पर्य्यूपन पर्व चतुर्मासी पर्वसे ४२वें दिन प्रारम्भ हो कर उनचासवें दिन संवत श्री पर्व होकर समाप्त होते है इन आठ दिनोमे वहांके जैनी भाईयोंने रोटी दाल पूरी कड़ा (हलुआ) आदि दीन दुखियो मे वांटा और दूधकी सबील (प्पाऊ) लगवादी अर्थात् जलके स्थानमें दूध पिलाते रहे। किं वहुना आपके इस चतुर्मासामे वहांके निवासियोंने दया धर्मका भली भान्ति परिचय करादिया, इस चतुर्मासेमें एक और उपकार हुआ वह यह था कि जो अमृतसर की विरादरीका आपसमें कुछ समयसे झगड़ा चला आता था वह दूर होगया अर्थात् उनका द्वेषभाव आपकी पवित्र वाणीके प्रभावसे दूर होगया और सबके खण्डित हृदयं मिल गए और सब ओर

शान्तिका साम्राज्य होगया और जो परदेशोंसे आपके दर्शनार्थ यात्री आते थे उनका सबने मिलकर तन मन धन से सत्कार किया, और जो पुस्तक आपने "ज्ञान दीपिका" नामसे हुश्यारपुरमें बनानी आरम्भ की थी उसको इस चतुर्मासे में समाप्त करदी और लाला भानाशाह अमृतसर निवासीने आपसे लेकर लाला मेहरचन्द लक्ष्मनदास लाहौर वालेके पास छपने के लिये भेजदी और उन्होंने उसको सं० १९४६ वि० में छपा कर प्रकट करदी ॥

ज्ञान दीपिका ग्रन्थ के विषय।

पाठक वृन्द! श्री १००८ महासती पार्वतीजी का बनाया हुआ ज्ञान दीपिका नामक ग्रन्थ सचमुच पढ़नेके योग्य है अर्थात् मनुष्यके सुधारका एक मात्र साधन है और ज्ञानका एक भण्डार है इसके पढ़ने से प्रत्येक मनुष्य पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। जिस प्रकार जगत्के विचित्र पदार्थ किसी प्रदर्शनीमें विद्यमान होने पर भी अंधेरी रात्रिमें दिखाई नहीं पड़ते, जब तक कि उनको दीपक आदिक के प्रकाशसे न देखा जावे, इसी प्रकार यह ज्ञान दीपिका भी सत्यासत्य पदार्थोंके यथार्थ

स्वरूप के देखनेका एक साधन है। इस ग्रन्थके दो भाग हैं, पहले भागमें आपने जैन तत्त्वादर्श ग्रन्थ आत्माराम जी सम्वेगी रचितकी भूलोंके सुधारके सम्बंध मे कुछ टिप्पणिआं दी हैं तथा आत्माराम जी ने जो जैन मुनियोंकी ढूंढ़िए नामसे निन्दा की हे उसका उत्तर दिया है यथा सं० १७१८ वि० के लगभग सूरत नगर के निवासी लवजी नामक एक साहुकार ने जो जाति से सिरीमाल थे, वज्रांग यतिके पास दीक्षाली थी और शास्त्रोको भली भान्ति पढ़ा था, उन्होने ज्ञानके दीपकसे जव देखा कि शास्त्रोका अभिप्राय जो है उस पर यह यति लोग नहीं चलते हे अर्थात् इनकी क्रिया शास्त्रोंके विरुद्ध हे तो वे वहुत घवराए क्योंकि यतिओंके शास्त्रानुसार न चलनेका कारण यह था कि श्री १००८श्रीमद्भद्रवाहु स्वामीजी महाराज व्यवहार सूत्रकी चूलिकामे पहले ही लिख गए थे कि वारह वर्षी कालके पश्चात् यति लोग मूर्तिकी स्थापना करावेंगे। यथा सूत्र--

चेइयं ठपावेइ दव्वहारिणो मुनि भविस्सइ लोभेण माला रोहेण देउल उवहाण उद्यमण जिन विंव पइ ठावण विहिउ माइ एहि वहवे तव पभावा पयाइस्संति अविहि पंथे पड़िस्सन्ति इत्यादि।

अर्थ—मूर्तिकी स्थापना करावेंगे द्रव्यधारी (धन दौलत रखने वाले) मुनि (साधु) घने (बहुत) हो जावेंगे लोभ करके मालारोपण अर्थात् मूर्तिके कण्ठमें फूलोंकी माला डाल कर फिर उसका मोल करावेंगे अर्थात् नीलाम करावेंगे और पंचमी तपादिकाउद्यमन (ओज्जमन) करावेंगे। जिन विंव पइटावणाविहिउ (तीर्थंकर देवोंकी मूर्ति) की प्रतिष्ठा करावेंगे। इत्यादि बहुत विधियें बतावेंगे अविहेपथे पड़िस्सन्ति (उल्टे पंथ पड़ेंगे) सो इस भविष्यत् वाणीके विरुद्ध तो हो ही नहीं सकता था इस लिये ऐसा ही हुआ, सुतरां सुना जाता है कि सं० ५३८ वि० के पश्चात् बारह वर्षका अकालपड़ा उसमें यहसबबातें आरम्भहो गईं क्योंकि साधुओं को ४२ दूषण टाल कर अन्न जलका मिलना कठिन हो गया था इस लिये बहुतसे साधु संयम वृत्ति से गिर गए अर्थात् कई वैद्यक आदिकार करने लग गए कई मंदिर मूर्तिआं बनवा कर बैठ गए शनै २ यह सब बातें भविष्यद् वाणीके अनुसार प्रचलित होती गईं, कहीं कहीं विशेषतः ऐसे क्षेत्रोंमें जहां अकालका अधिक कष्ट न था वहां कोई कोई साधु रहभी गये थे। जैसेपूर्वोक्त संवत्१७२० वि० में लवजीने अपने गुरुको कहा था कि तुम सूत्रोंके अनुसार आचार क्यों

नहीं पालते, गुरु बोला कि पंचम कालमें शास्त्रोक्त सम्पूर्ण क्रिया नहीं पल सकती। तब लवजी ने कहा-कि तुम्हारा आचार भ्रष्टहै मै तुम्हारे पास नहीं रहूंगा मैं तो सूत्रानुसार क्रिया करूंगा तब उसने सूत्रानुसार पूर्वोक्त मुख वस्त्रिका मुख पर लगाई जैसे कि पूर्व काल में मुनिजन लगाया करते थे और विधि पूर्वक कठिन क्रिया करनेलगे और जो लोग उन्हें पूछते कि यह कठिन क्रिया कहांसे निकाली है तब वे उत्तर देते कि शास्त्रों से ढूंढ कर, तब लोग उन्हे ढूंढिया ढूंढिया कहने लगे अर्थात् यह संज्ञा सं० १७२० वि० मे जैनको मूर्त्ति पूजक सम्प्रदाय ने दी है।

फिर महासती श्री पार्वतीजी महाराज ने लिखा है कि आत्मारामजीने जैनतत्त्वादर्श ग्रन्थ प्रथमावृत्ति के ५७ पृष्ठ में एक पांच वर्ष के बालक को दीक्षा देना लिखा है परन्तु जैन सूत्रों में पांच वर्षके बालक को दीक्षा देनेकी आज्ञा नहीं है यदि कोई देवेतो वह जिन आज्ञासे विरुद्धहै फिर आत्मारामजी लिखते हैं कि इस पांच वर्षकी आयुमें दीक्षालेने वालेसाधुने ८४ वर्ष संयम पाला जिसमें तीन करोड ग्रंथ रचे। श्री महासतीजीने उत्तरमें लिखाहै कि एक वर्षके ३६०

दिनोंके हिसाबसे ८४ वर्षों के ३०२४० दिन हुए यदि वह प्रति दिन सौ सौ पुस्तक तय्यार करते तौ भी केवल ३०२४००० पुस्तकें बन सकती थीं इसलिये इस गप्पको आत्मनंदियोंके सिवा और कौन मान सकता है।

फिर श्री महासतीजी महाराज लिखती हैं कि, यदि किसीका ग्रन्थसे अभिप्राय श्लोकसे हो तो यह भी झूठहै क्योंकि आत्मारामजी ने जैन तत्त्वादर्शके पृष्ठ ५९५ पर लिखाहै कि यश विजय गनीने १०० ग्रन्थ रचे हैं तो क्या ऐसे पण्डित की प्रशंसा १०० श्लोक के लिए लिखी है।

इससे सिद्ध हुआ कि ग्रन्थोंसे उनका अभिप्राय पुस्तकों से ही है श्लोकों से नहीं, इस प्रकार की अनेक भूलोंका सुधार पहिले भागमें कियाहै और चार निक्षेपोंका स्वरूपभी दिखलाया है।

इसके दूसरे भागमें अत्यन्त संक्षेपके साथ श्री महासतीजी ने यह दिखलायाहै कि जैनधर्म और अन्य मतोंमें क्या भेदहै। और देव, गुरु, धर्मके लक्षण क्याहैं। इस जगत् रूप झूलने की चार गति रूप चार पटड़ीओंका स्वरूप और इनके कारण जगत् की असारता, और हिंसा

मिथ्यादिके त्याग की और दया क्षमा आदि के ग्रहण करनेकी शिक्षाभी दी हैं । तथाअपने पापोंको जानना और उनसे वचने का उपाय और गृहस्थ को धर्म कार्य्योंमें अहर्निश किस प्रकारकी क्रिया करनी उचितहैं जिसमें सामायिक का पाठ और सामायिक करनेकी विधिभी लिखी है इत्यादि ॥

इस पुस्तकको आपने ऐसी सरल भाषा में लिखाहै कि जिसको थोड़ा पढ़े हुए भी समझकर सुमार्ग पर चलनेका उद्योगकर सकतेहैं इस लिए आशाहै कि जो लोग इस पुस्तकको निष्पक्ष हो कर पढ़ेंगे वे इससे अवश्य लाभ उठावेंगे ।

आपका अमृतसरसे विहार ।

चर्तुमासा समाप्त होने पर आपने अमृतसरसे गुजरांवालेकी ओर विहार कर दिया । अमृतसर के समस्त जैन श्रावक और श्राविका तथा वहुतसे अन्यमतके लोग खत्री वैष्णव व्राह्मण एक सहस्रके लगभग भीड़ भाड़ श्री महासतीजी महाराज की सेवामें विहारके समय साथ थे आप नगरके चाटी पिंड दरवाजेके वाहर तालावके किनारे ला० महेश दास जी अरोड़ा की सरायमें ठहर गईं । मकानके

स्वामीने जब इतनी भीड़ देखी तो बाहर निकल कर कहने लगे कि कौन महात्मा हैं जिनकेसाथ इतने लोग हैं,जब लोगोंने श्रीसतीजीका नाम बतलाया तो वे शीघ्रहीअपनी कोठीमें चलेगए और तुरन्तही एक टोकरा सेवोंके फलोंका और पांच रुपये रोक लेकर आपकी सेवामें उपस्थित हुए और बोले कि महाराज मेरी यह भेंट स्वीकार करें । आपने उत्तर दिया, यह भेंट हमारे योग्य नहीं है हां यदि कुछ भेंट देना चाहते हो तो कुछ अभक्ष पदार्थ मांसादि का अथवा झूठ बोलने आदिकका परित्याग करो । तब वे समझ गए कि यह त्यागी साधुहैं न रोकड़ लेंगे और ना ही सबजीको हाथ लगायेंगे, ऐसी भेंटोंके लेने वाले साधु तो मिलते ही रहते हैं परन्तु ऐसे निर्लोभी साधु कहीं कहीं मिलते हैं ।

इसलिये उन्होंने कुछ धर्म विरुद्ध और राजविरुद्ध झूठ बोलने के झूठी साक्षी देनेके और मदपानके परित्यागकी भेंटदी पाठक ! आप समझ गए होंगे कि, जैन मुनिओंकी भेंट रुपये भूषण व भूमि आदि पदार्थोंकी नहीं होती उनकी यही भेंट है कि लोग कुमार्गसे बच कर सुमार्गमें लग जाएं। दूसरे दिन आपने वहां ही व्याख्यान दिया और वहांसे लाहौर

की ओर (तर्फ) विहार कर दिया और लाहौरमें
कुछ दिन उपदेश करके गुजरांवालेको विहार कर
दिया । पाठक ! आप जानते हैं कि जैन मुनिओं
की कैसी कठिन वृत्ति होती है अर्थात् शीतकाल
व ग्रीष्मकालमें नङ्गे पाओं पैदल विचरना सूर्य्य
ऊगनेके पश्चात् विहार करना और अस्त होनेसे
पहले किसी गाओ में ठहरजाना और कूआ वापी
आदिक से जल लेकर न पीना अर्थात् अग्नि आदिक
के संस्कार हुए विना कच्चा जल नहीं पीना फल फूल
आदिक हरी सवजीका न खाना कोई भक्त जन
उनके लिये भोजन पानी वना करदे, व मोल लेकर
दे, तो नहीं लेना जो गृहस्थिओंने अपने कुटंबके
लिये वनायाहो उसमेंसे थोड़ा २ घर २ फिरकर विधि
पूर्वक याचना करके लेना इत्यादि इसलिये यात्रामें
अनेक प्रकारके परीषह (कष्ट) सहने पड़ते हैं इसी
कारण लाहौर और गुजरांवालेके वीच गाओंमें
आहार पानी संयम वृत्तिके अनुसार थोड़ा मिला
और मंजिलभी भारी की गई इस लिए आपको
मार्गमे ज्वर हो गया वहां औषधि कहां प्रत्युत उष्ण
जलके स्थानमें छाछ मिलती रही उसीका सेवन करने
से शिरमें पीड़ा पेटमें दर्द होने लगी परन्तु आपने

इन कष्टोंके होते हुए भी अपनी यात्रा को वंद न किया। जब गुजरांवाला तीन चार कोस रहगया तो गुजरांवाले के एक सौ के लगभग भाई और बाई आप की अभ्यर्थना(लेने) को उपस्थित हुए, आपके कष्टको देखकर सब व्याकुल होगए सबने यही उचित समझा कि आप का गुजरांवाले में पहुंच जानाही उचितहै उन्हों ने प्रार्थना की, कि आप को विहार से कष्ट तो अवश्य होगा परन्तु उचित यही है कि आप शीघ्र ही नगर में पधारें क्योंकि वहां उपाय हो सकता है आपने उन की विनती को स्वीकार कर के गाओं से विहार कर दिया और सायंकाल गुजरांवाले पहुंच गईं और कुछ आहारभी किया परन्तु रात्रि को आवश्यक प्रतिकर्मणा के पश्चात् जिगर शूल (गुम हैज़ा) हो गया। रात्रिका समयथा इसलिये चिकित्सा न हो सकी क्योंकि जैनी साधुओंका यह धर्महै कि रात्रि को न खाना न पीना। जब लोग प्रातःकाल दर्शनार्थ व व्याख्यान सुननेके अर्थ आए तो उन्हें पता लगा कि रात्रिमें बहुत खेद रहा तब उन्होंने तत्काल नगरके कई एक योग्य चिकित्सक बुलाए जिन्होंने रेचन (जुलाब) के लिये कहा, साधु की

वृत्ति के अनुसार ओपधि ली गई परन्तु दस्त (जुलाव) न आए प्रत्युत कष्ट और भी वढ़ गया तव श्रावक भाई घवराए और तुरंतही स्यालकोट के श्रावकोंको (टेलीग्राम) तार दी। तारके पहुंचते ही एक सौ के लगभग श्रावक अच्छे अच्छे योग्य वैद्योंको साथ लेकर स्यालकोटसे गुजरांवाले पहुंचे और जिस जिस नगरमें आपकी व्याधि (विमारी) का समाचार पहुंचा वहां वहां से भी लोग गुजरां वाले आ पहुंचे, यहां तक कि रावल पिण्डी तथा कुछ नगरोंके लोग तो अपने साथ दुशाले और किम्ख्वाव तकभी लेआए और अमृतसर से चंदन मंगवानेको कहा गया और उस समय स्यालकोट की पचास साठ स्त्रियोने यह नियमकर लिया था कि, जव तक हमको यह शुभ समाचार न मिलेगा कि श्री महासती पार्वतीजी महाराज नीरोग हो गईहै उससमय तक हम दूध दही घी निमक मीठा आदि न खाएंगी अर्थात् आंवल व्रत करेंगी। वैद्योकी सम्मातिके अनुसार और साधु वृत्तिके अनुकूल चिकित्सा होता रहा। अन्तमे दया धर्म के प्रतापसे और आपके पुण्योदयसे शनै २ स्वास्थ्य (आराम) वढ़ने लगा तव लोगोंने दीनोंमे दान

और भाइयोंमें मान सतकारादि करके बहुत आनन्द मनाया क्योंकि बहुतसे नगरोंके लोग आपके दर्शनों को आए हुए थे इसलिये नगरमें आपके पधारनेका समाचारसर्व साधारणमें फैलगयाथा तो बहुतसे अन्य-मती भी आपके दर्शनोंको आने लगे । जब श्री सती जी स्वस्थ हुईं तो तत्काल ही आपने व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया यद्यपि दुर्बलता बहुत थी परन्तु आपने उसकी ओर ध्यान न दिया । थोड़े दिनोंके व्याख्यान से धर्मका इतना प्रचार हुआ कि, उस मकानमें श्रोता जनोंके बैठनेके लिए पर्य्याप्त स्थान न मिला तब लोगोंने कहा कि व्याख्यान किसी बड़े मकानमें होना चाहिए जिस पर राय मूलसिंह व लाला शंकरदासजी क्षत्रिय मधोकने विनती की कि, हमारा मकान बहुत बड़ा है महाराज जी का व्याख्यान वहां होना चाहिए ।

गुजरांवालेमें व्याख्यान दयाके विषयपर ।

श्री महासती पार्वती जी महाराजने राय मूलसिंह व शंकरदास क्षत्रिय मधोक की विनती पर उनके मकान पर व्याख्यान देना स्वीकार किया और दो दिन वहां ही व्याख्यान किया श्रोता

जनों की संख्या दस पंद्रहसौ की थी आपने श्री उत्तराध्ययन सूत्रके अठारहवें अध्यायका व्याख्यान सुनाया जिसमे ऐसा वर्णन किया।

कपिलपुर नगरी का राजा संयति नाम जो चौबीसवें तीर्थंकर महाराजसे कुछ समय पहले इसी आर्य्यावर्तमें था जिसको धन यौवनके मदके प्रभाव और सतगुरु की संगतिं के अभाव से आखेट (सिकार) करने का स्वभाव था एक दिन वह राजा कई अपने सवारों को साथ लेकर वन में आखेट करने गया जूंही राजा को एक मृग देख पड़ा और उसकी ओर लक्ष्य करके धनुष ज्या पर वाण लगाया (धनुषका चिल्ला) चढ़ायातो मृगदेखते ही घवरा गया क्योंकि संसार में मृत्यु से वढ़ कर और कोई भय नहीं है मृग का हृदयकमल मुर्झा गया और नेत्र पथरा गये क्योंकि हृदयकमल और नेत्रोंका परस्पर संवंधहै अर्थात् हृदयमें आनन्द हो तो नेत्रो में भी आनन्द छा जाताहै और हृदयमें दुःख हो तो नेत्र भी मुर्झा जाते हैं। इसलिए उस मृगका हृदय कमल मुर्झातेही उसके नेत्र भी सूख गए मृग की शक्ति क्षणमात्र में जाती रही और मृग सोचताहै कि कहां मेरी मृगी कहां मेरे बच्चे

हाय हाय दुष्ट कालने मुझे कहां आ घेराहै मृग इस विचारमें हीथा कि वह बाण जिससे वह भयभीत हो रहाथा आनकी आनमें उस की देहमें विजली के समान खुभ गया और जो पीड़ा उस निर्दोष मूक जन्तुको हुई उसको सिवा उसके अथवा ज्ञानी महाराज के और कौन जान सकता था। परन्तु प्राणिओंको प्राण ऐसे प्रिय होते हैं कि इस विकट दशामें भी उसने अपने प्राणोंके बचाने का प्रयत्न न छोड़ा अर्थात् तड़पताहुआ वहां से भागा, समीप ही एक दाखोंका मण्डप उसको मिला जिसमें वह प्राण बचाने की इच्छा से घुस गया परन्तु बचाव कैसे सम्भव था जब कि बाण का विष शरीर में रुधिरके साथ मिल चुकाथा। बाणकी उत्कट पीड़ा को न सहन करता हुआ घाव के ठण्डे होते ही प्राणान्त हो गया। इतने में राजा संयति भी घोड़े से उतर कर अपने आखेट (सिकार) को ढूंढता हुआ उस द्राक्षा मंडप में प्रवेश हुआ। झुक कर क्या देखता है कि मृग तो मरा पड़ा है और एक जैन मुनि समाधि लगाए बैठे हैं राजा ने विचारा कि यह मृग तो इसी मुनिका पालतु जान पड़ता है मैंने इसको मारकर निस्सन्देह मुनिका घोरअपराध

कियाहै राजा वहुत भयभीत हुआ और अपने इस अपराध की क्षमा मांगने को कुछ आगे वढ़ा और उसी मुनि के चरणो में नमस्कार करके विनती करने लगा कि मेरा अपराध क्षमाकरें मुझेप्रतीत (मालूम) न था कि यह मृग आपका है ।

साधु महाराज ध्यानारूढ़ थे इस लिए कुछ उत्तर न दिया तव साधुके मौन रहनेसे राजा और भी भयभीत हुआ और घवराया कि साधुमहाराज मुझपर अवश्य कुपित हैं कहीं ऐसा न हो कि मुझे अभी शाप देकर भस्म कर दें ।

राजाको निर्भयतापर साधुका उपदेश ।

तव राजा उक्त विचारसे व्याकुल होकर कांपने लगा और उसका हृदयकमल मृत्यु के भय से मुर्झा गया और नेत्रशुष्क होगये और मनमेंसोचने लगा कि अव मेरे प्राण कैसे वचेंगे हाय ! कहां हैं मेरी प्राणप्यारी रानियां, कहां हैं मेरे हृदयके टुकड़े प्यारे पुत्र और कहां है मेरा राजपाट और भोग विलास की सामग्रियें हाय हाय मेरेप्राण इस वनमेंही चले॥

तदानन्तरानि वह महानुभाव गर्दभाली नामक साधु अपने ध्यानको पूरा करके वोले हे राजन् !

मुझसे मत भयकर मैं तो साधु हूं साधु कभी किसी को दुःख का कारण नहीं होते यह सुनते ही राजाके हृदयसे सब भयदूर होगया और चित्तमें धीर्य आगई तब साधु महाराजने कहा कि हे राजन् जिस समय तू मेरे सन्मुख आया था और शापके कारण मृत्युके भयसे डरता था उस समय तेरे मनकी दशा कैसीथी और अब जो मैंने तुझे अभय दान दिया है अब तेरी दशा कैसीहै राजा-हे स्वामिन् ! उस पहली दशाका दुःख और वर्तमान दशाका सुख अनुमानसे बाहरहै-और नाहीं इसके वर्णन करने की मेरे पास कोई युक्तिहै ।

साधु—क्या तुझे पहली दशा अच्छी प्रतीत हुई व पिछली ।

राजा—हाय हाय पहली दशा तो बड़ीही बुरी दुःखदाईथी पिछली महासुखदायक वचनअगोचरहै।

साधु—हे राजन् ! इसीप्रकार बनके पशु पक्षि और प्राणिमात्रको जब मत्यु दृष्टि सन्मुख आतीहै तब सबकी दशा ठीक उसी प्रकारकी हो जातीहै जैसी तेरी पहली दशाथी अर्थात् वह उन सबको ऐसी ही बुरी लगतीहै जैसी तुझको लगी थी, अपितु जैसे मेरे अभय दानदेनेसे तेरी पिछली

दशा हुई है तैसे तू भी इन सव प्राणिमात्रोंको अभय दानदेकर अपनी सी इस पिछलीदशा में पहुंचादे। तव राजाने भी अपनी मतिकी तुलासे दोनों दशाओंकी तुलनाकी और उस मुनिके साम्हने ही कानको हाथ लगाकर कहा कि मैं आज से पीछे कदापि किसी प्राणिको अपनी पहलीसी दशामें न डालूंगा इत्यादि।

इस कथनको सुनाकर आपने श्रोता जनोंके हृदयों पर दयाभावका सच्चा चित्र (फोटो) खैंच दिया, और महासती पार्वतीजी महाराजने अपने पवित्र उपदेश का प्रभाव डालते हुए यह भी कहा कि, जिसका वदला आपसे न दिया जाय उसको लेना भी न चाहिये अर्थात् यदि तुम अपने प्राण देना नहीं चाहते तो दूसरेके प्राण भी न लो जैसे कोई मनुष्य जव किसीसे भाजी (व्यौहार) लेने लगताहै तो वह सोच समझकर लेता है कि इसका वदला मैं देसकूंगा व नहीं क्योंकि जितना लेवेगे उतना देना भी पड़ेगा इसी प्रकारजो औरोंके प्राण लेतेहैं उनको भी सोचना चाहिये कि मुझे अपने प्राणभी देने पड़ेंगे, जैसा किसी कविने कहाहै।

जो सिरकाटे और का अपना रहे कटा।
सांईकी दरगाहमें वदला कहीं न जा॥

वरं एक वार दूसरेके प्राण हरनेकेदोष से एक ही वार अपने प्राणदेने पर छुटकारा न होगा अर्थात् कई जन्मों तक वारम्वार मरना पड़ेगा जैसे व्याज पड़ व्याज वधजाताहै इत्यर्थः—

इस पहले दिनके उपदेशको सुनकर लोगोंके हृदयों पर अहिंस्या परमधर्मका वड़ा ही प्रभाव पड़ा और कई मतान्तरी लोगोंने आखेट (सिकार) करना मांस खाना आदि छोड़ दिया और लाला शंकरदासजी और कई लोगोंने बिनाछाने जल तकका परहेज कर लिया और कहने लगे कि श्रीमती पार्वती देवीजी महाराजने हमलोगोंको प्रातिवोधकर दिया अर्थात् सूतों को जगा दिया, दूसरे दिनके व्याख्यान में आपने संसारकी अनित्यता दिखलातेहुए निर्मोही राजाका कथनसुनाकर वैराग्य की मूर्ति सम्मुख खड़ी करदी, सभासद गद्गद होकर वैरागके अश्रुभर लाये और स्त्री समाज पर तो महासतीजी महाराजके उपदेशसे लज्जा दया पतिव्रता आदि धर्मका बड़ा ही प्रभाव पड़ा और जैन मत के ज्ञान वैराग्य दयादि धर्म की प्रशंसा करते

हुए सभा विसर्जन हुई।

आप पूर्वोक्त पेदके कारण निर्वल तो हो ही रही थीं परन्तु लोगोंकी विनती पर आप दो दो अढ़ाई अढ़ाई घण्टे तक एक ही चौकड़ी जमा कर व्याख्यान देती रही इसलिये आपको अजीर्ण होगया जो कई वर्षा तक रहा जिस करके आपको पुस्तकोंके लिखने पढ़ने और वनानेमें वड़ी अंत्रायपड़ी ॥

सं० १९४७ वि० का चातुर्मास्य स्यालकोट दूसरीवार।

श्री महासती पार्वतीजी महाराजने गुजरांवालेसे स्यालकोट को विहार कर दिया जव स्यालकोटसे ३-४ कोस उरे ग्राओथा वहां पधारीं तो स्यालकोटके तीन चार सौ भाई और वाई इनकी अभ्यर्थनाको उस ग्राओमे उपस्थित हुए और वहुतसे भाई और वाई रास्तेमे मिलतेरहे नगर पहुंचने तक अनुमान१००० वाई भाई होंगे क्यों नहो इसनगरमे लाहौर अमृतसरकी अपेक्षा जैन भाईयोंकी संख्या अधिक है और महासतीजीका पधारना इसलिये रौनक अधिक होनी स्वाभाविक थी। अतः घर घरमें मंगलशब्द हो रहे थे कि धन्य है यह समय

कि जिसमें चौथे आरेकी साक्षात् वंनगी श्री महा सती पार्वतीजी महाराज हमारे क्षेत्रमें पधारी हैं। और वहांके श्रावक श्राविकाओंने आपके चरणों में प्रार्थना की, कि यदि आप हमारे क्षेत्रमें इस चतुर्मासेकी कृपा करें तो धर्मका वड़ा ही प्रचार होगा और जो हानिकारक रीतिआं प्रचलित हैं। वेभी कदाचित् दूरहो जाएंगी। आपने कहा कि चतुर्मासेकी आज्ञा तो श्री पूज मोतीरामजी महाराजके अधीन है। यह सुनतेही लाला रूपाशाह, लाला पालाशाह, लाला जट्टूशाह, लाला विसाखी शाह, लाला मिलखी शाह व लाला जमीतशाह व कर्मचन्द आदिक तीस चालीस श्रावक मालेर कोटला चले गए और श्री श्री १००८ पूज मोतीरामजी महाराजसे बिनती करके आपके चतुर्मासेकी आज्ञा ले आए।

सुतरां सं० १९४७ का चतुर्मासा आपका स्यालकोटमें हुआ इस चतुर्मासेमें लाख सवालाख सामायिक सम्बर और पांच सौ के लगभग दया और सात सौ के अनुमान पोसा और तीस बत्तीस अठाईयां हुईं और एक बाई ने १५ दिनका एक ब्रत किया और चार चार पांच पांच दिनके ब्रत बहुत

हुए । और स्यालकोट में वालकों के विवाहों के अतिरिक्त कन्याओं के विवाह में भी ओसवाल (भावड़ा)विरादरीमें नगर ज्योनारकीजातीथी आपके उपदेशसे कन्याओंके विवाह पर ज्योनारें वंद हो गईं और रात्रिके समय वरासूई (वरी) चढ़ानेकी जो रीति थी जिस में वहुत मूल्य वस्त्रोंके अतिरिक्त सोने चांदी के भूपण चार पांच थालोमें दिखावेके लिए नंगे रखकर नाच और वाजोके साथ मशालों की रौशनीसे वाज़ारोंमेंसे पोलीसकी रक्षाके साथ जाते हुए कन्या वालेके मकान पर रात्रिके १२ वजे तक पहुंचतेथे जिसमें चोर उचको का भय और मशालोंसे वस्त्रों और दुकानोंके छप्परोंको आग लग जानेका अन्देसा भी रहता था यह भी आपके उपदेश से वंद होगई,और धनी व निर्धनका पर्दा भी वना रहा।इसकेअतिरिक्तओर भी कई एक कुरीतिआं वन्द होगईं जिनसे व्यर्थ रुपया लुटता था-अर्थात् अपनी सामर्थ्यसे अधिक पुत्रके विवाहमे वराती (जनेती) रथ गाड़ी वहल लेजाने जिससे पुत्र वाले और पुत्री वाले दोनोका द्रव्य अधिक व्यय होजाना फिर कर्ज चुकाने की चिन्तामें प्रणाम थिर न रहने ताते सामायिक नियमादिक धर्ममें हानी पहुंचनी

और बूढ़ेके मरणेपर नगर जीमणहारका करना बिरादरी में गिदौड़ा व लड्डुओंका वांटना इत्यादि जिनसे लोग वस्तुतः दुःखी थे वह सब कुरीतिआं आपके उपदेश से दूरहोगई जिससे बिरादरीको उभयलोकका लाभ हुआ और जो यात्री आपके दर्शनों को दूर दूरसे आते थे उनका आदर सत्कार भी स्यालकोट वालों ने जी खोलकर किया।

चतुर्मासा समाप्त होने पर आप फिर गुजरां वाला में पधारी वहां रावल पिण्डीके तीस चालीस श्रावक चतुर्मासे की विनती को आए और वहांसे मालेर कोटला में जाकर श्री श्री १००८ पूज मोती रामजी महाराजसे विनती करके आपके चतुर्मासे की आज्ञा लेआए इस लिए आपका सं० १९४८ का चतुर्मासा रावलपिण्डी का स्वीकार हुआ।

सं० १९४८ वि० का चातुर्मास्य रावलपिण्डी नगर में।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजका सं० १९४८ वि०का चतुर्मासा रावलपिण्डी नगरमें हुआ। स्याल-कोटकी भांति यह नगर भी जैनियों की अधिकाधिक संख्यासे सुशोभित है लोगोंको आपके चतुर्मासाकी

स्वीकृति पर अति प्रसन्नता हुई। जब आपने रावल पिण्डीकी ओर विहार किया और ग्रामानुग्राम होकर जेलम पधारीं तो वे लोग बड़े उत्साहसे दो तीन सौ की संख्यामें जेहलमके पड़ाव पर ही आउपस्थित हुए इनमेंसे कई श्रावक और श्राविका तो पांव प्यादा ही रावलपिण्डी तक साथ गए जिस दिन आप रावलपिण्डी पहुंची उस दिन नगर भरमें मानों एक मेला था लोग जैनियों की भक्ति देखकर आश्चर्य करते थे जब आपके व्याख्यान होने लगे तो जैन विरादरीके अतिरिक्त अजैन लोग बहुतायतसे आप की प्रशंसा सुन २ कर आने लगे और धर्मकी बड़ी उन्नति हुई, जिन लोगों को कोई शंकायें थीं उन लोकोंने रीतिपूर्वक चर्चा करके अपनी शंकायों की निवृत्ति की और प्रसन्नतापूर्वक आप की प्रशंसा करने लगे।

एक दिन रायबहादुर सर्दार सोभासिंहजी भी आपकी सेवामे व्याख्यान सुनने को पधारे और अपने साथ बताशोंके बड़े बड़े दो टोकरे भी लाए उन्होंने आपका उपदेश बड़े ध्यानसे सुना और व्याख्यानके समाप्त होनेपर आपकी सेवामें प्रार्थना की, कि पहले आप इसमेंसे कुछ चढ़ावा लेलेवें और शेष

को लोगोंमें बांट देनेकी आज्ञा देवें। श्रीमहासतीजी महाराजने कहा कि भाई साहब हमलोकतो गृहस्थियों के घरोंसे निर्दोष पदार्थ स्वयं याचना करके लातेहैं परन्तु जो वस्तु हमारे लिए रुपया ख़र्च कर ख़रीदी जावे अथवा हमारे लिए बनाई जावे व मकानपर लाई जावे हम उसे अंगीकार नहीं करते हैं किन्तु हमारी जैन साधुओं की वृत्ति ही ऐसी है।

यह वचन सुनकर उक्त सर्दार साहब जैन मुनियों की निर्लोभता पर बड़े प्रसन्न हुए और वह प्रसाद उपस्थित सज्जनोंमें बांट दिया।

और कई कुरीतिआं जो वहां की जैन बिरादरी में प्रचलित थीं वह आपके पवित्र उपदेशके प्रभाव से दूर होगई। और जो लोक दूर दूरसे आपके दर्शनार्थ आतेथे उनका आदर सत्कार रावलपिण्डी वाले श्रावक भली भांति करतेथे अर्थात् जब उनको सूचना मिलती कि, अमुक नगरसे अमुक गाओंसे लोग आते हैं तो वे अत्यन्त प्रसन्न होकर उनकी अभ्यर्थनोंको (लेनेको) रेलवे स्टेशनपर जाते और अंगरेज़ी बाजेके साथ उनको नगरमें लाते उनके रहने का उचित प्रबन्ध करते और यात्रियोंको खान पानके लिए ऐसे बढ़िया भोजन अपने घरसे बनवा

कर देते कि जैसे व्याह शादिओं के अवसर पर दिये जाते हैं।

जज्ज साहब का प्रश्न मुक्तिके विषयपर।

रावलपिण्डिमे जैन सभा भी प्रतिष्ठित है जिसमें दो दिनके लिए जैनबिरादरीने अपना सर्व साधारण उत्सव किया और श्री महासती पार्वतीजी महाराज के चरणोंमे भी प्रार्थना की, कि आप हमारे उत्सवमे पधारें और श्रोता जनोंको अपनी पवित्र वाणीसे धर्मका लाभ पहुंचावें किन्तु इसमें कारण यह था कि एकतो उसमें प्रत्येक मतके मैम्बरोंको सम्मिलित होनेका समय दिया गया था और दूसरे श्री महा सतीजी महाराजके पधारने की सूचना सबको थी इसलिये बहुत मतोंके लोग इस उत्सवमें सम्मिलित हुए। जिसमें राय नाराण दास साहब जज्ज भी पधारे थे, आपने व्याख्यानमें मदपान और मांस भक्षण का निषेध किया और अहिंसा और सत्यको परम धर्म बतलाया सभासदोंने आपके उपदेशको बड़े ध्यानसे सुना और पश्चात् जज्ज साहबने मुक्तिके विषयमें प्रश्न भी किया जो नीचे लिखा जाता है।

प्रश्न—जज साहब आप मुक्ति किस प्रकार मानते है।

उत्तर श्री महासती पार्वती जी महाराज– जीव (चेतन पदार्थ) कर्म (जड़ पदार्थ) अर्थात् जीवके संचित किए हुए कर्म जो सूक्ष्म शरीर अर्थात् तैजस कारमान शरीरमें रहते हैं जिसको अन्तःकरण भी कहते हैं सो साधनाओंद्वारा इस कर्म बंधसे अबंध होकर परमात्म पदको प्राप्त कर सर्वज्ञतारूप सर्वानन्दमें सदैव रहनेको मुक्ति मानते हैं।

जज्जसाहब–हमारे ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदिक पुस्तकोंमें तो मुक्तिका स्वरूप ऐसे लिखा है कि चार अर्ब वीस कोटि वर्ष प्रमाण एक कल्प होता है वह ईश्वरका दिन होता है अर्थात् इतने काल तक सृष्टिकी स्थिति होती है जिसमें सब जीव शुभाशुभ कर्म करते हैं फिर इतने ही वर्ष प्रमाण विकल्प अर्थात् ईश्वरकी रात्रि होती है जिसमें ईश्वर सृष्टिका संहार करलेता है परमाणु आदि कुछभी नहीं रहते तब सब जीवोंकी मुक्ति हो जाती है अर्थात् सब जीव सोए रहते हैं फिर विकल्पके समाप्त होने पर कल्प काल आरम्भ हो जाता है उस समय ईश्वर फिर सृष्टि रचता है तब सब जीव मुक्तिसे सृष्टिपर भेज दिए जाते हैं तब वे शुभ अशुभ कर्म

फिर करने लगजाते हैं यह प्रवाह रूप अनादि इसी प्रकार चलाआताहै और इसी प्रकार चलाजायगा।

श्री महासती पार्वती जी महाराज--

भला यह मुक्ति हुई कि मज़दूरोकी रात हुई जिस प्रकार मज़दूर दिन भर मज़दूरी करते रहे और रातको टोकरी और फावड़ा सिरहाने रख कर सो रहे और प्रातःकाल उठ कर फिर वही दशा। परन्तु एक और भी अंधेर की बात है कि कल्पके समाप्त हो जाने पर जब सब जीवों की मुक्ति हो जाती है तो आपके कथनानुसार जो पापी हिंसक दुष्ट कसाई आदिक हैं उनको भी मुक्ति मिल जाती है और जो मुक्तिके लिये सांसारिक सुखों को अर्थात् गृहस्थाश्रमको छोड़ कर ब्रह्मचर्य्यादि आश्रमोंका साधन करते हुए आयुको पूर्ण करते हैं वही मुक्ति उनको मिलती है तो बतलाईये कि जो धर्मात्मा पुरुष संध्या गायत्री आदिका जाप जपते हैं और वेदानुकूल यज्ञ हवन आदि अथवा और कई दया सत्यादि शुभकर्मों मे आयु व्यतीत करते हैं, और जो पापी हिंसक आदिक हिंसा झूठ चोरी व्यभिचार आदि कुकर्मोंमें आयु व्यतीत करते हैं, वे भी कल्प समाप्त होने पर मुक्तिको प्राप्त कर

लेते हैं तो अब आप ही विचारें कि धर्मात्माओं और पापियोंमें क्या भेदरहा अर्थात् धर्मात्माओं के धर्मका फल भी मुक्ति और पापिष्टों के पापका फल भी मुक्ति तो फिर पुण्य और पापमें क्या भेद रहा प्रत्युत पापी बड़े लाभमें रहे क्योंकि मनमाने काम (ऐसो असरत) भी कर लिये अर्थात् मांस खाना मदपीना व्यभिचार करना और हिंसा मिथ्यादि अनेक अत्याचार करलेने फिर कल्पके अन्तमें झट पट मुक्तिके परमानन्दमें जा सम्मिलित होना अर्थात् कल्पके समाप्त होने पर दोनों मुक्तिमें भेज दिये गये और विकल्पके समाप्त होने पर दोनों ही मुक्तिसे निकाल दिये गये, क्या इसी करतूर पर ईश्वरको न्यायकारी मानागया है, बस ऐसी मुक्ति को और ऐसे न्यायवाले ईश्वरको तो वही लोग मानेंगे जो शास्त्रोंके तत्वज्ञानसे अनभिज्ञ होंगे।

जज्जसाहब—हां जी आर्यसमाजियों में तो ऐसा ही मानते हैं हां इतना तो अन्तर है कि जैसे १२ घण्टे का एक दिन और १२ घण्टे की एक रात्रि होती है सो धर्मात्माओंको तो घण्टा दो घण्टे पहले मुक्ति मिल जाती है और शेष सब जीवों को १२ घण्टे ही की मुक्ति मिलती है।

श्री महासती जी महाराज–हा ! यह मुक्ति क्या हुई यह तो वड़ा ही अन्याय हुआ क्योंकि ऐसा माननेसे तो पूर्वोक्त धर्मात्माओ का धर्म ही निरर्थक हुआ और पापियों का पाप भी निष्फल गया क्योंकि जिन्होने अशुभ कर्म (पाप) किये उन को भी १२ घण्टेकी मुक्ति मिलेगी और धर्मात्माओ को भी १२ घण्टे की क्या हुआ जो तेरह चौदह घण्टेकी मिल गई। किसी ने कहा भी है कि--

"खञ्जर तले किसीने टुक दम लिया तो फिर क्या"

अर्थात् मुक्ति वह होती हे जो फिर जन्म मरण के दुःख का खटका न रहे (वंधसे अवंध होजाय) (फिर वंधमें न पड़े)यदि फेर वंधमे पड़ेतो मुक्ति कैसी।

(नोट) मुक्ति के विषय में।

नोट--श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने यह भी कहा हे कि, इस पूर्वोक्त कथनके अनुसार यह भी सिद्ध होता हे कि, इस समाजमें मुक्तिमानी ही नहीं क्योंकि,मुक्तिसे पीछे लौट आए तो पुनरावृतिः (आवागमन) ही रही जेसे और योनियोमेंसे। जैन में तो अपुनरावृतिः अर्थात् आवागमन से रहित होजाने को मुक्ति माना है जिसका कारण यह है

कि, स्थूल शरीर तो वारम्वार कर्मानुसार वनता है और टूटता है (विनाश) होता है परन्तु सूक्ष्म शरीर (अन्तःकरण) जिसको जैनमें तेजस कारमाण शरीर कहते हैं, जिसको मतान्तरी लोक कर्मक शरीर भी कहते हैं। जिसका गुण लक्षण विशेष करके राग द्वेष इच्छा संज्ञादि है अर्थात् इच्छा का (चाह का) होना है जो कर्मों का वीज रूप है वह परवाह रूपसे साथ ही रहता है जिसके कारण पुनः पुनः जन्म मरण होता है जैसे भूख का कारण जठराग्नि है यदि जठराग्नि बुझ जाय तो भूख नहीं लगती ऐसे ही जिसके राग द्वेष इच्छा संज्ञादि दोष ज्ञान वैराग्यादि के बलसे नष्ट होजाएं तो पूर्वोक्त अन्तःकरण भी नष्ट होजाता है। तब फिर जन्म नहीं होता जब जन्म नहीं तो मरण कहां इस प्रकार जन्म मरण (आवागमन) से रहित होजाता है अर्थात् स्थूल शरीर (देह) के त्याग के साथ ही सूक्ष्म शरीर (देह) अन्तःकरण का भी त्याग होजाता है तब विदेह आत्मा (मुक्तात्मा) होजाता है अर्थात् सर्वज्ञ सदैवके लिये सर्वानन्दमें रम रहता है। यथा श्लोक—

श्लोकः—दग्ध वीजं यथा युक्तं प्रादुर्भवति नाङ्कुरः।
कर्म वीजं तथा दग्धं नारोहंपि भवाङ्कुरः॥

अर्थः—जैसे जला हुआ वीज अङ्कुर पैदा नहीं करताहै तैसे ही जिसका अन्तःकरण चाहरूप बासनाओं का समूह कर्म वीज नष्ट होजाताहै वह भवाङ्कुर आरोपण नहीं करता अर्थात् जन्म धारण नहीं करताहै अर्थात् कर्म वन्धसे अवन्ध होजाताहै (मुक्त होजाताहै) इत्यर्थः नोट—इसविषयका अधिक स्वरूप देखना होतो श्री१००८महासती पार्वतीजी विरचित (मुक्ति निर्णय प्रकाश)नामक है पुस्तक जो सं० १९७२ वि० में छपाहै वहां से देख सकते हैं।

जज्ज साहव आपका यह उत्तर सुनकर प्रसन्नतापूर्वक कुछ ठहरकर आप वेदों को ही सत्य शास्त्र मानते हैं अथवा कोई और ?

श्री महासतीजी महाराज—क्या आप लोक वेदों के सिवा और शास्त्रों को नहीं मानते।

जज्ज साहव—नहीं।

श्री महासतीजी महाराज—क्यों ?

जज्ज साहव—वेद ईश्वरके वनाए हुए हैं इस लिये यही सत्य मानने योग्य हैं।

श्री महासती—मुसल्मान लोग कहते हैं कि, कुरान शरीफ़ खुदा का वनाया हुआ है, यह कैसे।

जज्ज साहब—चुप।

श्री महासती जी महाराज—इसमें यह तो बुद्धिमानोंको सोचना ही पड़ेगा कि दोनोंमें सच्चाई कहां तक है, पहले तो यह बतलाओ कि जिसको आप लोक ईश्वर कहते हैं, उसीको मुसल्मान खुदा कहते हैं व खुदा कोई और है।

जज्जसाहब—जिसको ईश्वर कहते हैं उसीको खुदा कहते हैं खुदाकी सृष्टि कोई और तो नहीं है।

श्री महासती जी महाराज—अब सोचने की बात यह है कि वेदोंका कर्त्ता भी ईश्वर है और कुरान शरीफ़का कर्त्ता भी ईश्वर ही ठहरा क्योंकि खुदा कोई और तो है ही नहीं इसलिये जिन कृतिओंका कर्त्ता एक है तो उन कृतिओंमें भेद कैसे आसकता है, परन्तु वेद और कुरानमें तो दिन रातका अन्तर है यह क्या।

जज्जसाहब—(कुछ सोचते रहे)

श्री महासती जी महाराज—सोचते क्या हो, क्या तो ईश्वर और खुदा न्यारे २ दो मानने पड़ेंगे और क्या वेद और कुरान इन दोनोंको एक मानना पड़ेगा क्योंकि एक ही कर्त्ताकी कृति होनेसे

केवल भाषा का भेद मानां जायगा जैसा कि वेद संस्कृतमें और कुरान अरबीमें-और क्या ऐसा माना जायगा जैसा जैन शास्त्रोंमें पाया जाता है कि ईश्वर निराकार होनेसे निष्कर्म है इस लिए न तो ईश्वरके बनाए हुए वेद हैं और नां ही खुदाका बनाया हुआ कुरान है, किन्तु वेद ऋषियोंने बनाए हैं और कुरान पैग़म्बरका बनाया है क्योंकि वेदोंमें उनके बनाने वाले ऋषियों के नाम भी आते है। जैसे (१) अग्नि (२) वायु (३) आदित्य (४) अंगिरा (५) मधुछन्दस (६) अघमर्पण (७) पराशर इत्यादि और कुरानसे भी सिद्ध होता है कि किसी पैगम्बर का बनाया हुआ है क्योंकि कुरान का पहला ही कल्मा यह है—

" बिस्मिल्ला अल् रहमान उल् रहीम "

जिसके शब्दार्थ यह हैं कि (बे) के अर्थ साथ (इस्म) के अर्थ नाम (अल्ला) के अर्थ पवित्र परमेश्वर (परमेश्वर कैसा है) (अल् रहमान उल् रहीम) के अर्थ निर्दोषो पर दया (कृपा) करने वाला और दोषीयों (पापीयों) को भी क्षमा करने (बखसने) वाला।

इससे सिद्ध हो गया कि कुरानके बनाने वाला

कोई और है क्योंकि वह बनाते समय कहता है कि पवित्र परमेश्वर जिसकी महिमा वर्णन कर चुका हूं उसके नामसे बनाता हूं यदि कहोगे कि कुरान खुदाका कलमा है (खुदाने खुद बनाया है) तो इसमें सवाल पैदा होगा कि कब और क्यों बनाया और अल्ला का अल्ला कौनथा जिसका नाम लेकर बनाता है वगैरा २ और इसके अतिरिक्त यह भी है कि परमेश्वर आप ही अपनी महिमा नहीं गाता ॥ अब आप इन तीनों बातोंमेंसे कौनसी को युक्ति युक्त मानोंगे ।

जज्जसाहब—(तनक धीरेसे) तीसरी ही ठीक जान पड़ती है, इसके पश्चात् उसदिन की सभा विसर्जित हुई ।

दोनों पार्टियोंका आपको मध्यस्थ बनाना

पाठक ? उन दिन आर्य्य समाजियोंकी दो पार्टियां होने वाली थीं जो प्रायः इन नामोंसे प्रसिद्ध थीं—

(१) घास पार्टी

(२) मास पार्टी

दूसरे दिन दोनों पार्टियोंके महाशय आपकी सेवामें उपस्थित हुए और उन्होंने आपके चरणोंमें यह प्रार्थना की कि हम आपको इस समय दोनों

पक्षोंके मध्यस्थ करना चाहते हैं अर्थात् आप हमारी दोनो पार्टियोंके संबंधमें अपनी सम्मति प्रगट करे कि प्रधान सम्मति किस पार्टीकी है।

इस पर श्री महासती पार्वतीजी महाराजने कहा कि ठीकहै? पहले घास पार्टी वाले बोले—हमारी सम्मातिमे मांस खाना और मद्यपीना अयोग्य है अर्थात् मांसका न खाना और मद्यका न पीना हम आर्य्यो का परम धर्म है आपकी इस विषयमें क्या सम्मति है।

इस पर आपने दूसरी पार्टीको कहा कि आप भी अपनी सम्मति प्रगट करे, तब मांस पार्टी वाले बोले कि हमारी सम्मति यह है कि जिह्वाके स्वादके लिये मांस मदिरा न खाना चाहिये परन्तु देहकी रक्षाके लिये अर्थात् रोग आदिक अवस्थामे खाने का दोष नहीं।

पाठक! देखिए कलियुगका प्रभाव कि अभी यह मत निकला और अभी इनमें फूट भी आ वसी जिसने सोसायटीमे ही भेद डालदिया।

जब श्री महासती पार्वती जी महाराजने दोनो पार्टियोंकी सम्मतियोंको सुन लिया तो कहा कि आपका यह कथन तो सत्य है कि मांस न खाना

और मद्य न पीना आर्य्य धर्म है परन्तु दूसरी पार्टी का यह कहना कि देह रक्षाके निमित्त खालेनेमें कोई दोष नहीं सो यह बात विचारणीय है। क्योंकि इस नियम से यह आवश्यक नहीं कि मांस मद्यके सेवनसे ही देहकी रक्षा होती है अर्थात् मांस और मद्यसे रोग अवश्य दूर हो जाते हैं नहीं नहीं मांस मद्य के सेवन करते हुए भी देहका नाश हो जाता है अर्थात् मांसाहारी भी अमर नहीं रहते इसलिये इस विनाशमान देहके लिये अपने आर्य्य धर्मके विरुद्ध मांस मद्यका सेवन करना मानो सत्य धर्मको छोड़ना है इस लिये सत्य सम्मति यही है कि आर्य्य धर्म मांस मदके सेवन करनेसे कदापि स्थिर नहीं रह सकता।

आपके इस निर्णयको सुन कर वे बहुत ही प्रसन्न हुए और सभासदोंमें से बहुतोंके हृदयमें यह चिन्ह होगया कि मद्य मांसके परित्यागका ही नाम आर्य धर्म है और सभा आपकी प्रशंसा करती हुई विसर्जित हुई।

महासती श्री पार्वती जी महाराजके उपदेश से उपकार।

बहुत भाइयोंने अभयदान (जीवरक्षा) के लिये कुछ रुपया जमा कर लिया और कई भाइयोंने

जूआ सतरञ्ज गंजफा चौपड़ आदिक का खेलना छोड़ दिया और कई भाईयोंने भांग, तमाकू, चड़स, गांजा, अफीम, चुरट, सिगरट, कोकिन, बीड़ी, पान आदिक सव प्रकारके नशा पैदा करने वाले पदार्थों के सेवन करनेका त्याग कर दिया और वहुत भाइयों ने हाड, चाम, का पहरना और शस्त्रकी जात चक्कु करद, छुरी, आदिकका व्यापार (वेचने) का परित्याग कर दिया।

और कई भाइयोंने गौ, वैल, वच्छा आदिक पशुओं का वूचड़ कसात्र आदिक मलेच्छोंके देना छोड़ दिया और कई भाइयोंने विवाह वरात आदिक में वेश्या भांड आदिकके नाच लेजाने (नाटक कराने का) त्यागकर दिया और वहुत भाइयोंने नित प्रति सामायिक का करना स्वीकार किया।

किं वहुना इस चतुर्मासामें रावलपिण्डीके श्रावक व श्राविकाओंने दान, शील, तप, भावना का वड़ा ही लाभ उठाया और दया पोसा लग भग डेढ़ सहस्र और सामायिक अनुमान डेढ़ लाख श्रावक श्राविकाओंमें हुई और आठके थोकड़े (अठाइऐ) १४ ग्यारह का थोकड़ा १ वारह का थोकड़ा १ तेरह का १ चौदह का १ पंद्रहके थोकड़े दो और पांच २ चार २ दिनके व्रत वहुत

हुए और आपके विहारसे पहले आपको पचरंगी तपस्या की भेंट दी गई चतुर्मासा समाप्त होने पर आपने वहां से विहार कर दिया ।
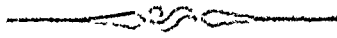
पाठकगण ! श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके जीवनके कथन सम्वत् १९४८ तक इस पुस्तकमें वहुत संक्षेपसे वर्णन किये जाचुके हैं, वाकी १९७० तकके वर्षों के कथन (वृत्तान्त) द्वितीय भागमें प्रकाशित करूंगा, जिसमें सत्यधर्म उपदेशिका वाल ब्रह्मचारिणी जैनाचार्य्या श्री श्री श्री १००८ महासती श्रीमती पार्वती जी महाराजके धर्म उपकार और मनोरञ्जक हितोपदेश जो आत्मज्ञान, वैराग्य, त्याग, तथा साधुधर्म, गृहस्थ धर्म, तथा ब्रह्मचर्य्य धर्म, क्षमा धर्म, विनय धर्म के विषय में और आर्य्य समाज, मूर्तिपूजक, तेरह पन्थी आदिकोंसे प्रश्नोत्तरों का कथन द्वितीय भागमें वर्णन करूंगा। जिनके पठन और श्रवण करने से स्त्री व पुरुष अपने आत्माके सुधार का महालाभ उठावेंगे अथवा जिन सज्जनों को श्रीमहासती पार्वती जी महाराजके दर्शन व व्याख्यान श्रवण करनेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ होगा वे सज्जन भी इस पुस्तक के पठन करनेसे श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजकी

विद्वत्ता, न्यायशीलता, तथा सत्यासत्य का विचार इत्यादिसे परिचित होजायेंगे और उनको गृह पर ही धर्मका लाभ प्राप्त होगा। और जैन धर्मके मन्तव्य (माननेके) योग्य और कर्तव्य (करनेके) योग्य नियम जो सम्वत् १९४८की मर्दुमशुमारीपर स्यालकोटमें डिपटी कमिश्नर साहिब बहादुरने लाला रूपेशाह पालेशाह ओसवाल म्यूनसीपल कमिश्नरोसेपूछा, कि आपकेनियम क्या हे, और जैनधर्मके मतभेदोंके विषयमें नौ प्रश्न पूछे तव उन्होंने उत्तर दिया कि आजकल श्री १००८ महासती श्रीपार्वतीजी महाराज रावलपिण्डीमे विराजमानहे उनसे पता लेकर अर्ज़ कर देवेंगे, फिर उन्होने महासतीजी की सेवामें पत्र लिख दिया, जिस के प्रत्युत्तर (जवाव) मे श्री महासतीपार्वतीजी महाराज ने जैन शास्त्रोंके अनुसार जैनधर्मके१०दस नियम लिख कर और नौ प्रश्नोंका उत्तर भी साथही लिखवादिया, जिसको लाला कृपाराम मन्त्री जैन सभा अमृतसर ने सम्वत् १९४९ वि०मे वाई राजमतीजी स्यालकोट निवासिनी की दीक्षा पर अमृतसरमें छपवाकर वांटे थे, फिर कई वार लुधिआना, पटिआला, जालन्धर, रावलपिण्डी, लाहौर आदि स्थानोंमे हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी, गुरुमुखी अक्षरो में प्रकाशित हो चुके हैं। यथा—

जैनधर्म के १० नियम।

(१) परमेश्वरके विषयमें—परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, अयोनि, अमर, अमूर्ति, निष्कलङ्क, निष्प्रयोजन, निष्कर्म, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्तशक्तिमान्, शिव, अचल, अरुज, अनन्त, अक्षय, परमपवित्र, सदा एक रस, आनन्दरूप, परमात्म पद को अनादि मानते हैं।

(२) जीवोंके विषयमें—जीव आत्माओं को अनन्त और अनादि मानते हैं।

(३) लोक (जगत्) के विषयमें—जड़ और चेतन के समूह जीव योनि रूप लोकको परवाह रूप अनादि मानते हैं।

(४) अवतारोंके विषयमें—वीतराग जिन देवों को जैनधर्म के बताने वाले धर्मावतार मानते हैं।

(५) मुक्तिके विषयमें—चेतनका कर्मोंके बन्धसे अबन्ध होकर परमात्मपद को प्राप्त करके सदैव सर्वज्ञ सर्वानन्द अवस्थामें रम रहने को मुक्ति मानते हैं।

(६) साधुधर्मके विषयमें—दया, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह, इन पाञ्च महाव्रतों के पालने वालों को साधु मानते हैं।

(७) श्रावक धर्मके विषयमें—शास्त्रों के सुनने वाले गृहस्थ सच्चे देव गुरु धर्म पर निश्चय करके सुमार्ग पर चलने वालों को श्रावक मानते हैं।

(८) परोपकारके विषयमें—जिनोक्त द्वादशाङ्ग सत्य शास्त्रों के पठन पाठन आदि से धर्म की वृद्धि करने को परोपकार मानते हैं।

(९) यात्रा धर्मके विषयमें—चतुर्विध संघतीर्थ के परस्पर धर्म विचार करने को यात्रा मानते हैं।

(१०) सिद्धान्तके विषयमें—श्रुतधर्म और चारित्र धर्म का सिद्धान्त मुक्ति का होना मानते हैं।

नोट—इन नियमों का सविस्तर अर्थ देखना चाहो तो जैनधर्म के नियम नामक छोटेसे पुस्तकके रूपमें (ट्रेकट) में देख सकते हो।

जैनाचार्य्या श्री १००८ श्रीपार्वतीजी महाराज के

जीवन चरित्र का
प्रथम भाग समाप्तम्

अशुद्धि शुद्धि पत्रम्।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१	११	निद्वान	विद्वान्
२	५	पृष्ठि	पृष्ठ
९	१	जाये	जाय
११	९	द्धय	द्धु य
१३	४	घा	धा
२३	६	शु	सु
२३	१८	विशेपत्र	विशेप
२४	३	प्यत	प्यत्
२४	२०	दरखत	द्रपत
२५	३	नर्म	वर्ष
२७	४	गुछ	गछ
२८	६	प्रवर्तनी	प्रवर्तिनी
२६	२	महाभाग	महाभाग्य
३७	१५	पधारे	पधार
३७	१७	फेर	फिर
४३	४	जायेगे	जायगे
४३	१०	श्रीमान	श्रीमान्
४३	९	इमाई	ईमाई
४४	११	जात	जाति
४८	११	पात	पाति
४५	२१	हिम्या।	हिंस्या
४६	३	अपने	अपनी
४६	१४	पट	पृट्
४७	५	शिष्ट	श्रेष्ठी
४६	१०	विप्रा	निपू
५१	३	विघार्डी	विघपार्डी
५१	८	नमे	नशे
५७	२०	स्त्री	स्त्रि
५६	१८	निशन	पिष्ण
६१	२१	निरादरी	वरादरी
६२	३	सवधीओं	सम्बन्धियों
६२	७	ननद	ननन्द
६२	१२	मनी	मनि
६३	७	श्रीव	श्रावि
६३	१३	आप	आपका
६३	१७	लाहारे	लाहौर
६४	१८	स्तोतर	स्तोत्र
६५	१८	प्रर्यू	पर्यू
६७	७	भेटा	भेंट
६७	१२	णी	नी
६७	२१	मान्	मान
७३	१३	पयान	प्रयाण
७३	१२	पला	पाला
७५	९	मसरा	मसारा
७६	१६	रण्डओं	रण्डिओं
७६	२०	द्विनिया	द्वितीया
७७	१०	रमन	रमण
७६	१६	सुफल	सफल
८२	१८	विराजी	विराजी
८३	८	की	को
८४	१०	पहुची	पहुचा
८७	८	" ?	,
८७	१०	।	?
८७	१६	धर	घर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
८८	१	द्वेत	द्वैत
८६	१६	दुखी	दुःखी
६२	१३	शारीरिक	शारीरक
१०२	१३	विद्वान	विद्वान्
१०३	१	होती	होता
१०४	१८	भाविक	भावक
१०६	६	कमके	कौमके
१०६	८	कलच	कुब्ज
१०८	१७	जाए	जाय
११०	१७	वुद्धिमता	वुद्धिमान्
११०	१८	पैसा	पैशा
११०	२०	वणज्य	वाणिज्य
१११	२	महजिद	मसजिद
१११	१३	अमका	अमुक
१११	२०	विस्मत	विस्मित
११२	३	आश्रु	अश्रु
११२	४	खेम	क्षेम
११२	११	अदव	अदाव
११३	२	उन्हे	वे
११३	४	हयवान	हैवान
११३	५	गांय	गाये
११३	५	वगेरा	वगैरा
११३	१६	पीय	पी
११५	८	अये	अय
११८	२	देवता	देवताः
११८	६	भाषन	भाषण
११८	१६	परयत्न	प्रयत्न
१२२	७	हुंडवी	हुंडी
१२२	६	परतीति	प्रतीति
१२५	१५	सहत	सहते
१२५	१७	भाइयों	भाईयो ?
१२६	८	विल्लि	विल्ली
१३७	१६	करनेके	करने
१३८	७	कारणां	काणां
१४०	११	निरूपम	निरुपम
१४२	६	गवन	गमन
१४२	१०	वेग	वैग
१४३	८	नर्क	नरक
१४४	३	शूद्रो	शूद्रों
१४५	१४	र्णो	र्णों
१४६	६	है	हैं
१४७	१४	हैं	हों
१५२	१३	गई	गईं
१५४	१५	मै	मैं
१५५	२	क	कम
१५६	७	देवा	देव
१६३	६	अकञ	अकज्ञ
१६८	११	थोड़ा	थोड़े
१६६	१	रहगई	रहगई कोई झाड़ीकी कोई पहाडी की और
१६९	८	दिए	दिया
१६९	९	रथनेमि	रहनेमि
१७०	४	पिंडीआं	पिण्डिआं
१७१	३	म्नु	न्तु
१७३	४	न कुल	गंधन कुल
१७३	१५	गरू	गुरू
१७४	८	किरोड़	करोड़
१७५	२	कूवेर	कुबेर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१६२	२	प्रधनाता	प्रधानता
१६३	२१	कैवंती	कैवर्ती
१८४	८	वान	वान्
१६४	१६	वान	वान्
१६६	२	और	तो
१६६	९	हाइ	हाई
१६७	६	परिक्षा	परीक्षा
१६६	१९	अवृत	आवृत
१६८	२१	वेवश	विवश
२०१	३	विपाद	विपवाद
२०३	५	चण्डाल	चाण्डाल
२०३	६	भींवर	भीवर
२०३	६	पामर	पामर
२०५	११	अग्रय	अग्रज
२०६	१३	कायिक	कायक
२०७	३	मुकदमे	मुकद्दमें
२१०	१८	श्लाक	श्लोक
२१०	१८	मद्दा	मद्दो
२११	१५	चौचे	चौथे
२१९	१०	के	की
२२०	५	समग्रह	समग्रह
२२१	४	श्रोत	श्रोत्र
२२७	११	अवतीर्ण	अनुतीर्ण
२३६	१७	पुच्छ	पूच्छ
२३६	१६	राद	राध
२४१	४	फारना	फरना
२४१	१७	श्रा	सा
१४४	१	साक्षि	साक्षी
२४५	१०	माइयो	माईयो
२४६	७	राजी	रामजी
२४८	२०	दक्षन	दक्षिण
२५०	६	शन	शान
२५०	१७	गीतम	गौतम
२५१	८	हैं	है
२५२	१३	कस्तुरी	कस्तूरी
२५५	३	रेगा	रता
२५५	७	पडेगा	पडता है
२५५	१८	दुकड	के दुकडके
२५६	१३	ब्राह्मणों से	ब्राह्मण से
२५६	११	अन्वार्थ	अन्वयार्थ
२६२	२०	वालो	वालों
२६३	१७	णाम्	णा
२६३	१८	ख्रिया	ख्रिप.
२६५	१३	दन्तु	तन्तु
२६५	२१	लिखने	लेख
२६६	३	ईर्षा	ईर्ष्या
२६७	२०	(अतिकठिन)	(अतिउत्तम)
२६७	२१	महाराने	महाराजने
२६८	१	पर्क	परक
२६८	३	को	के
२६८	४	पर्क	परक
२६६	७	आत्म	आत्मा
२७१	१०	गले	लगे
२७२	१८	कि किसी	किसी
२७५	१०	समा	सामा
२८५	११	भाई	माइ
२७६	४	मद	महा
२७७	६	मत्स्यादि	मत्स्यणादि
२७७	७	र्मो	सर्नो
२७७	९	पर्य्यपन	पर्य्यपण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२७७	१०	संव्रत	संवत्
२७७	१२	कड़ा	कड़ाह
२७८	४	हुश्यार	होशियार
२७८	७	लक्ष्मन	लक्ष्मण
२७९	६	१७१८	१७२०
२८७	१९	होता	होती
२८७	१९	रहा	रही
२८७	२०	शनै	शनैः
२८८	१	सतकारादि।	सत्कारादि
२८९	८	(सिकार)	(शिकार)
२८९	१०	जूंही	यूंही
२९०	५	सिवा	सिवाय
२९०	१७	प्रवेश	प्रविष्ट
२९१	२०	तदानन्तरानि।	तदनंतरही
२९२	४	धीर्य	धैर्य
२९२	१७	मत्यु	मृत्यु
२९५	२	पेद	खेद

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
२९५	७.	निखने	लिखने
२९५	७	अंत्राय	अन्तराय
२९६	८	मासे	मांसे
२९६	२०	अटाईयां	अठाइयां
३००	१८	नों	नां
३०४	१९	घण्टे	घण्टा
३०७	८	नामक है	नामक
३११	१४	आदिक	आदिकी

इत्यादि इन से अतिरिक्त इस पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटी यदि पाठक महाशयों की दृष्टि गोचर होय तो हितेच्छुवन कर हमको सूचना देने की कृपा करेंगे तो हम उनके आभारी होंगे और द्वितीयावृत्ति में शुद्ध कराने के अधिकारी होंगे. शुभं भूयात् ॥

* श्री जिनेन्द्रायनमः *

जैनाचार्य्या श्री १००८ श्रीमती पार्वतीजी के

जीवनचरित्र का

द्वितीय भाग ।

जिसको

लाला रलारामजी आनरेरी मैजिस्ट्रेट जालन्धर नगर के सुपुत्र ला० पन्नालालजी ने महासती श्री पार्वती जी महाराज के

बड़े २ उपयोगी और अमूल्य उपदेश रूपी रत्नों से अलकृत करके सं० १९७० वि० में उर्दू में लिखा—

और

ला० निहालचन्द्रजी के सुपुत्र ला० दयालचन्द्र जालधर वाले ने उर्दू से हिन्दी में अनुवाद कराकर

स० २४५० श्रीमन्महावीर, स० १९८० वि० में,

बाम्बे मैशीन प्रेस लाहौर में मैनेजर शरत् चन्द्र लखनपाल के अधिकार से छपा कर प्रकाशित किया।

प्रथमवार ५५०] सन् १९२३ ई० [मूल्य)

द्वितीय भाग सूचीपत्रम् ।

प्रस्तावना

ॐ असिआउसाय नमः

सज्जन पुरुषोंके हस्त कमलमें श्री १००८ श्री जैनाचार्य्या बाल ब्रह्मचारिणी अद्वितीय पण्डिता सत्य धर्म उपदेशिका **महासती श्रीमती पार्वतीजी महाराजके जीवनचरित्र** का द्वितीय भाग अर्पण करने में मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। इस पुस्तक में कैसे कैसे दयामय सत्यमय उपदेश रूप रत्न भरे हुए हैं जिनकी प्रशंसा करने में मेरी जिह्वा अशक्त है। इस पुस्तक में सत्यासत्य का निर्णय करने के लिये कई युक्ति युक्त और शास्त्रोंके अनुसार श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज के शास्त्रार्थ लिखे गए हैं जिनके पढ़नेसे सत्य धर्म के जिज्ञासु सत्य धर्म का निर्णय सहज ही में कर सकेंगे और इस पुस्तकमें यह भी दर्शाया गया है कि जिस जिस स्थान पर श्री महासती पार्वती जी महाराज के चातुर्मास हुए हैं वहां वहां के श्रावक व श्राविका व अन्य श्रोताजनोंने कैसे कैसे उत्तम,धर्म कार्य्य करनेके लाभ उठाए हैं जिनके पढनेसे पाठकोंके मन में भी धर्म का उत्साह व प्रेम उत्पन्न होगा तथा यह पुस्तक सोशल (सामाजिक) व मौरल (चरित्र सम्बन्धी) शिक्षाओं की खान है। इस द्वितीय भाग में जैनाचार्य्या श्री महासती पार्वती जी महाराज का संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त सं० १९४८ वि० से स० १९७० वि० तक का लिखा गया है जिसमें श्री महासती जी के देशदेशान्तरों में विचर कर परोपकार का करना अर्थात् जिनेन्द्र भाषित सत्य धर्म

दया क्षमादि का प्रचार करना और अनेक श्रेष्ठ कुल वन्ती स्त्रियों को दीक्षा का धारण कराना तथा ग्रन्थों का लिखना जिनमें आत्मा परमात्मा जैसे सूक्ष्म ज्ञान का स्वरूप तथा षट् लेषा का स्वरूप जो श्री महासती पार्वती जी महाराज ने अपनी सरल और सरस भाषा में कथन किये हैं मिलेंगे। और कई एक मतों के विद्वानों के प्रश्न और श्रीमहासती जी महाराज के यथार्थ उत्तर भी मिलेंगे जो विना अधिक सोच विचार के सत्यासत्यार्थ देखने के लिये विमल दर्पण का सा काम देंगे। किं बहुना लाला रलाराम जी आनरेरी मैजिस्ट्रेट जालन्धर नगर के सुपुत्र लाला पन्नालाल जी ने इस पुस्तकके लिखनेमें बड़ा ही परिश्रम किया है अर्थात् महासती श्री पार्वतीजी महाराज के बड़े २ उपयोगी और अमूल्य उपदेश रत्नों से इसको अलंकृत किया है। इस लिये सज्जन पुरुषों और धर्म के प्रेमी जनों का कर्त्तव्य है कि वे इस पुस्तक का यथा रीति प्रचार करें और सर्व साधारण की सेवामें सादर और बड़े बलसे इसके पढ़ने के लिये प्रेरणा करें॥

धर्मी पुरुषों का दास—

गुजरमल ऐसिस्टेन्ट सैक्रेटरी जैन सभा,

जालन्धर नगर।

सं० १९८० वि०

ॐ

जैनाचार्य्या श्री १००८ श्रीपार्वतीजी के

जीवनचरित्र का

दूसरा भाग

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज का रावलपिण्डी से विहार।

चातुर्मास्यके अन्तमें आपने रावलपिण्डी से विहार किया तब सैंकड़ों जैन तथा अन्य मतावलम्बी जन आपको पहुंचाने के लिये साथ हुए। कल्लरु, रोहतास नामक गांओमें दया धर्म्म रूप अमृत की वर्षा करती हुई आप कुंजाहमे पधारीं रावलपिण्डी के कई भाई व बाईयां भी वहां तक आपकी सेवा में आईं। यह बात प्रायः सब पर विदित है, कि पञ्जाब में बहुधा ओसवाल (भावड़े) खण्डेर वाल और अग्रवाल अधिक संख्यामें जैन धर्म्मके अनुयायी पाए जाते हैं,परन्तु थोड़ी संख्या क्षत्रिय और ब्राह्मण

आदिकों की भी इस सत्य धर्म्मके पालन करने वाली है । कुंजाह (ज़िला गुजरात) में केवल खत्री व कुछ एक ज़िमींदार जाट लोगों के ही थोड़े से घर हैं, जो जैन धर्म्म का तन मन धन से पालन करने वाले हैं, सुतरां रावलपिण्डीके जो लोग श्री महासती पार्वती जी को कुंजाह तक पहुंचाने आये थे, उन खत्री सज्जनोंने उनका आदर सत्कार अर्थात् खान पान व निवासादि का प्रबन्ध बड़े उत्साहसे किया। उनके अतिरिक्त स्यालकोट के चालीस भाई भी वहीं बिनती के लिये आ उपस्थित हुए । उनकी सेवा सुश्रूषा भी उन सज्जनों ने बड़ी प्रसन्नता और प्रेम पूर्वक की, दो तीन दिन तक आप वहां धर्म्मोपदेश देती रहीं ।

आपका स्यालकोट पधारना ।

कुंजाह से आपने स्यालकोट को विहार कर दिया, रास्ते में चनाब नदी पड़ती है, जब आप नदी के निकट पहुंचीं, तो श्रीमतीजी के साथ जो भाई थे, उन्होंने स्टेशन मास्टर से कहा कि, हमारे गुरुदेव महाराज रावलपिण्डीसे आये हैं, स्यालकोट जा रहे हैं । यदि नौका पर नदी पार करेंगे, तो

उनका तीन दिन और तीन रात्रि का निरन्तर व्रत रखना पड़ेगा, इस लिये हमारी इच्छा है कि आप उनको रेलवे पुल पर से पार जाने की आज्ञा दे देवें। स्टेशन मास्टर ने उत्तर दिया कि, साधारणतया किसी यात्री को पुल परसे पार जाने की आज्ञा नहीं है, हां उनको रेल पर सवार कराकर पार उतर वा सकता हूं। भाई बोले कि, यह मुख वस्त्रिका (मुखपट्टी) वाली जैन साध्वी हैं, यह जैन साधु व साध्वी जी अपने पास धन धातु कौड़ी पैसा आदिक नहीं रखते हैं, और ना ही किसी प्रकार की सवारी करते हैं, इनका नियम इतना कठिन है कि,इनके निमित्त हम लोग भी खान पान व पहनने की कोई वस्तु खरीद करदेवें तो यह महात्मा कदापि अंगीकार नहीं करते। स्टेशन मास्टर साहब श्री सजीजी की ऐसी कठिन वृत्ति सुनकर बोले,यदि ऐसे त्यागी साधु हैं तो मैं भी उनके दर्शन करता हूं। वे स्वयं उपस्थित हुए और दर्शन करते ही पुल परसे पार जाने की आज्ञा दे दी। और स्वयं भी साथ होगये और बड़ी भक्तिसे आपको पुलसे पार पहुंचा कर प्रार्थना की कि, आज मेरे घर ही भोजन की कृपाकरे। आपने उत्तर दिया कि हमारी वृत्ति ऐसी नहीं है कि, जो

हमारे लिये भोजन बनाया जाये अथवा मोल लिया जाय, हम उसको ग्रहण करें। हम लोग जैन साधु व साध्वी श्रेष्ठाचारी गृहस्थियों के घरोंसे मर्य्यादानुकूल भिक्षा लाकर भोजन करते हैं। यदि आप भक्ति करना चाहते हैं तो कुछ त्याग आदिक की भेंट करें अर्थात् मद, मांस आदि को छोड़ देवें। उन्होंने उत्तर दिया कि महाराज मैं खत्री हूं, मांस नहीं खाता, हां कभी विवाह शादीके अवसर पर खाना पड़ जाता है, परन्तु शराब छोड़ देता हूं अस्तु आपने उनको शराब का त्याग करा दिया।

पाठक ! देखिये सन्तोंके समागम का कितना लाभ है। भक्त तुलसीदासजी ने सत्य कहा है:—

सुत दारा अरु लक्ष्मी, पापी घर भी होय।
सन्त समागम हरिकथा, तुलसी दुर्लभ दोय ॥

वहांसे विहार करके आप स्यालकोटमें विराजमान हुईं, और दयामय सत्य धर्म्म का प्रचार करने लगीं। आपके ज्ञान और वैराग्यसे भरेहुए हितोपदेशों को सुनकर श्रोताजन बड़े ही आनन्द को प्राप्त होते थे।

श्रीमतीराजमतीजी को वैराग्य।

जब आपके प्रभावशाली व्याख्यानोंसे जगत्

की अस्थिरता का फोटो श्रोताजनों के हृदयों में खिंच गया, तो वहां के लोगों को धर्म्म की ओर वड़ी लगन होगई। लाला खुशहाल शाहजी श्रावक की कन्या श्रीमती राजमतीजी पर तो ऐसा प्रभाव पड़ा, कि उन्होने दृढ़ सङ्कल्प कर लिया कि,अपने मनुष्य जन्म को इस नश्वर संसार के सुखोंमें नष्ट न करूंगी, प्रत्युत इस मनुष्यत्व को जो कि वड़ी कठिनाई और किसी महान् पुण्योदयसे प्राप्त हुआ है, पांच महाव्रत धारण करके, श्रीमहासती पार्वती जी महाराज जैसी गुरुणी जी की सेवामें लगाकर सफल करूंगी । श्रीमती जीके सुसराल पुजेरे (मूर्त्ति पूजक) थे, परन्तु श्रीमती जी ने इसके सम्वन्ध में कुछ भी पर्वाह न की, और अपने सङ्कल्प पर दृढ़ता से स्थिर रहकर,सवसे पहले अपने पिताजी खुशहाल शाहसे आज्ञा मांगी। उन्होंने उनको अपने सङ्कल्प में दृढ़ देखकर उन्हें उनके सुसराल के हां जम्मू इस विचारसे भेज दी कि कदाचित् वे इसके विचार को वदल देवें ।

श्रीमतीजी लाला देसराज ओसवाल पुजेरे जम्मु निवासी की भौजाई और जयदयालमल्ल की धर्म पत्नी थीं। वहां पहुंचकर उन्होंने अपने पति से

संयमवृत्ति के धारण करने की आज्ञा मांगी, जिस पर लाला जयदयालमल्ल बोले कि तेरी आयु अभी बीस वर्ष की है। यह धन सम्पति और आभूषण आदि संसार के सुख तुझको प्राप्त हैं, फिर साधु बननेकी इच्छा क्यों करती हो ?

श्रीमतीजी—इसलिये कि यह जगत् के पदार्थ अनित्य हैं इनका स्वरूप सायंकालके बादलों की न्याई क्षणभङ्गुर है। यह यौवन भी बर्फ़ की न्याई ढल जाने वाला है। इसलिये इन नाशवान पदार्थों पर भरोसा करके अपने धर्म्म के समयको कभी भी नष्ट न करूंगी जिस प्रकार कर तल पर रखा हुआ जल बिन्दु बिन्दु करके गिर जाता है, इसी प्रकार हमारे शुभकर्म्मोंका समूह व समय क्षण क्षणमें घट रहा है, कौन जानता है, कि किसी की कितनी आयु शेष है जब कि यह निश्चय सब को है कि एक दिन मर जाना है और यह भी निश्चय है कि भले कर्म का फल भला और बुरे कर्म का फल बुरा है, तो फिर क्यों न भले कर्म्मों का प्रयत्न किया जाय। अब मुझे आज्ञा देदीजिये कि मैं जैन साध्वी होजाऊं ॥

पति—शास्त्रों में तो यह लिखा है कि भुक्त भोगी होकर वृद्धावस्था में योग लेना चाहिये,

श्रीमतीजी—हमने तो ऐसा सुन रक्खा है कि शास्त्रोंमें आयुके प्रत्येक भागमें योगलेना उचितमाना गयाहै,केवल आठवर्ष तक बाल्यावस्थाका योगलेना अनुचित है, और जो आपका विचार है, वह भी प्राचीन समयमें कभी ठीक माना जाता था क्योंकि, उस समय आगम कालके जानने वाले महात्मा भी तो होते थे जो बतला देते थे कि, अमुक मनुष्य की आयु इतनी शेष रहती है, परन्तु इस कलियुगमें कौन जानता है, कि कब मृत्यु का संदेश आयेगा।

जैनशास्त्रों में लिखा है कि, मनुष्य को हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह आदि प्रत्येक अवस्था में त्यागने के योग्य हैं, और अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य्य, अपरिग्रह यह प्रत्येक अवस्था में धारण करने के योग्य हैं। इस लिये जैन ऋषि वैरागी त्यागी प्रत्येक कालमें व प्रत्येक अवस्था मे हिंसा आदिका परित्याग करके दया आदिका पालन करते हैं। झूठको तज कर सत्यकी शरण लेते है। ब्रह्मचारी बन कर आत्मानंद लेते हैं (पांच महाव्रत रूप) साधुवृत्ति का पालन करते हैं।

देखिये श्रीकृष्ण जी महाराज के छोटे भाई श्रीगज सुखमाल जी महाराज जिन्होंने अपने

विवाह कराने से पूर्व ही योग धारण कर लिया, और इतना कठिन साधन किया कि तीन दिनके अटल तप और शुद्ध ध्यानसे अष्ट कर्म का नाश करके मोक्ष हो गए। इसी प्रकार श्री जम्बू स्वामी जी महाराजने प्रौढ़ायुवावस्था में संयम लिया, और अपनी आठों स्त्रियोंको भी बाल ब्रह्मचारिणी रहने का उपदेश देकर पांच महाव्रत धारण करवाकर अर्थात् जैन साध्वी बनवाकर तार दिया, और इसी प्रकार स्वयं श्री १००८ श्री तीर्थङ्कर महाराज श्री १००८ श्री मल्लीनाथजी महाराजने विवाह नहीं करवाया, युवावस्था में ही योग लेलिया।

पति—अश्रु परिपूरित नेत्रों सहित बोला, तो फिर यह धन हम किसके लिये कमाएंगे, तेरे बिना घरमें किसको देखेंगे ?

श्रीमतीजी—तो फिर आप भी संयम धारण कर लीजिये।

पति—मोह के कारण संयम ले लिया, परन्तु बिना वैराग्य के कैसे निभ सकेगा।

श्रीमती जी—जैसे आप बिना वैराग्यके संयम नहीं पाल सकते ऐसे मैं भी वैराग्यके उत्पन्न होने पर गृहस्थाश्रममें नहीं रह सकती आप दूसरा

विवाह करा सकते हैं, परन्तु मुझे कृपा करके आज्ञा देदेवें ।

पति—तुम्हारे सब सम्बन्धी तुम्हारे साथ इतना मोह करते हैं, तुम्हारे गृह में इतना धन (ऐश्वर्य्य) विद्यमान है, क्या तुम सबसे ही मोह छोड़ दोगी ?

श्रीमती—मेरे मनमें यह निश्चय हो गया है कि यह सांसारिक सम्बन्ध सब स्वार्थके हैं । इस संसारमें बिना स्वार्थके अपना कोई भी नहीं है,जो कुछ है वह सब इस मोहका ही जाल बिछ रहा है, जिसमें फंस फंस कर अनेक जन्म व्यर्थ गंवाए हैं। अब कुछ धर्म्मकी बुद्धि उत्पन्न हुई है, अतः अब अपना जन्म सफल करूं । इस प्रकार एक वर्ष तक निरन्तर प्रश्नोत्तर होते रहे। अन्तमें श्रीमतीजी को अपने धर्म पर अटल पाकर पति ने आज्ञा देदी और कहा कि मैं तुझे अपने हाथसे जिस घर से विवाह कर लाया हूं उसी घरमें तुम्हें सौंप आता हूं। सुतरां वह श्रीमतीजी को अपने साथ स्याल-कोट ले गए, और अपने श्वसुर से कहा, कि लो आपकी पुत्री आप के सुपुर्द है । इतना कह कर वापस चले गए, और उनकी सगाई किसी अन्य

स्थान अन्य कन्या से हो गई ।

जब श्रीमतीजी ने अपने पतिसे आज्ञा प्राप्त कर ली तो अपने पिताजी और भाईजी से आज्ञा मांगी । उन्होंने भी श्रीमतीजी को आज्ञा देदी, और कहा कि हम दीक्षा दिलवानेकी विधि नहीं जानते, और ना ही हम में इतना साहस है कि तुझे अपने हाथों से साध्वी बनादें । इसलिये उचित प्रतीत होता है कि जो मेरा श्वसुर अर्थात् तेरा नाना लाला सुखानन्दजी श्रावक अमृतसर निवासी हैं, तुम उन के पास चली जाओ और जैसी वे आज्ञादें वैसा करो, अस्तु पिताजी के कथनानुसार श्रीमतीजी अपने भाई ला० नत्थूरामके साथ अमृतसर चली गई, और वहां जाकर अपने नानाजी के सन्मुख सब बात कह सुनाईं । लाला सुखानन्द जी श्रावक साहुकार जो अपने धर्म्मसे भली भान्ति परिचित थे, और अमृतसर के मुख्य श्रावकों में से थे । उन्हों ने जब सम्पूर्ण वृत्तान्त श्रीमतीजी के मुखसे सुनलिया, तो श्रीमतीजी का हार्दिक वैराग्य भाव देखकर कहा कि हे पुत्री ! तू धन्य है जो इस अवस्थामें और सब पदार्थोंके होते हुए योग धारण करना चाहती है, और धन्य है तेरी माता जिसकी

कुक्षिसे तू ऐसी श्रेष्ठ पुत्री उत्पन्न हुई है, फिर यह भी कहा कि देख अज्ञानिन स्त्रियां जो विना मिले पदार्थों की इच्छा रखती हैं, और प्रत्येक दुःख को सहन करती हुई भी अर्थात् विधवा होनेपर भी खान पान, शृंगार, आभूषण और वस्त्रादिकसे प्रीति नहीं हटाती हैं, परन्तु यह फल तुझ को सत्य उपदेशका ही है, जो अपना जीवन धर्म परायण करती हो। मैं प्रसन्नता पूर्वक तुझे संयम धारण करने की आज्ञा देता हूं। इस पवित्र संकल्प को शीघ्र पूरा कर और साथही श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजको अमृतसर पधारनेके लिये स्यालकोट सविनय विनती पत्र लिखभेजा और उक्त श्रीमतीजीने तदनुसारहीकिया।

श्रीमती राजमतीजी का संयम धारणकरना

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने लाला सुखानन्द श्रावक अमृतसर वालेकी विनती स्वीकारकर के स्यालकोट से विहार कर दिया, और थोड़े ही दिनों मे अमृतसर पधारगई। वैरागिन बाई श्रीमती राजमती के नाना ने दीक्षाकी तिथि वैशाख शुदी १२ सोमवार स०१९४९ वि० नियतकी, और अमृतसर की विरादरी को यह कहा, कि बाईजी की दीक्षा

के महोत्सव पर तो मैं अपने पाससे रुपया लगाऊंगा परन्तु जो भाई व बाई बाहरसे इस शुभ मुहूर्त पर पधारेंगे उनका आदर सत्कार आप कर सकते हैं इसमें मुझे कोई तर्क न होगा। विरादरी इस बात पर बड़ी प्रसन्न हुई, और लाला सुखानन्द जी के कथनानुसार उन्हों ने दूर दूर तक के लोगों को सूचना भेजदी कि इस नियत तिथि पर इस पवित्र कार्य्य में सम्मिलित होकर सुशोभित करें। अतः इस पवित्र अवसर पर रावलपिण्डी, होश्यारपुर, जालन्धर, लुधियाना और अम्बाला आदि नगरों से सैकड़ों बाई व भाई आगए। उन का आदर सत्कार लाला श्रद्धाराम, भानाशाह, सोहनलाल, कृपाराम, हरजसराय आदि जैन बिरादरी अमृतसर ने तन मन धन से किया और प्रोशैसन भजन मंडलियों सहित नगरके बड़े बड़े बाजारों से होता हुआ उस भवन पर पहुंचा, जिसमें श्रीमहासतीजी महाराज पहले ही विराज गई थीं।

पाठक ! एक साहुकार की कन्या २०, २१ इकीस बर्ष की आयुमें अपने पतिसे आज्ञा लेकर संसारके सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों को नाशमान समझ कर त्यागदे, और जैन जैसी कठिन साधुवृत्ति स्वीकार

करे,-और उनका नाना स्वयं अपने हाथोंसे दीक्षा दिलवाए,उस समय जो वैराग्यका चित्र दर्शकों के हृदयों पर अंकित हुआ उसका वर्णन करने की मेरी लेखनी में शक्ति नहीं है पाठक स्वयमेव विचार कर सकते हैं। भवन ऐसा सुन्दर और इतना विस्तीर्ण था, कि जिसके अन्दर चार पांच सहस्र नर नारी समा सकते थे, वह सब ठसाठस भर गया, जो अन्दर न आसके वे बाहर रहे। सबके सन्मुख श्रीमतीजी को पांच महाव्रतरूप संयम विधिपूर्वक धारण कराया गया। प्रत्येक नर नारी के मुख से इस कन्या की सच्ची वीरता के वचन निकालते थे अर्थात् लोग कहते थे कि हम सुना करते थे कि प्राचीन काल मे भर्तृहरि, गोपीचन्द, मीरांबाई आदिकने राज्य छोड़कर योग धारण किया था, परन्तु आज इस लड़की के योग धारण करने का दृश्य हम साक्षात् देखकर अपने नेत्र और हृदयों को पवित्र कर रहे हैं। कृतार्थ है इस लड़की का जन्म और धन्यहैं इसके माता पिता व लाला सुखानन्दजी।

दीक्षा के पश्चात् जितने दिन श्रीमहासतीजी महाराज अमृतसर में रहीं, प्रत्येक जाति की स्त्रियों की मण्डलियां उनके दर्शनों को आती रहीं, और

सत्य सन्तोषादि शिक्षाओं का लाभ उठाती रहीं।

आपका चातुर्मास्य सं० १९४९ वि० का लाहौर में दूसरी वार।

आपने अमृतसरसे विहार करके लाहौर में चातुर्मास्य किया लाहौरकी विरादरीने यथाशक्ति धर्म्म में अच्छा उद्यम किया, और दान तप भी यथाशक्ति करते रहे। आप अपने पवित्रज्ञान और वैराग्यसे भरे हुए उपदेशों से उनके हृदयों में धर्मामृत सींचतीं रहीं। चातुर्मास्य की समाप्ति पर आप अमृतसर जंडियाला में धम्मोंपदेश करती हुई जालन्धर नगरमें पधारीं। जालन्धरमें आप नौह-रियों के बाज़ार में राय सेठ चांदमलजी चीफ़ ख़ज़ानचीकी कोठीमें विराजमान हुईं। वहां नित्य प्रातःकाल आपके व्याख्यान होने लगे। कुछ ही दिनों के अन्दर आप के प्रभावशाली व्याख्यानों की चर्चा नगर भरमें फैल गई। लगभग चार सौ पांच सौ मतमतान्तरोंके पुरुष व स्त्रियें श्री महासती जी के लैक्चरों से लाभ उठाती थीं। लाला सालिग राम जी के पुत्र लाला देवराज जी जालन्धर नगर के आनरेरी मैजिस्ट्रेट आप के व्याख्यान सुनने

आते थे, और प्राय: कन्या महाविद्यालयकी कन्याओं को अपने साथ लाते थे, और उपदेश सुनकर कन्याओं को ऐसी शिक्षा देते थे, कि देखो श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज भी तो स्त्री हैं, परन्तु यह विद्या का ही प्रभावहै, कि ऐसी विद्वानों की सभामें निर्भयता से दया, क्षमा, शील, सन्तोष आदि का स्वरूप बतला कर मनुष्यों का उद्धार करती हैं, तुम भी विद्या पढ़ने का उद्यम करो और महासतीजी की न्याईं लैक्चर देना सीखो ताकि संसार का उद्धार हो ॥

आर्य्य समाजियों का ईश्वर कर्त्ता पर शास्त्रार्थ

पौष मासमे क्रिसमिस की छुट्टियों के अन्दर जब कि श्री श्री श्री महासतीजी महाराज ईश्वर, जीव और जड़ प्रकृतिके स्वरूप को श्रोताजनो के हृदयों पर प्रकटकर रहीं थीं, इन दिनोंमें इसी नगर में आर्य्य समाज का वार्षिक उत्सव भी था, और बहुत से आर्य्यसमाजके मेम्बर हुजूरके प्रभावशाली लैक्चरोंकी प्रशंसा सुनकर आपकी सेवामे उपस्थित हुए। उन्होंने प्रश्न किया कि आप यह बतलाएं कि जैन और वैदिकमत में क्या भेद है ? आपने उत्तर दिया, कि यूं तो अनेक भेद हैं, परन्तु दो भेद प्रधान

हैं (१) ईश्वर के विषयमें। (२) मुक्तिके सम्बन्धमें। इस पर उन्होंने हुजूरसे कुछ प्रश्न करनेके लिये समय मांगा। आपने उन की प्रार्थना को स्वीकार किया और मध्यान्हके पश्चात् दो से चार बजे तक समय दिया। नियत समय पर आर्य्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता और मैम्बर हुजूरकी सेवामें उपस्थित हुए और प्रणाम करके बैठ गये। इनके साथ जो प्रश्नोत्तर हुए वे अधोलिखित हैं।

आर्य्य समाज—आप ईश्वर को मानते हैं या नहीं ?

महासतीजी महाराज—मानते हैं।

आर्य्य समाज—आप ईश्वरको कैसा मानते हैं?

महासतीजी महाराज—सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, सच्चिदानन्द, अजर, अमर, अमूर्ति, निष्कलंक, निष्प्रयोजन, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, अनन्त शक्तिमान्, शिव, अचल, अरुज, अक्षय, परम पवित्र, सदा एक रस, आनन्द रूप, अनादि मानते हैं।

आर्य्य समाज—जो आपने ईश्वरके गुण वर्णन किये हैं, यह तो सब सत्य हैं, परन्तु आप ईश्वर को कर्त्ता मानते हैं किम्वा नहीं ?

महासतीजी महाराज—ईश्वर कर्त्ता होता तो

क्यों न मानते, अवश्यमेव मानते।

आर्य्य समाज—तो क्या ईश्वर कर्त्ता नहीं है?

महासतीजी महाराज—आप ही विचारें कि ईश्वर कर्त्ता किस पदार्थ का है, अर्थात् पदार्थ तो संसारमें केवल दो ही हैं, एक चैतन्य और एक जड़। इनके अतिरिक्त तीसरा पदार्थ न कभी था, और न अब है, और न भविष्यत् में होगा। अब आप ही सोचें कि ईश्वर एक नया जीव अर्थात् चैतन्य और एक नया जड़ अर्थात् परमाणु बना सकता है?

आर्य्य समाज—(कुछ ठहर कर) नहीं।

महासतीजी महाराज—फिर ईश्वर किस पदार्थ का कर्त्ता माना जाय। क्योंकि सत्यार्थ प्रकाश में दयानन्द सरस्वती जी ने भी लिखा है कि ईश्वर; जीव, और प्रकृति यह तीनों अनादि हैं, अर्थात् किसी के बनाए हुए नहीं हैं।

आर्य्य समाज—ईश्वर को कर्त्ता न मानें, तो क्या जीव कुछ कर सकता है, बतलाइये कोई मनुष्य एक आंख भी बना सकता है?

महासतीजी महाराज—हां बना सकता है।

आर्य्य समाज—कैसे?

महासतीजी महाराज—औज़ारों से क्योंकि

औज़ारोंके बिना तो आपका ईश्वर भी आंख नहीं बना सकता ।

आर्य्य समाज—वे कौन से औज़ार हैं ।

महासतीजी महाराज—आंख बनानेके औज़ार गर्भ में ही होते हैं अर्थात् आंख गर्भ में ही बनती है, यदि आपका ईश्वर औज़ारों के बिना अर्थात् गर्भके बिना आंखें बना सकता है, तो ईश्वर आकाश से बनी बनाई आंखें अंधोंके लिये भेज दिया करे सो ऐसा होता ही नहीं है, इसलिये जो पदार्थ बनते हैं वे अपने अपने नियमानुसार निमित्तोंसे बना करते हैं। इसी प्रकार बहुतसे प्रश्नोत्तर होते रहे, जिनसे यह सिद्ध होगया, कि वास्तव में ईश्वर कर्त्ता नहीं है, वरञ्च प्रत्येक जीव अपने अपने कर्म्मोंके कर्त्ता और भोक्ता है। इस विषयका विशेष स्वरूप देखना हो तो सम्यक्त सूर्य्योदय जैन ग्रन्थ जो श्रीमहासतीजी पार्वतीजी महाराज का बनाया हुआ है उसमें देख सकते हैं वह लाला निहालचंद दयालचंद पुस्तकों वाले जालन्धर शहर से मिल सकता है व लाहौर सैदमिट्ठा बाजार मेहरचन्द्र लक्ष्मणदास जैन से भी मिल सकता है। अस्तु प्रसन्नता पूर्वक सभा विसर्जित हुई ।

आपके दयामय सत्य उपदेश से उपकार।

राय पोहलोमल जी सूद एक्स्ट्रा ऐसिस्टैन्ट कमिश्नर शाहकोट निवासी आपके व्याख्यान बड़े प्रेमसे सुनते रहे, जिनका उन पर यह प्रभाव हुआ कि उन्होंने विना किसी की प्रेरणा के अपने आप सभा में खड़े होकर मांस भक्षण का त्याग करवा लिया। और वे अपने इस नियममें अन्तिम श्वास तक स्थिर रहे। क्योंकि एक वार जव कि वे वड़े वीमार होगए थे तो डाक्टरने उनको मांस खाने के लिये वहुत कहा, परन्तु उन्होंने अपने नियम को न छोड़ा और पुण्य योग्य वे रोग से वच भी गये। लाला रग्घुमल खत्री अलावलपुर ज़िला जालन्धर निवासी कभी २ आपके लेक्चर सुना करतेथे, उन्हों ने यह लाभ उठाया कि उनकी जातिमें यह रीति थी, कि वालककी शिखा रखनेके समय एक वकरे का वध तो अवश्य किया जाता, और इसके अतिरिक्त जितने चाहें, किये जाते थे। लाला रग्घुमल ने इस हत्या का त्याग कर दिया। और अपने पुत्रकी चोटी रखनेपर मांसके स्थानमें कड़ाह प्रसाद तैयार करवाया। इस पर इनकी विरादरी में तू तू मे में होने लगी कि यह नई रीति क्यों

हुई ? तब लाला रग्घुमलने उत्तर दिया, कि एक तो अपवित्र वस्तुके स्थानमें पवित्रका मिलना और एक पापसे बच कर धर्मका पालन करना फिर नई रीतिमें क्या हानि है, तब सबने स्वीकारकर लिया, और उस दिनसे उनकी जातिसे यह हत्या रूप कुरीति बंद होगई ।

ऐसे ऐसे अनेक उपकार करके आपने जालन्धर से विहार कर दिया और छावनी होकर फगवाड़ा पधारीं ।
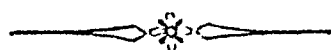
फगवाड़े में व्याख्यान दयाके विषयमें ।

फगवाड़े में आप ने जीव दया के विषय पर व्याख्यान दिया कि जैनसूत्र उपासक दशांग और आवश्यक सूत्रमें श्रीमद्भगवान श्रीमहावीर स्वामी जी ने ऐसा कहा है कि सब प्राणिमात्र की रक्षा करना ही परमधर्म्म है । जो प्राणि जंगम (चलने फिरने वाले) कीटसे लेकर हाथी पर्य्यन्त हैं, उनकी मन वचन और कर्मसे हिंसा न की जावे तथा उनको त्रास भी न दिया जावे ।

यथा सूत्र (१) बन्धे (२) वहे (३) छविच्छेए (४) अइभारे (५) भत्तपाणवोच्छेए इति सूत्रम् ।

अर्थ—(बन्धे) गौ, भैंस, घोड़ा, गधा, बैल आदि तथा पक्षी तोता, मैंना, कबूतर, तीतर, बटेर आदिकों को गाढ़ बन्धन न बांधा जावे।

(वहे) ऊपर लिखे जन्तुओंको लकड़ी व कोड़े आदि से अधिक क्रोधके आवेषमें आकर न मारा जावे।

(३) (छविच्छेए) घोड़े, बैल, कुत्ते आदिके कान पूंछादि को विना कारण न कटाया जावे, और घोड़े बैल आदि को कोई विशेष कारणके वध्या (खस्सी) न कराया जावे और रोग हटानेके अतिरिक्त तप्त लोहेका दाग न लगाया जावे।

(४) (आइ भारे) घोड़े, बैल, ऊंट, गधे आदि पर उनकी शक्तिसे अधिक बोझ न लादा जावे। और नाही उनकी शक्ति से अधिक मंजिल करवाई जावे।

(५) (भत्तपाण वोछेए) गौ, भैंस, बकरी, घोड़ा, बैल, गधे आदि जन्तुओं को भूखा व प्यासा न रक्खा जावे। और ना ही समयसे कुसमय ही किया जावे और बूढ़े पशुओं को न बेचा जावे प्रत्युत उन की रक्षा की जावे। क्योंकि उन के यौवन काल में उनसे काम लेकर धन कमाया और सुख प्राप्त किया है, इन्हें बेचना मानो इन्हें मृत्युकूपमे धक्का देना है, और कृतघ्नताके दोष का भागी बनना है, इसलिये

निरपराधीको कदापि न मारना चाहिये। दयापालन का नाम ही मनुष्य धर्म्म है। दया के विना मनुष्य पशुके समान भी नहीं हो सकता। इसपर महासती श्रीपार्वतीजी ने एक दृष्टान्त सुनाकर उपदेश दिया।

दृष्टान्तः—सुन्दरपुर नगरके वाहरएक वाटिका में एक साधु महात्मा व्याख्यान दे रहेथे, और वहुत से लोग श्रवण कर रहेथे। और कई लोग इधर उधरसे आते जाते भी खड़े होजातेथे, एक शिकारी जो वंदूक लिये शिकारको जारहाथा वह भी वहां ठहर गया उस वक्त साधु महात्मा यह उपदेश दे रहे थे (१) आत्मघाती महापापी (२) विश्वासघाती महापापी, (३) गुरु द्रोही महापापी, (४) झूठी साक्षी देने वाला महापापी, (५) कृतघ्न अर्थात् किसी के किये हुए उपकारको भूलजाने वाला (उसके साथ बुराई करने वाला) महापापी, (६) दुष्ट सम्मति (खोटी सलाह) देने वाला महापापी, (७) पचक्खानके तोड़ने वाला अर्थात् त्यागी हुई वस्तुके ग्रहण करने वाला महापापी, (८)स्थावर जंगम जीवोंका हिंसारूप यज्ञ हवन आदि तथा और जीवघात झटका व हलाल आदिकके नाम से जीवघात करनेमें धर्म्म कहने वाला महापापी, इत्यादि उपदेश करके साधु महाराजने कहा, कि

श्रोताजनों तुम कुछ नियम पचक्खान लो। तब किसीने जीव घातका, किसीने चोरीका, किसीने वेश्या, परस्त्री आदिका त्याग किया। किसी ने मांस मदका, किसीने झूठका त्याग किया। किसीने प्रतिदिन जप पाठ करनेका नियम धारण किया। महात्माजी ने शिकारीको संबोधन करके कहा, तू भी कुछ त्याग पचक्खान कर। उसने कहा कि मैं तो शिकारी हूं मैं क्या कर सकता हूं, मांस के विना मुझको सन्तोष नहीं होता, मदिराके विना निद्रा नहीं आती, जीवघात विना निर्वाह नहीं होता, झूठ बोलना हमारी जन्म घुट्टी है। पर धन परस्त्री मिले तो छोड़ें ही कैसे निर्दयी हमारा नाम ही है।

साधु—तो क्या यह कर्म्म अच्छे हैं?

शिकारी—जी हमको तो अच्छे ही जान पड़ते हैं।

साधु—इनसे तुमने कहां तक सुख और प्रतिष्ठा प्राप्त की है?

शिकारी—महाराज सुख तो क्या पाना है, रक्त में हाथ भरे रहते हैं, शस्त्रोंका बोझ उठाना पड़ता है, जंगली जंतुओं का भय बना रहता है, कई जन्तुओं के मांस से बीमार भी हो जाते हैं,

कई बार जेल व जुर्माने का दण्ड भी पा चुके हैं, और अनेक प्रकार के रोग मूत्र कृच्छ उपदंश (आतश) आदि से पीड़ित रहते हैं। और प्रतिष्ठा की पूछो तो यह दशा है कि लोग हमें शराबी कबाबी, हिंसक, झूठे और चोर कहते हैं।

साधु—और जो दयादान और सत्यशील सन्तोषादि धर्म धारण कर रहे हैं उनको सुख कैसा है और प्रतिष्ठा कितनी है।

शिकारी—अजी वे अच्छा खाते हैं, अच्छा पहनते हैं, उनके रहने के लिये बड़े २ अच्छे महल मकान होते हैं, शीलवन्ती रूपवन्ती स्त्रियां उनकी सेवामें हाजर रहती हैं। और प्रतिष्ठाके विषयमें तो कहना ही क्याहै, वे सेठ साहुकार और लाला कहलाते हैं, लोग उनको अन्नदाता सत्यवान् और धर्म्मावतार भी कहते हैं। बरादरीमें उनका आदर सन्मान होता है, राजदरबारमें भी वे प्रतिष्ठित समझे जाते हैं, उपदंश (आतश) आदि भयानक रोगोंसे बचे रहते हैं, जेल जुर्माना तो उन्हें स्वप्नमें भी प्राप्त नहीं होता।

साधु—इतना जानता हुआ फिर तू ऐसे बुरे कर्म्म का त्याग क्यों नहीं करता ?

शिकारी—अजी हमारी प्रारब्ध।

साधु—प्रारब्धसे तो नीच कुलमें जन्म होगया है सो तो तेरे अधीन नहीं परन्तु नीच व उच्च कर्म करने तो नये कर्म अर्थात् क्रियमाण कर्म हैं सो वे अपने आधीन होते हैं, क्योंकि वहुतसे नीच कुलों में जन्म लेकर उत्तम रीतिके साथ चलकर अपने आप को श्रेष्ठ वनालेते हैं और वड़े २ विद्वान् होकर अच्छे २ पदों को प्राप्त कर लेते हैं ।

शिकारी—अच्छा महाराज ! मुझसे और त्यागों का होना तो कठिन है, मैं आपके उपदेशके अनुसार दुष्ट सम्मति (खोटी सलाह) देने का त्याग करता हूं ।

साधु—वहुत ठीक ।

इस प्रकारकी प्रतिज्ञा करके शिकारी शिकार को चलदिया । जंगलमें इस शिकारी को एक सुन्दर मृगी जिसकी मृदु ग्रीवा, विशाल नेत्र थे, उसे देखकर शिकारी प्रसन्न हुआ और निर्दयीने गोली भरकर उस मृगी पर अपना लक्ष्य वांधा अभी चलाने वाला ही था कि मृगीने ग्रीवाको मोड़कर देखा और भयभीत होकर वोली कि हे शिकारी ! तनक ठहर जा, में मृगी दो वच्चों की माता हूं । मेरे दोनों वच्चे भूखे वैठे हैं, और मैंने वेल पत्तोंको चरकर अपना पेट

भर लिया है जिससे मेरे स्तनोंमें दूध भर गया है। मेरे बच्चोंको यह दूध पी लेने दे, फिर मैं स्वयमेव तेरे पास आ जाऊंगी।

शिकारी—भला तू फिर अपने प्राण देने क्यों आयेगी ?

मृगी—क्या सभी वचनहारी होते हैं, मुझ को जिसकी चाहे शपथ (कस्म) दिलवाले, मैं अपने आप वापस आ जाऊंगी, यदि न आऊं तो झूठ बोलने का पाप सिर पर धरूं।

शिकारी—अपने प्राण बचाने को लोक क्या क्या शपथ नहीं खाते हैं।

मृगी—तू भी कोई धर्म्म जानता है तो उसी की शपथ दिलवाले।

शिकारी—अच्छा जो दुष्ट सम्मति देने वाले को पाप होता है वह तुझको होगा जो वापस न आई तो ?

मृगी—यही सही। शिकारीने मृगी को छोड़ दिया और वह भागती हुई अपने बच्चोंके पास पहुंची। बच्चे अपनी माताको देखते ही तुरंत उसके स्तनोंको लिपट गए, और प्यारसे दूध पीने लगे। जब दूध पी चुके तो मृगी बोली अयि मेरे प्यारे बच्चो! अब तुम

पेट भरकर दूध पीलो फिर तुमको मेरा दूध न मिलेगा क्योंकिमें तुमको इस वनमें निराधार(तुम्हारी प्रारब्ध के भरोसे पर) छोड़ कर कालकी गालमें जाती हूं, अब तुम्हारा पुण्य ही तुम्हारा सहायक है और कोई सहायक नहीं मैं तुमको अन्तिम शिक्षा देती हूं कि तुम सिंह भेड़िये आदि हिंस्र जन्तुओंसे बचकर रहना कहीं एकान्त वनमें घास पात खाकर अपना जीव बचाना ।

बच्चे—माता ! हमको छोड़कर कहां जाती हो ?

मृगी—मैं एक शिकारीके साथ प्रतिज्ञा करके आई हूं कि अपने बच्चोंको दूध पिलाकर मृत्युके मुख में वापस आजाऊंगी ।

बच्चे—माता अब तुम न जाओ, मृत्युसे बच कर फिर मृत्युके मुखमें कौन जाता है ।

मृगी—बच्चों ! धर्म से हारना तो मृत्यु से भी बुरा है, ऐसा कह कर मृगी भाग कर शिकारी के सामने आई और कहा लो मैं आ गई हूं। शिकारी ने फिर बन्दूक भरी, तब मृगीने सिर हिला कर कहा, हाय हाय अज्ञानी तुझको मेरा दृष्टान्त देख कर भी समझ न आई कि मैं एक पशु जाति की स्त्री अपने धर्म पर प्राण देनेको उद्यत हूं, और तू

मनुष्य होकर भी इतना नहीं समझता कि निरपराधी को और ऐसे धर्म पर दृढ़ रहने वालेको मार देना कितना घोर पाप है जब तुझे इस भयंकर पापका फल भोगना पड़ेगा तब तेरे जीवको कैसे कैसे दुःख होंगे, तुझ को परलोक का पता नहीं है ।

शिकारी—मैं कुछ नहीं जानता तेरा शिकार करूंगा । तब मृगीने सोचा कि यह कुछ भी धर्म नहीं जानता है, किसी धर्मात्माकी संगतिसे केवल इतना जान गया है, कि दुष्ट सम्मति देनेमें पाप है, इस लिये अब इससे इसी धर्मसे काम निकालना चाहिये । यह सोच कर मृगी बोली कि मैं तुझ से एक सम्मति पूछती हूं कि मैं तेरी गोलीसे किस प्रकार और किस ओर भाग जाने से बच सकती हूं । तब शिकारीने सोचा कि जो मैं इसको दुष्ट सम्मति दूं तो मेरा नियम भंग होता है और जो सच्ची सम्मति दूं तो मेरा शिकार हाथसे जाता है, अब क्या करना चाहिये । हृदयमें परस्पर विरोधी भावों का संग्राम होने लगा, अन्तमें मनने उत्तर दिया कि नहीं २ धर्म धर्म ही है और पेट पेट ही है, शिकार जाए तो जाए परन्तु धर्मको न जाने दूंगा, यह सोच कर उसने उत्तर दिया कि हे मृगी ! यह जो बाएं (खब्बे) हाथ की

ओर झाड़ियां हैं, यदि उनकी ओर तू भाग जाए तो फिर मेरी गोली काम न कर सकेगी, मृगी यह सुनते ही वहां से भाग गई । शिकारीने सोचा कि साधुके उपदेश सुननेसे और एक धर्म ग्रहण करनेसे कितना बड़ा लाभ हुआ, मृगीके प्राण बचे और साथ ही उसके बच्चे भी बच गए, और मैं निरपराधी के मारनेके अन्याय से तथा स्त्रीघात और शिशु (बाल) हत्याके पापसे बच गया । फिर वह सीधा उसी साधुके चरणोंमें उपस्थित हुआ जिसकी कृपा से उसको यह लाभ हुआ था और सारा वृत्तान्त सुनाया तब से वह श्रेष्ठाचार मे लग गया । इस व्याख्यानको सुन कर कई एक श्रोताओंके नेत्रोंसे आंसू बहने लगे, और लाला गोपालदास जी स्टेशन मास्टर फगवाड़ाने उस समय उठ कर प्रण कर लिया कि मैं आजसे शिकार न खेलूंगा । कुछ दिन हुए मैंने एक बंदूक मंगवाई थी, वह मैं किसीको न दूंगा और नां ही अपने पास रखूंगा, इसको तोड़ कर चूर चूर कर दूंगा । कई एक गाड़ी वालोंने यह नियम कियाकि हम घायल घोड़ोंको न जोतेंगे, और नां ही अधिक सवारियां बैठायेंगे, तथा भूखे न रक्खेंगे अधिक काम न लेंगे और बूढ़े वा रोगी

को न वेचेंगे कहीं जीव रक्षा स्थान पिंजरापोलादि में भेज देंगे। इसके अतिरिक्त बहुत से मनुष्योंने पूर्वोक्त कई नियम पच्छक्खान किये, इसके अनन्तर आप लुधियानाके रास्ते मालेरकोटला पधारीं।
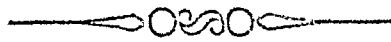
आपका नाभा पधारना।

अब कुछ वृत्तान्त नाभेका सुनिये। लगभग एक वर्षके होचुका था, कि जैनमें एक अजीवपंथ जो पंजाब में कुछ समयसे चला हुआ था, इसका एक साधु नाभामें सन्थारा करके स्वर्गवास होगया था। वहां के सत्य धर्म के द्वेषी कई एक मताव-लम्बियोंने हिज़हाईनैस महाराजासाहिब नाभानरेश के हजूरमें चुगली खाई थी कि एक जैन साधु भूखा रह कर मर गया है। नाभा नरेश ने उनकी इस रिपोर्ट पर आज्ञा देदी कि इस नगरमें जैनका कोई साधु न आने पाए और महाराजने लाला बख़शी-रामजी मालेरिया सरावगी को यह आज्ञा सुनादी कि तुम रियासत नाभामें किसी जैन साधुको लाओगे तो मैं तुमसे पंद्रह हज़ार रुपया भरूंगा। महाराज की इस आज्ञा को सुन कर वहांके जैनी लोगों को बड़ी चिन्ता हुई परन्तु क्या कर सकते थे विवश

होकर वैठ रहे और किसी साधुको नाभे पधारने की विनती नहीं करते थे, प्रत्युत मनाही कर भेजते थे, परन्तु जब उनको श्री ५ महासती जी पार्वती जी महाराजके मालेर कोटला पधारनेका समाचार मिला तो लाला वखशीराम लाला कँवरसेन लाला समाचन्द लाला वंसीलाल मालेरिया और कई भावड़े वड़े वड़े साहुकारोंने श्रीमान् नाभा नरेशकी सेवा में प्रार्थनाकी कि हम महासती श्रीमती पार्वतीजी को नाभेमें पधारनेकी विनती करना चाहते हैं करें या नहीं । महाराजने पूछा कि क्या वही श्रीमती पार्वतीजी हैं, जिनके पास हमने सं० १९४४ में पंडितों द्वारा दो प्रश्न भेजेथे, और उन्होंने उनका सविस्तर उत्तर दिया था । श्रावक बोले जी हां आप ही हैं आज कल मालेर कोटलामें विराज रही हैं, और उनकी नाभेमे पधारनेकी अभिलाषा भी है । यह सुन कर महाराजने कहा कि अच्छा उनको तो आने दो हम उनको इस विषयमें भी पूछेंगे । इस पर नाभेके श्रावक प्रसन्न होकर मालेर कोटलामें आपके चरणोमें विनती करनेके लिये उपस्थित हुए और आप उनकी विनती पर नाभेमें पधारीं ।

हिज़हाईनैस महाराजा नाभा की ओर से प्रश्न

हिज़ हाईनैस श्रीमान् महाराज श्रीहीरासिंह जी बहादुर नाभा नरेशने भाई प्रेमसिंहजी को जो कि हिज़ हाईनैसको ग्रन्थ साहव सुनाया करते थे कहा कि, आप श्रीमती माई पार्वती जी से प्रश्न पूछ कर जो वह इसका उत्तर देवे मुझे सुनावें। महाराज की आज्ञानुसार भाई प्रेमसिंहजी और दो सिपाही बहुतसे पुस्तक साथ लेकर पार्वतीजी महाराजसे प्रश्न पूछने आए। और व्याख्यान के पश्चात् श्रोताजनों के सन्मुख विनय पूर्वक आपसे यह प्रश्न किया, "आर्य्याजी! आपके मतमें सन्थारा करके अर्थात् भूखे रह कर मरने का क्या फल कहा है? और यह किसी शास्त्रमें लिखा है या युक्ति से ही है"। इस पर आपने यह उत्तर दिया कि सन्थारा करना एक तप है। भूखा मरना नहीं है। भूखा मरना तो वह होता है, कि जिसको खाने पीनेको कुछ न मिले अथवा क्रोधादिके वशमें होकर न खाए। परन्तु जो ज्ञान वैराग्य के वशमें होकर अन्त कालमें अपने विनाशमान शरीरको विनाश होता जान कर खान पान से सन्तोष करे अर्थात् त्याग करे, यह भूखा मरना नहीं है इसको तो परम तप सन्थारा

कहते हैं, और शास्त्रोंमें इसका वर्णन स्पष्टतयाकिया गया है। देखिये श्रीमद्‌भगवती सूत्र सतक दूसरा उदेशा पहला जिसमें लिखा है कि श्रीखन्दक ऋषि सन्थारा करके बारहवें देव लोक में गए। फिर अंतगड़ सूत्र और अनुत्तरोव वाई सूत्रमें भी ऐसे वर्णन हैं, कि सन्थारा कर२ के अनेक महात्मा निष्कर्म होकर मुक्ति को प्राप्त होगये और कई महा पुरुष अनुत्तरो विमान में देवता होगये जैन सूत्रोंके अतिरिक्त अन्यमतोंके शास्त्रोंमें भी ऐसा लिखा है। देखो गरुड़ पुराणः—

समासहस्राणि च सैन्धवे जले, दशैव वह्नौ पतिनैव पोडश। महाहवे पष्टी अशीति गो गृहे, अनाशिनो काश्यप चाक्षयागमे ॥

अर्थः—सिन्धुके जलमें मृत्यु होवे तो एक सहस्र वर्ष स्वर्ग सुख पावे। अग्निहोत्र आदिकमें मृत्यु होवे तो दस सहस्र वर्ष, पतिके साथ जल कर अर्थात् सती हो कर मृत्यु होवे तो सोलह सहस्र वर्ष, महा-होम यज्ञमें मृत्यु होवे तो साठ सहस्र वर्ष, गौ गृहे (गोशाला) में मृत्यु होवेतो अस्सी सहस्र वर्ष स्वर्ग सुख पावे और अनाशन अर्थात् खाना पीना त्याग कर मृत्यु होवे तो मोक्ष गति पावे।

मनुस्मृति अध्याय६श्लोक२४वेंमें भी तपकरना कहाहै

उप स्पृषं स्त्रिषवणं, पितॄन्देवांश्च तर्पयेत् ।
तपश्चरं श्चोग्रतरं शोषयेद्देहमात्मनः ॥

अर्थः—तीन कालोंमें देव ऋषि और पितरों का तर्पण करे और पक्ष तप अर्थात् पंद्रह दिनोंका तप उपवास ब्रत । मासोपवास अर्थात् एक मासका तप करके अपने शरीरको सुखादे ॥ और कुरानमें रोज़े रखना तप है । अञ्जीलमें चोलीया (चालीस रोज़का रोज़ा करना) तप है ।

ब्राह्मणोंके ग्रन्थोंमें भी निर्जला एकादशी आदि करना तप है, इत्यादि ।

यदि वे लोक औरोंको तपस्या करनेका उपदेश न दें, और स्वयं भी अपने शास्त्रों के अनुसार तप व संयम का साधन न करें तो यह उनकी भूल है । परन्तु शोक तो इस बातका है कि जो लोक न तो आप तप करते हैं और ना ही दूसरोंको उपदेश देते हैं बल्कि जो करते हैं उन की हंसी और निन्दा करते हैं ॥

इस प्रकार जब उन को सन्थारे के विषय में सन्तोष जनक उत्तर मिल चुका, तो महाराज के पण्डितने अनेक प्रकारके और भी प्रश्न किये, जिन

का उत्तरभी आपने यथायोग्य भली भान्ति देदिया। जब महाराजने आपके ऐसे ज्ञानभरे उत्तर सुने तो प्रसन्न होकर आप की वहुत सी प्रशंसा करने लगे, और कहा कि आज तक मेरे देखने मे ऐसे विद्वान् पुरुषभी थोड़े आएहैं, परन्तु स्त्री की इस प्रकारकी विद्वत्ता और सभा चातुर्य्य, एक आश्चर्य्य की वात है। फिर यह भी कहा कि इन पूजनियों को कहो कि हमारी कोठी अर्थात् सिंह सभा में व्याख्यान किया करें। इस पर लाला वखशी राम मालेरिया ने प्रार्थना की, कि यह साधुमहाराज जिस मकान में उतरते हैं,प्रायः उसी मकानमें व्याख्यान सुनाते हैं। जिनको सुननेकी इच्छाहो, वे उसी स्थानपर जाते हैं। इसपर महाराजने कहा कि अच्छा हम तुम्हारे उस मकान पर स्वयं आकर व्याख्यान सुनेंगे, जिस में मातेश्वरी श्रीमती पार्वती देवी जी ठहरी हुई हैं, परन्तु तुमको एक दुशाला और १०० रुपया रोक भेंट करना होगा। लाला वख्शी राम ने इस वातको हृदयसे स्वीकार किया॥

दूसरे दिन व्याख्यानके समय महाराज व्याख्यान सुननेको वग्घीपर सवार होकर आने लगे, तो पण्डितो ने प्रार्थना की, कि श्री महाराजा साहव

को बनियेके मकानपर चलकर जाना उचित नहीं, उनके ऐसा कहनेपर महाराज रुकगए। इस समय नाभे में पञ्जाबके अतिरिक्त अन्य देशों से भी बहुत से लोग महासतीजी के दर्शनों को आए थे। जिन में गुजरांवाले के लाला हाकम शाह अमृतसर के लाला सुखानन्द जी व लाला रलिया शाह जी, जालन्धर के लाला रलारामजी आनरेरी मैजिस्ट्रेट और अजमेरके सेठ चांदमलजी आनरेरी मैजिस्ट्रेट भी थे। इन सज्जनों के आगमनकी सूचना पाकर नाभा नरेश महाराजकी ओरसे स्टेशनपर बग्घियां भेजी गईं। सबने श्री श्री श्री महासतीजी के दर्शन किये, और दूसरे दिन सब ने व्याख्यान सुना। व्याख्यान के पश्चात् राय साहिब सेठ चांदमल जी ने सब उपस्थित सज्जनों में मिसरी के कूजे बांटे। राय साहिब सेठ चांदमलजी व लाला रलाराम जी हिज हाईनैस नाभा नरेश महाराजके हजूर में भेंट करने के लिये उपस्थित हुए। महाराज ने उनका बड़ा आदर किया, और दोनों सज्जनोंको सिरोपाव (खिलत) देकर सन्मान किया, और श्रावकों ने महाराज नाभा नरेश का धन्यवाद किया, और अपने अपने नगरको वापस चलेगए। श्रीमहासती

जी महाराजके उपदेशसे धर्म्मका वड़ा प्रचार हुआ, और घर घर में श्रीसती जी महाराज की प्रशंसा होने लगी ॥

मूर्त्तिपूजा और स्नानके विषयमें प्रश्न ।

इन्हीं दिनों में आत्माराम जी सम्वेगी अमृतसर आए हुए थे । उन्हो ने नाभे का वृत्तान्त सुन कर लुधियाना निवासी कृष्णचन्द नाम खत्री के पुत्रको एक अन्य मनुष्य के साथ नाभे भेजा । उन्हों ने हिज हाईनैस के हजूर में उपस्थित हो कर यह प्रार्थना की, कि इस नगरमें यह चर्चा हो रही है, कि जैन साध्वी श्रीपार्वती जी वड़ी विदुषी और पण्डिताहै, परन्तु जैनमतमें तो परम पण्डित श्री आत्माराम जी सम्वेगी हैं, जो इन दिनों अमृतसर मे विराज रहे हैं । आप उन को नाभे मे वुलवा लेवें, और शास्त्रार्थ करावें, ताकि पता लगे कि कौन पण्डित है । महाराजने कहा, कि शास्त्रार्थ किस वात का करानाहै । तव वह वोला कि आत्मारामजी मूर्त्ति पूजन और स्नान मज्जन करने में धर्म्म मानते हैं, और यह लोग नहीं मानते इस वात का । ऐसा सुन कर हिज हाईनैस ने दो विश्वासी पुरुष श्री

महासती पार्वतीजी महाराजके पास भेजे, कि आप आत्मारामजी से मूर्त्तिपूजन और स्नानके विषयमें चर्चा करें तो हम आत्माराम पुजेरे को बुला लेवें। आपने उत्तर दिया, कि मैं तो चर्चा के लिये उद्यत हूं, परन्तु आप महाराज से इतना पूछ लें, कि महाराज कुछ अपनी शंका निवृत्त करने के लिये चर्चा करवाते हैं अथवा हमारे मतकी परीक्षा करने के लिये क्योंकि हम भी जैनधर्म्म को मानतेहैं और आत्माराम जी भी जैन धर्म्म को मानते हैं, यद्यपि आत्मारामजी जैन सूत्रों में मूर्त्ति पूजन और स्नान करनेसे मुक्ति होना उक्त पुरुषके कथनानुसार मानते होंगे तथापि हम तो सूत्रानुसार परमेश्वर परमात्मा का ध्यान और तत्व ज्ञान का विचार और तप संयम नियमके साधनों से मुक्ति मानते हैं। यदि महाराजा साहब इसके निश्चय करनेके अर्थ चर्चा करावें, कि दोनों बातों में से कौनसी बात जैन सिद्धान्तमें है, तब तो ठीक है। परन्तु महाराजा साहिब को यह प्रतिज्ञा अवश्य करनी पड़ेगी कि यदि मैं ने जैन सूत्रों द्वारा मूर्त्ति जड़ पूजाकी अज्ञान क्रियासे पृथक् और बाह्य स्नान के बिना जप तप संयम ब्रह्मचर्य्य आदिसे मुक्तिका होना सिद्धकर दिया तो उनको

हमारा जैनमत स्वीकार करना होगा। यदि आत्मा रामजी ने सूत्रों द्वारा मूर्त्ति जड़ पूजा और बाह्य स्नानसे मुक्ति का होना सिद्ध कर दिया, तो उनको पीताम्बरी पुजेरों का मत अङ्गीकार करना होगा। अन्यथा जो दो प्रश्न आप लाए हैं, उनका खण्डन तो मैं तुम्हारे ही माने हुए ग्रन्थ साहब से अभी कर दिखलाती हू । देखिए ग्रन्थ साहबमें कबीरजी के भजनके विषय मेंः—

फ़ूल तोड़े पाती तोड़े पाती पाती जीव ।
जिस मूरत को तू चढ़ावे सो मूरत,निर्जीव ॥
पत्थर की मूर्त्ति बनाई, दे दे छाती पाओ ।
जे मूरत सच्ची है तो घड़न वाले नूं खाओ ॥

और स्नान के विषय में ग्रन्थ साहबमें ऐसा लिखा हैः—

जलके मज्जन जे गति होवे, मेडक नितनित न्हावें।
जैसे मेडक तैसे वह नर, फिर फिर योनि पावे ।

फिर बाबा नानक साहबने यह भी कहा हैः—

साधु अन न्हाते भले, चोर सो चोरो चोर ।

जब आपने उन्हींके ग्रन्थोंसे उन्हे संतुष्ट कर दिया, तो उन्होंने श्री महाराजा साहबके हजूरमें बिना पूछे ही आपको उत्तर दे दिया, कि वह तो

जैनके दोंनो पक्षोंमें से किसी पक्षको भी स्वीकार नहीं करेंगे । तब श्रीमहासतीजीने कहा, तो फिर चर्चा करवानसे क्या लाभ होगा अर्थात् केवल एक कौतुक रूपसे शास्त्रार्थ करना व कराना व्यर्थहै । जब आपके यह शब्द हिज़ हाईनैसने सुने, तो जो दो मनुष्य आत्मारामजीकी ओरसे आए हुएथे, उनको कहा कि जाओ, क्या यहां फ़साद करवाना चाहते हो । इस पर वे अपना सा मूंह लेकर चले गए, और रियासत नाभेमें साधुओंके आने जाने की रुकावट बिल्कुल न रही ।

एक साईं का प्रश्न जैनके मन्तव्य और कर्तव्यके विषयमें ।

एकदिन आपके व्याख्यानके पश्चात् एक मुसलमान साईंने जो धर्म का कुछ प्रेम भी रखता था, और फ़कीरी वेषमें था, आपकी सेवामें प्रार्थना की, कि आर्य्याजी ! क्या हम भी जैनी बन सकते हैं ?

महासती पार्वतीजी—हां बन सकते हो ।

साईं—कैसे बन सकते हैं ?

महासती पार्वतीजी—मन्तव्य और कर्तव्य के सुधारने से ।

साईं—समझा देवें ।

महासती पार्वतीजी—यथा सूत्र आवश्यक सम्यक्त का धारण करना ।

अर्थात् (१) देवारि हन्त जो काम क्रोध लोभ मोह अहङ्कार आदि शत्रुओ को हनन करने वाले अर्थात् जीतने वाले ।

(२) गुरु निर्ग्रन्थजी धन और कामिनीके त्यागी

(३) जिनेन्द्र भापित दयामय धर्म ।

(४) गणधरकृत शास्त्र।

(५) धर्म्म का परिणाम मोक्ष ।

इन पर निश्चय लाना यह मन्तव्य है और कर्तव्य यह है:—

(१) जीवहिन्साका न करना अर्थात् विचार पूर्वक निरपराधी जीव च्यूंटीसे हाथी तकका न मारना ।

(२) धर्मविरुद्ध और राजविरुद्ध झूठका न बोलना

(३) चोरी का न करना ।

(४) वेश्या आदि पर नारी गमनादि व्यभिचार कर्म का न करना ।

(५) मांस का न खाना ।

(६) मद का न पीना ।

(७) द्यूत कर्म्म (जूए) का न खेलना ।

(८) ऐसे कर्म करने वाले पापी और हिन्सा आदिमें धर्म्मबतलाने वाले मिथ्यातीकी सङ्गति का भी न करना।

(९) शास्त्र पढ़ कर बुद्धि को निर्मल करना।

(१०) मीठे वचनसे निर्दोष सत्य भाषण करना।

(११) यथायोग दान देना।

(१२) गुणी का आदर करना।

(१३) निर्गुणसे सम भाव रहना अर्थात् किसी से राग व द्वेष न करना और किसी को गाली आदि कठोर वचन न बोलना।

(१४) सबसे प्रियाचरण करना अर्थात् जैसा प्रेमीके साथ मनका बर्ताव होताहै वैसा सबसे बर्ताव करें (जैसे प्रेमी का दुःख व कष्ट दिल वरदास्त नहीं करता) ऐसे सबके दुःख का अनुभव करें (सबके हितेच्छु होवें)।

(१५) दुःखित जीवों की यथाशक्ति यथा कल्प तन मन धनसे सहायता करें, इत्यादि शुद्ध कर्त्तव्यों से जैन मतमें जैनी गिना जा सकता है, और इसी धर्म्मसे आत्मा शुद्ध होकर मोक्षके योग्य होसकता है।

साईं—आपने तो सब शास्त्रों और सब मतों का सार ही कह दिया है।

वास्तवमें ही यह मन्तव्य और कर्तव्य पालनेके योग्यहैं,और मैं इनका यथाशक्ति पालन भी करूंगा। श्रोतागण भी इन प्रश्न व उत्तरों को सुनकर आनन्द को प्राप्त हुए। नाभाके भाइयोंने आपके चरणों में विनती की कि आप यहां ही चतुर्मासे की कृपा करें और महाराज नाभा पति की ओर से भी आपके चातुर्मास की विनती का समाचार आया है कि माई पार्वती देवी का चातुर्मास्य यहां ही होना चाहिये, परन्तु श्री श्री १००८ श्री पूज मोतीराम जी महाराज ने आप को लुधिहाने में चतुर्मासा करने का आदेश देदिया हुआ था इस लिये आपका चतुर्मासा नाभेमें न होसका। आपने नाभेमें दो मास का कल्प पूरा करके मालेर कोटला के रास्ते लुधियाना को विहार कर दिया।

सं०१९५०वि०का चातुर्मास्य लुधियानामें

इस चतुर्मासेमें जो उपकार आपके उपदेशों से हुआ वह प्रशंसनीय है। दान शील तप और भावना का जो भाव लुधियानेके श्रावक श्राविकाओं में देखा जाता था वह बहुत बढ़कर था तपस्या भी यथाशक्ति भाईयों और बाईयोंने बहुत की। क्योंकि

महासती पार्वतीजी महाराज की गुरुणीजी श्री श्री श्री१००८ श्री तपस्विनी मेलोजी महाराज वृद्धावस्था के कारण बहुत दूर विहार नहीं कर सकती थीं कुछ समयसे लुधियानेके आस पासके क्षेत्रोंमें ही विचरती थीं । परन्तु इस वर्ष आपका गुरुणीजी के साथ ही चतुर्मासाथा उन्होंनेभी१८ दिनका व्रत कियाथा और आपने उनकी सेवा विधि पूर्वक करके भक्ति का लाभ उठाया, और आपके हितोपदेशोंसे जैन भाईयोंके अतिरिक्त बहुतसे अन्य मतवालों को भी जैन धर्म पर प्रेम होगया क्योंकि जो उनके हृदयों पर मिथ्या और निर्मूल विचार जैन की ओर से छाए हुए थे वह दूर होगए । और अनेक नगरोंसे श्रावक और श्राविका आपके दर्शनों को आए जिनका आदर सत्कार लाला मल्ही मल,लालामिड्डि मल,लाला गेंदा मल लाला इच्छरूमल, लाला छज्जु मल आदि वनियें सरावगी और भावड़े भाईयोंने तन मन धनसे किया।

आपका लुधियानासे विहार ।

चतुर्मासा समाप्त होने पर जब आपने लुधियाने से विहार किया उस समय लग भग सात आठ सौ भाई और बाई आपके साथथे उस समय एक भाईने

जो बहुत पढ़ा लिखा न था परन्तु भक्तिभावमें आकर उसने सबके सन्मुख अपनी पंजाबी भाषामें एक भजन बनाकर सुनाया जिससे यह प्रकट हुआ कि आपके चतुर्मासमे लुधियानेके रहने वालोंको कितना उत्साह था—

भजन निर्वाण पञ्जाबी।

अञ्जली—

कलुकाल दर्म्यान सतीपार्वती जान कलुकाल दर्म्यान

१—चले जैन की सड़क, जानें धर्म की मड़क।
न ज़बानमे अड़क माफ़ करती हैं व्याख्यान॥
कलुकाल ......

२—हुई मुल्कोंमें प्रसिद्ध, कोई कर न सके जिद्द।
मिले दर्शनोंमे ऋद्ध यही बात प्रधान॥
कलुकाल ......

३—है अनन्त भाग लग्गा.शोभा होरही जग्गा जग्गा
जीते वादियां का अग्गा भारी विद्या निधान॥
कलुकाल ......

४—बैठे आर्य्य वकील, नेज़ जिन्नों की दलील।
कोई हुज्जत न ढील सब का चरणोंमें ध्यान।
कलुकाल ......

५—देवें चोखे दृष्टान्त, बोल बोल शुद्ध छांट ।
अकल मन्द भारी खान, सुनके होगये हैरान ॥
कलुकाल.........

६—दससन रोज़ तरकीब, मुक्ति होवे ज्यों नसीब ।
दुःखी जीव की तबीब सदा रहे सावधान ॥
कलुकाल.........

७—चार पंज सौ भाई, डेढ़ दो सौ लुगाई ।
जो अलहदा लोकी आई अरूं कितना बियान॥
कलुकाल.........

८—सम्वत् उन्नी सौ पचास लुध्यानामें चौमास ।
जेड़ी खास रणवास बहु बेटी झुकीं आन ।
कलुकाल.........

९—शेरु राम सुन मूढ़, है सिंगार धन कूड़ ।
लेले चरणां की धूड़ तेरा होजाय कल्याण ॥
कलुकाल.........

इस भजन को सुनकर लोग बहुत प्रसन्न हुए और आप मार्गमें कई एक नगरोंमें धर्म्म उपदेश सुनाती हुईं और अनेक भव जीवों को दया क्षमादि का सन्मार्ग बतलाती हुईं स्यालकोट नगरमें पधारीं और सं० १९५१ वि० का चतुर्मासा स्यालकोट का ही स्वीकार हुआ ।

सं० १९५१ वि० का चातुर्मासा सियालकोट में तीसरी वार।

इस नगर की शोभा हम पहले सं० १९४७ के चतुर्मासे के वर्णन में लिख आए हैं, इसलिये इस चतुर्मासे में जो उपकार हुआ, वह नहीं लिखा गया। पाठक स्वयमेव विचार करेंगे कि स्यालकोट जैसे नगरमें श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज जैसी ज्ञाना-म्बोनिधि सत्य धर्म उपदेशिका का चतुर्मासा हो तो फिर कितना धर्मका लाभ हुआहोगा एकदा। चतुर्मासे के समाप्त होने के पश्चात् अनेक नगरों में विचर कर धर्म उपदेश करती हुई अमृतसरमें पधारीं और वहां तीन बाईयो को दीक्षा देकर कस्बा पट्टी (जिला लाहौर) में पधारी।

आत्मारामजी सम्वेगी से वार्त्तालाप।

इन दिनों पट्टीमें आत्मानन्दियोंने एक मन्दिर की प्रतिष्ठा करवाई थी और आत्मारामजी सम्वेगी भी वहीं थे। एक दिन श्रीमती पार्वतीजी महाराज बाहर की भूमिका से आरही थीं और आत्माराम जी सम्वेगी भी आरहे थे, आपने उनसे पूछा कि आपके कुशल है, उन्हों ने कहा सतीजी तुम्हारे

सुख साता है, आपने उत्तर दिया कि देवगुरु के प्रसाद से सुख साता है।

आत्मारामजी—नाम आपका बहुत दिनों से सुनते थे, परन्तु दर्शन मेला आज हुआ।

श्रीमहासतीजी—रमते रामों का मेला दैवयोग से ही होता है।

आत्मारामजी—सतीजी! लुधियानेमें साधुओं के एकत्र होने का क्या कारण है?

श्रीमहासतीजी—श्रीमान् मुनि बिलासराम जी महाराज स्वर्गवास होगये हैं, अब किसी योग्य मुनि को अधिकार देने का कारण है। आपका यह उत्तर सुनकर आत्मारामजी चलने लगे परन्तु आपने कहा कि मैं एक बात कहना चाहती हूं।

आत्मारामजी—क्या?

श्रीमहासतीजी—आप सरीखे विद्वानों को दया आदि सत्य धर्म की उन्नति करना योग्य है न कि निन्दा।

आत्मारामजी—तुम दयाके अर्थ जानती हो?

श्रीमहासतीजी—यथाबुद्धि, अधिकतर आप कृपाकरें।

आत्मारामजी—हम अपने मत में प्रसन्न हैं, तुम अपने मत में प्रसन्न हो।

पाठक ! देखिये जब कुछ उत्तर न बन पड़ा तो क्या कहकर टाल दिया, परन्तु श्रीमहासती पार्वतीजी ने एक और निम्नलिखित प्रश्न कर दिया।

श्रीमहासतीजी—भला आप नग्न मूर्ति को पूजना अच्छा नहीं समझते और दिगम्बरी श्रृंगारी मूर्तिको पूजना अच्छानहीं समझते परन्तु दोनोंही चैत्य वन्दना आदि में त्रिलोक अर्थात् स्वर्ग मर्त्य पाताल की पड़माओं को नमस्कार करते हैं, आप यह बतलावें कि स्वर्ग में पड़मा श्रृंगारी हैं व नग्न।

आत्मारामजी—तुम भगवान्‌से विनती करो कि हे भगवन् आत्माराम को ज्ञान दो जब मुझे ज्ञान होजायगा तो बतला दूंगा। पाठक ! देखिये आत्मारामजी ने प्रश्न का उत्तर न देकर क्या कह दिया, जिस पर श्रीमहासतीजी महाराजने आत्मारामजीसे कहा कि ओहो ? इस न्यायसे तो आपने मेरे लिये बहुतही अच्छा समझा अर्थात् भगवान्‌मेरी प्रार्थनाको स्वीकार करतेहैं आप की कोनहीं, यदि मेरे कहनेसे भगवान् आपको ज्ञानदेंगे तो फिर मैं ही न स्वयं ज्ञान प्राप्त करके समझ लूंगी। आत्मारामजी चुप होकर चले गये और श्रीमहासतीजी महाराज भी उपाश्रा में जा पधारीं। पट्टी में कुछ समय ठहर

कर कसूर, फ़िरोज़पुर, जगराओं आदि नगरों में दया धर्म की ध्वजा फहराती हुई लुधियाने में विराजमान हुईं ।

लुधियानेमें आचार्य्यपद महोत्सव ।

इन दिनों लुधियाने में चौथे आरे की तरह का ठाठ था लगभग ७५ नगरोंके श्रावक और श्राविका इस अवसरपर लुधियानेमें एकत्र होगए थे और ४१ साधु मुनिराज और २५ आर्य्याजी विराजमान थीं । चार तीर्थोंने मिलकर श्री श्री १००८ ज्ञानके भण्डार और क्षमाके समुद्र श्रीजैन आचार्य्य स्वामी मोतीरामजी महाराजके चरणोंमें यह प्रार्थना की, कि श्रीमान् यदि उचित समझें तो किसी योग्य उत्तम साधुको जिनको सर्वगुणोपेत देखें "युग आचार्य्य" की पदवी प्रदान करें और आर्य्याओंमें किसी उत्तम आर्य्याजीको प्रवर्तिनी की पदवी देवें । चार तीर्थोंकी इस बिनतीपर श्री ५ पूजजी महाराजने विचार करके यह कहा कि ठीकहै आपचार तीर्थोंकी जो सम्मति होगी सोही होगा । सुतरां चार तीर्थोंकी सम्मतिसे श्री श्री १००८ पूज मोतीरामजी महाराजने साधुओंकी मण्डलीमें श्री श्री १००८ स्वामी सोहनलालजीको आचार्य्य

पदवीके योग्य समझा और आर्य्याओंकी मण्डली मे श्री ५ महासती श्रीमती पार्वतीजीको प्रवर्तिनी अर्थात् आचार्य्या की पदवी के योग्य पाया और अपनी यह तजवीज पास करके मिती चेत वदी ११ सं० १९५१ वि० को चार तीर्थों अर्थात् साधु (१) साध्वी (२) और श्रावक (३) श्राविका (४) और सहस्रों भाई व बाईयों की सभा में श्री ५ स्वामी सोहनलाल जी महाराज को युगाचार्य्य की पदवी प्रदान की और श्री ५ महासती पार्वतीजी को प्रवर्तिनीकी पदवीसे विभूपित किया। पाठकवर्य्य! सब जैनी जानते हैं कि श्री श्री स्वामी सोहनलालजी महाराज कैसे पवित्रात्मा हैं इनसा जैन सूत्रोंका विज्ञ पण्डित आधुनिक समयमें कोई विरले ही हैं और क्रियामें चौथे आरेकी बन्नगी हैं और जो पञ्जावमें धार्मिक जनोंके हृदयोंमें श्री श्री १००८ महा भगवान पूज अमरसिंहजी महाराजने धर्म्मके बूटे लगाये और अपने उपदेशरूप अमृत से सींच २ कर हरे भरे और दृढ़ किये थे उनकी सेवा और पालना करनेके लिये श्रीस्वामी सोहनलालजी महाराज मानो एक सच्चे माली हैं।

दूसरे जो आर्य्याओंकी मण्डलीमे श्रीमहा-

सती पार्वतीजी महाराजको प्रवर्तिनी अर्थात् आचा-र्य्याकी पदवी दी गई । जिनकी दयालुता, न्याय-शीलता, गम्भीरता, ज्ञान और वैराग्यके भावसे बहुत लोक भली भांति परिचित (वाकिफ़) हैं इस लिये टोलेमें ऐसे रत्न विद्यमान हों फिर क्यों न चार तीर्थोंमें धर्म्मकी उन्नति और आनन्द हो ।

साधुमण्डलीमें आचार्य्य और आर्य्या-मण्डलीमें प्रवर्तिनीकी आवश्यकता ।

इस स्थान पर यह प्रकट कर देना अनाव-श्यक न होगा कि मुनिराजों और आर्य्याओंकी मण्डलियां पृथक् पृथक् होती हैं परन्तु दोनों मण्ड-लियोंकी संयम रूपी वृत्ति समान होती है परन्तु प्रत्येक मण्डलीके सम्बन्धोंमें एक बड़ा अन्तर यह है कि आर्य्याजी १०० वर्ष की दीक्षित हों और साधुजी एक दिन के दीक्षित हों तो उसको वह आर्य्याजी नमस्कार करेंगी क्योंकि जैन मतमें दस कल्पों में यह एक कल्प है कि साधुजी को ज्येष्ठ अर्थात् बड़ा माना जाय, तो इसमें यह प्रश्न उठता है कि जब दोनों मण्डलियोंके आचार्य्य एक साधु महाराज हों फिर प्रवर्तिनी अर्थात् साध्वीको आ-चार्य्या बनानेकी क्या आवश्यकता है इसका उत्तर

यह है कि व्यवहार सूत्र में ऐसा लिखा है कि साधुओंकी मण्डलीके दो अफ़सर होने चाहिये (१) आचार्य्य (२) उपाध्याय और आर्य्याओंकी मण्डलीके तीन अफ़सर होने चाहिये।

(१) आचार्य्य (२) उपाध्याय और (३) प्रवर्तिनी अर्थात् आर्य्याओं को आचार व्यवहार मे चलाने वाली। क्योंकि व्यवहार सूत्र उद्देश्य ४, ५वें में लिखा है कि आचार्य्य और उपाध्याय को तीन साधुओसे न्यून चौमासा नहीं कल्पता और प्रवर्तिनी को चार साध्वीओ से न्यून चौमासा नही कल्पता और गणाविछेदकको ४ साधुओ से न्यून चौमासा नही कल्पता ऐसे ही गणाविछेदिकाको पांच साध्वीओसे न्यून चौमासानहीं कल्पता। इसलिये इन सूत्रोसे सिद्ध है कि जैसे आचार्य्यके लिये चतुर्मासा करनेकी मर्यादा बांधीगई है वैसेही प्रवर्तिनी के लिये चतुर्मासा करनेकी मर्य्यादा बांधी गई है और जैसे गणाविछेक के लिये मर्य्यादा नियतहै वैसेही गणाविछेदिकाके लिये भी मर्य्यादा नियतकी गई है इस से सिद्धहै कि आर्य्याओ की मण्डली में प्रवर्तिनी अर्थात् आचार्य्या होनी चाहिये जो साध्वीओं को आचार व्यवहारमें यथा रीति चलावे और उनकी

आलोचना सुने और प्रायश्चित्त (दण्ड) देवे क्योंकि व्यवहार सूत्रके ५वें उदेशामें लिखाहै कि आर्याको साधुके आगे आलोचना करनी नहीं कल्पे इत्यादि ॥

जैनाऽऽचार्य्या श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज ने लुदिहानासे विहार करके रियासत पटियालामें विराजमान हुईं । वहां श्री श्री १००८ जैन आचार्य्य श्री पूज सोहनलालजी महाराजसे दो साधु भगवती सूत्र पढ़ते थे उनकी नेश्राय श्रीमहासती जी ने भी भगवती पढ़ी, फिर अम्बाला नगरमें पधारीं और संवत् १९५२का चतुर्मासा अम्बालेका स्वीकार हुआ।

सँवत् १९५२ वि० का चातुर्मास्य अम्बाला नगर में दूसरी बार ।

इस साल यहां आत्मारामजी सम्वेगी का भी चतुर्मासाथा परन्तु दोनों पक्षमें समभाव था क्योंकि श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजभी शीतल स्वभाव बुद्धिमती और दूर दर्शियित्री थी और आत्माराम जी भी बड़े विद्वान् थे । एक बार एक दक्षिण देश का मूर्ति पूजक गृहस्थी आत्माराम जी के दर्शन करने को आया हुआथा जो अपने आपको पण्डित भी मानता था, वह एक दिन श्रीमहासती पार्वती जी महाराज के स्थान पर आया और कहने

लगा कि श्रीमत् आत्माराम जी महाराज और आप आपसमें चर्चा करें तो अच्छा निर्णय होगा।

श्रीमती पार्वतीजी—चर्चा किस विषय पर।

गृहस्थी—मूर्तिपूजा मुख वस्त्रिका और पीले वस्त्र के विषय पर।

श्रीमती पार्वतीजी—चर्चा करवानी कौन चाहता है

गृहस्थी—में चाहता हूं।

श्रीमती पार्वतीजी—चर्चा कराने की दो विधियां हैं जोनसी आत्मारामजी को स्वीकार हो पूछली जावे।

गृहस्थी—वह दो विधियां कौनसी हैं।

श्रीमती पार्वतीजी—एक तो यह कि मैदान में झंडा लगाया जावे और दोनो पक्षो के श्रावक देश परदेशके एकत्र होकर सर्व साधारण सभा लगाई जावे उनके मध्य चर्चा हो परन्तु चर्चा का सार अवश्य हो अर्थात् जिस पक्ष की जय हो उसमें दूसरा पक्ष सम्मिलित होजाय अन्यथा व्यर्थ परिश्रम उठाना उचित नहींहै और इसमें इस बातकी भी आवश्यकता होगी कि चर्चामें जो यात्री बाहर से आएंगे उनकी सेवामें स्थान भोजन आदि का प्रबन्ध चर्चा करवाने वाले को करना होगा और जो कोई किसी प्रकार

का झगड़ा व आदि होजाये तो उसका भी उत्तर-दायी वही होगा ।

दूसरी यह है कि किसी एकान्त स्थानमें एक आत्मारामजी एक साधु और एक मैं और दो साध्वी और दोनों पक्ष के दो दो योग्य श्रावक जय पराजय की साक्षी के लिये बैठ जाएं फिर शास्त्रार्थ से जो सारांश निकले एक दूसरे पक्ष में सम्प्रदाय समेत सम्मिलित होजाएं अर्थात् आत्मारामजी के माने हुए मन्तव्य सिद्ध होजाएं तो जड़ मूर्तिपूजा पीले वस्त्र और मुख वस्त्रिका का हाथमें रखना हम और हमारे सपक्षी ग्रहण करलें यदि हमारे मन्तव्य सिद्ध होजाएं तो आत्मारामजी और आत्मारामजी के पक्षी जड़ मूर्ति की पूजा पीले वस्त्र और मुख वस्त्रिका हाथमें रखना छोड़दें जिससे जिनेन्द्र भाषित सत् धर्म की उन्नति और वृद्धि हो जिससे बहुत लोग आत्मा का सुधार करके लोक परलोक का लाभ उठावें । यह सुनकर वह गृहस्थ आश्चर्य्यान्वित मुखसे चला गया, फिर किसी प्रकार का उत्तर लेकर न आया परन्तु कई एक मनुष्यों के मुखसे यह सुननेमें आया कि आत्मारामजी ने उस गृहस्थी को यह कहा कि तू तो परदेसी है अपने देश को चलदेगा परन्तु यहां

पञ्जावमें तो जैन सम्प्रदाय की पूंजी पहले ही ओछी (थोड़ी) है इस लिये यहां ऐसा होना कठिन है और मतभेद तो चिरकालसे चला आता है उसकी सम्मति होना तो कठिन है झगड़ा हो जाना सुगम है इस लिये छेड़ करनी उचित नहीं । इस प्रकार दोनों पक्षों में बड़ी शान्ति से चतुर्मासा समाप्त हुआ ।

चतुर्मासा समाप्त होजाने पर श्रीमहासतीजी महाराज छपरोली ज़िला मेरठमें पधारीं और आप का चतुर्मासा संवत्१९५३वि०का भाईयों की विनती से छपरोली का स्वीकृत हुआ ।

सं०१९५३ वि० का चतुर्मासा छपरोलीमें दूसरी वार ।

आपके उपदेशोंसे लोगोंने जैन धर्म्म का वहुत सा परिचय प्राप्त किया और कई एक समीपवर्ती ग्राम के भाईयोंने भी शास्त्र सुनकर धर्म्म का लाभ उठाया और जव आपके व्याख्यानोंकी प्रशंसा प्रत्येक नर नारीके मुखसे होने लगीतो जैनमें एक सम्प्रदाय दिगम्बर मूर्ति पूजकों की है उसकी आमनाके कई एक पंडित पानीपत सोनीपतआदि नगरोंसेछपरोली में आए जिनमें पण्डित मेहरचन्दजी अमराओसिंह

जी बख्शी अमनसिंहजी भी थे । उन्होंने आपकी सेवामें उपस्थित्त होकर चार निक्षेपों के विषयमें चर्चा आरम्भ की । दिगम्बर आमनाके पंडित द्रव्य निक्षेप को बन्दनीक कहते थे परन्तु आपने यह स्पष्ट कर दिया कि द्रव्य निक्षेप अर्थात् भाव गुणके विना बन्दनीय नहीं होता है केवल सूत्रानुसार ही नहीं वरञ्च निक्षेपों और युक्तियोंसे भी भाव निक्षेप अर्थात् ज्ञानादि गुण ही बन्दनीक होते हैं ऐसा सिद्ध कर दिया । इस सन्तोषजनक उत्तर को पाकर दिगम्बर आमनाके पण्डित चले गए । चतुर्मासेके समाप्त होने पर आपने देहली को बिहार कर दिया ।

देहली में दिगम्बरियों से शास्त्रार्थ ।

सं०१९५३वि०पौष मासमें पहाड़ी सदर बाज़ार देहलीमें सेठ मूलचन्द मुतसद्दीलालजी की धर्म्मशाला में श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज विराजमान हुईं। देहली सदरमें इन दिनों दिगम्बरियों का एक उत्सव था जिसपर दिगम्बर आमनाके पंडितजो छपरोली में आपसे चर्चा करने आएथे वे भी और दूसरे कई एक नगरों के पण्डित आए थे । सूचना पाकर वे फिर चर्चाके लिये धर्मशालामें आए, दिगम्बर आमना

वालोंके अतिरिक्त उस चर्चा में पीताम्बरी वैष्णव आर्य्यसमाजी और अन्य मतोंके पुरुष और स्त्रियां लगभग डेढ़ सहस्र की संख्या में एकत्र होगई और एक वृहत्सभा लगी।

जैन मंडलीके श्रावक देहली वाले लाला कन्हैया लालजी रयीस लाला प्यारालालजी और पहाड़ी वाले लाला धन्नामलजी व लाला जौहरीमलजी सभापति नियत किये गए। दोनों ओरके श्रावकों में जोश भरा हुआ था। दिगम्बर आमना वालोंको तो यह हठ होरहा था कि छपरोलीमें जो शास्त्रार्थ हुआ था उसमें हम निरुत्तर होगएथे अब किसी प्रकार हमारी विजयहो, इधर देहलीके श्रावकोंको श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजके सूत्रज्ञान पर पूरा भरोसा था, वे जानतेथे कि आप वे आर्य्याजीहैं कि जो अपने विद्याज्ञानके बलसे बहुत स्थानोंमे शास्त्रार्थ में विजय प्राप्तकर चुकी हैं और जिन्हो ने प्रत्येक वादियों के प्रश्नों के भली भांति उत्तर दिये हैं। अस्तु इस सर्व साधारण सभामें जो प्रश्नोत्तरहुए वे निम्नलिखितहैः—

प्रश्न—पण्डित शिवचरणदास जी दिगम्बरियों की ओरसे यहसभाका परिश्रम क्यों उठायागया है?

उत्तर—लाला फ़कीरचन्द श्रावक—जैन हितो·

पदेशक समाचार पत्रमें ऐसा लिखाथा कि श्रीमती पार्वतीजी महाराज और मेहरचन्द के शास्त्रार्थ में मूर्त्ति पूजन की आवश्यकता जान पड़ी, इस का निर्णय करने के लिये ।

पण्डित शिवचरण दास जी—शास्त्रार्थ मूल पाठसे हो टीका टब्बासे कुछ काम नहीं ।

श्रीमहासती जी महाराज—स्वीकार है ।

पण्डितजी—मध्यस्थकी आवश्यकता होगी, मध्यस्थ करना चाहिये ?

लाला कन्हैयालालजी श्रावक—मध्यस्थ मिलना कठिनहै क्योंकि दो दलहैं एक मूर्त्ति खण्डन वाले दूसरे मूर्ति मण्डनवाले,मध्यस्थ किसको करनाचाहिये।

पण्डितजी—अच्छा हम तुम्हारे ही माने हुए शास्त्रों से मूर्ति पूजाकी आज्ञा श्रीमहावीरजी की बतला देंगे, आप यह बतलाईये कि आप कितने शास्त्र मानते हैं ?

श्री महासती पार्वतीजी—हम भगवन्तों के बचन अर्थात् द्वादशाङ्ग बाणी को मानते हैं ।

पण्डितजी—द्वादशाङ्ग बाणीके नाम बतलाईये ?

श्रीमहासती जी महाराज—जबआप द्वादशाङ्ग बाणी सूत्रों के नाम ही नहीं जानते तो उनमें से

प्रश्न बतलाकर मूर्तिपूजाकी आज्ञाक्योंकर सिद्धकरेंगे।

पण्डितजी—निस्सन्देह मैं नहीं जानता आप ही कृपा करके मुझे बतलाईये।

पाठक! देखिये कि जो पण्डित महोदय अपने मुख से इस बातको मानते हैं कि वे जैन सूत्रों के नाम तक से परिचित नहीं हैं तो वे सूत्रों के मूल पाठसे कैसे परिचित हो सकते हैं, इस से सिद्ध हो गया कि पण्डितजी जैन सूत्रोंसे अनभिज्ञ थे केवल पक्षपात के वश में अपने सपाक्षियों के कथन पर शास्त्रार्थ करतेथे,तथापिअपने सूत्रोंके नाम सुनादिये

श्रीमहासती जी महाराज—(१) आचाराङ्ग (२) सुयगड़ाङ्ग (३) ठानाङ्ग (४) समवायाङ्ग (५) भगवति पञ्चमाङ्ग (६) ज्ञाता धर्मकथा षष्ठाङ्ग (७) उपासक दशाङ्ग (८) अन्तगढ़ दशाङ्ग (९) अनुत्तरो ववाई दशाङ्ग (१०) प्रश्न व्याकरण दशमाङ्ग (११) विपाक सूत्र इग्यारसमाङ्ग (१२) दृष्टिवाद द्वादशमाङ्ग। यह बारह अंगों के नाम हे।

पण्डित जी—और जो इन सूत्रों से पृथग् हैं वे इन शास्त्रों के अनुसारहैं व नहीं।

श्रीमहासती जी महाराज—कितने ही इनके अनुसार हैं।

पण्डितजी—आवश्यक सूत्र इनके अन्तर्गत है व नहीं?

श्रीमहासती जी महाराज—हां आवश्यक सूत्र इनके अन्तर्गत है ।

पण्डितजी—श्राद्ध दिनकर इनके अन्दर है व नहीं?

श्रीमहासती जी महाराज—नहीं ।

पण्डितजी—उदयाई सूत्र इनके अन्दर है व नहीं?

श्रीमहासती जी महाराज—उदयाई तो कोई सूत्रही नहीं है हां उववाई सूत्र तो है ।

पण्डितजी—अब इन आवश्यक और उववाई में मन्दिरके बनवाने का और मूर्तिके पूजने का प्रश्न किसी श्रावक व राजा ने किया है व नहीं ।

श्रीमहासती जी महाराज—मूल पाठमें नहीं है।

पण्डितजी—आवश्यक और उववाई दोनों शास्त्रों को मंगवाया जावे ?

श्रीमहासती जी महाराज—आवश्यक और उववाई दोनों शास्त्र विद्यमानहैं उनमें से देखकर बतला दीजिये ।

पण्डितजी—कदाचित् आपके इन सूत्रों में से वह दो गाथाएं निकाल दी होंगी ?

श्रीमहासती जी महाराज—कदाचित् आपके उन सूत्रों में वह दोगाथाएं अधिक क्षेप करदी होंगी ?

पाठकवर्य्य देखिये ? पण्डित जी को सूत्रों से अनभिज्ञ देखकर श्रीमहासती जी महाराज ने उस के प्रश्नका ठीक वैसाही उत्तर दिया।

पण्डितजी—अच्छा तुम्हारे सूत्रों से भिन्न जो स्थानक जैनमत वारहदरी के भण्डारे में सूत्रहैं उन में से मंगवाए जावें फिर मध्यस्थ कर लेवेंगे ?

श्रीमहासती जी महाराज—भण्डारे के ही हों यदि आपको भण्डारे के शास्त्र स्वीकारहैं तो फिर मध्यस्थ की क्या आवश्यकता है।

पंडितजी—मुझे स्वीकारहै इन शास्त्रोंसे ही निर्णय हो जायगा।

श्रीमहासती जी महाराज—ठीक है।

इसपर लाला कन्हैयालाल जी व लाला प्यारा लालजी शास्त्र लेने चलेगए और लेकर वापसआगए।

पण्डितजी—कोई और शास्त्रभी लाए हो ?

लाला कन्हैयालालजी—आपने जाते समयदो शास्त्रों का ही नाम लिया था।

पंडितजी—अच्छाजो समय सभाका नियत हुआथा वह होगया अबकोई औरतारीख़ नियत करनी चाहिये

श्रावकजन—बहुत अच्छा किसी और तारीख़ पर नियत करदीजिये।

इस प्रकार दोनों दलोंकी सम्मतिसे २३ दिसम्बर १८९६की तारीख़ नियतकी गई और सभा विसर्जित हुई ।

२३दिसम्बर१८९६का दिगंबरियोंसेशास्त्रार्थ

नियत तारीख़ २३ दिसम्बर सं० १८९६ ई० पर जैनी भाई और सनातन भाई आर्य्य समाजी तथा कई मतोंके लोग ।स्त्रियें व पुरुष लगभग दो सहस्र की संख्यामें एकत्रित होगए। लाला कन्हैया लालजीने कहा कि आज सभा दोपहर के पश्चात् ३ बजे तक रहेगी आवश्यक और उववाई दोनों शास्त्र विद्यमान हैं आप उनमें से मूर्ति पूजने और मन्दिर बनवाने का प्रश्न और श्रीमद्भगवान् महावीर देवजी की आज्ञा ऐसा कथन दिखला दीजिये ।

प्रश्न—जो शास्त्र पण्डितजी अपने साथ लाए थे उसके एक पृष्ट पर (संकेत करके कहा) कि इस स्थानसे पाठ पढ़ा जाय जहां चम्पा नगरीका वर्णन है।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज—ने वह पाठ पढ़कर सुना दिया जो अर्थ सहित मूलमें लिखा था—

सूत्र—कुकड़ संडेय गामपउरा, उच्छु, जव, सालि, कलीया, गो, महिस, गवे लग, प्यभूया, आयारवंत चेइय,ज्ञुवइ, विविह सणिविठ,वहुला। उक्को

ड़ियगाय, गंठिभेय, भड़, तक्कर, खंडरक्ख, रहिया।

अर्थ—चम्पा नगरी की सीमामें बहुत लोग कुर्कट (मुर्गों) के पालने वाले रहते थे, खेतों में इक्षु, जव, शाल आदि बहुत प्रकारके धान्य की, रसालों (फलों) की उत्पत्ति होती थी, उस चम्पा नगरी में गौ, भैंस, बैल, बकरा आदि पशु भी बहुतथे आकार वंत (सुन्दराकार) मनोहर जुवइ (जवान) स्त्रियों (वेश्यायों) के विविध प्रकारके मुहल्ले बहुतथे, वह चम्पा नगरी लांचग्रही, गठकतरों, उचक्कों, तस्कर (चोरों) खण्डरक्ख (फासीगरों) से रहित थी।

जब उस पाठ और पाठ का अर्थ श्रीमहासती पार्वती जी महाराज कर चुकीं तो पण्डित शिवचरणदास जी ने जो गाथा पढ़ी और उसका अर्थ किया वह निम्नलिखित है।

कुरकट सम्पात ग्राम।

अर्थ—मुर्गा एक वस्तीसे उड़कर दूसरी बस्ती में जासके। नगरी की शोभा और बस्तियों के सान्निध्य का वर्णन है। जो प्रायः देवनागरी भाषा में कवि लोग नगरोंकी उपमामें प्रयोग किया करते हैं।

पाठक देखिये! दो गाथाओं के स्थानों पर एक ही गाथा पढ़ी और एक ही का अर्थ किया,

जिस पर लाला कन्हैयालालजी ने कहा कि पण्डित जी पहले तो आपकी प्राकृत ही अशुद्ध है और जो अर्थ किये हैं वे भी अशुद्ध किये हैं, सोचने की बात है कि भला मूर्गों के पालने वालों को नगर की सुन्दरता से क्या सम्बन्ध और मुर्गा भी एक वस्ती से उड़कर दूसरी वस्ती में जासकता है, इसको कोई भी बुद्धिमान् ठीक समझ सकता है, इस से स्पष्ट है कि पण्डितजी को प्राकृत का ज्ञान नहीं है।

पण्डितजी–(श्रीमहासतीजी महाराज को सम्बोधन करके)–अम्मड़ श्रावक का जहां पर प्रश्न है। कृपया उस स्थल को भी पढ़कर सुना दीजिये।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज–अच्छा सुनिये, आपने उस पाठको भी पढ़कर सुना दिया–

पाठ–अम्मड़स्स परिवायगस्स, णो कप्पई, अण उत्थिएवा अणउत्थिय देवयाणि वा, अण उत्थिय परिग्गहियाणि वा, अरिहंत चेइया णि वा, वंदित्तए वा नमंसित्तए वा, जाव पज्जवा सित्तए वा णणत्थ अरिहंते वा अरिहंत चेइयाणि वा।

अर्थ–अम्बड़ श्रावक को नहीं कल्पता है, अन्य तीर्थी साक्यादिकोंको, अन्य तीर्थीके देव हरि हरादिकोंको अन्य तीर्थीके ग्रहण किये हुए अरिहन्त चेइयाणि वा

अन्य तीर्थीने अरिहन्तका ज्ञान (श्रद्धा ग्रहण की हुई है) उनको भी वन्दना करना, नमस्कार करना उनकी सेवा भोजन आदि से करना। परन्तु इतना भेद है अरिहन्तको और अरिहन्त चे इयाणि वा अर्थात् अरिहन्तके ज्ञान के श्रद्धा वाले साधुओं को वन्दना नमस्कार करूंगा और उनकी सेवा भोजन आदिक से करूंगा, इत्यादि।

पाठक! जब पण्डितजी ने अम्मड़ श्रावकके पाठको भली भान्ति सुन लिया, उस पाठकी अपने पास वाली उववाई सूत्रके पाठसे तुलना करली और सन्तोष होगया तो विवश होगए और उसकी जो यह प्रतिज्ञा थी कि मूर्ति पूजने अथवा मन्दिर बनवाने की आज्ञा श्रीभगवान् महावीर देव की हम सूत्रों द्वारा ही सिद्ध कर देंगे वह पूरी न हो सकी। परन्तु पक्ष पक्ष ही होता है जब कुछ बन न आई तो अंबड़ श्रावक के पाठ में जो चेइय शब्द आया इस पर ही विवाद करने लगे।

पण्डितजी—चेइय शब्दका क्या अर्थ है।

श्रीमहासतीजी महाराज—पाठ पढ़कर चेइय शब्दका अर्थ इस पाठसे इस स्थानसाधु व ज्ञान होताहै क्योंकि इस चेइय शब्दके अनेक अर्थ है। यथा ग्रन्थान्तरे श्लोकः

चैत्यं ज्ञानं समाख्यातं चेइमानस्य मानवं ।
चैत्यं यतिरुत्तमः स्यात् चेइ भगवनुच्यते ॥१॥
चैत्यं जीवमआप्नोति चेइ भोगस्यारंभनं ।
चैत्यं भोगनिवर्तस्य चैत्यं विनउ नीचउ ॥२॥

अर्थ—चैत्य नाम ज्ञान का है, चैत्य नाम प्रसिद्ध अर्थात् योग्य विद्वान् पुरुषका है, चैत्य नाम उत्तम यति अर्थात् साधु का है, चैत्य नाम भगवान् काहै, चैत्य नाम जीवका है चैत्य नाम भोगके आरम्भ का है, चैत्य नाम भोगकी निवृत्ति का है चैत्य नाम विनय और नम्रता का है इत्यादि चैत्य शब्द के और भी बहुत नाम हैं। *

पाठकवर्य्य ! श्रीमहासतीजी महाराज जैसे पाठके अर्थ समझाने वाले हों और किसी विशेष शब्दके अर्थ करने हों तो फिर किस पण्डित को आशंका हो सकती है। पण्डितजीने चेइ शब्दके अनेक अर्थ सुने तो उनको स्वीकार कर लिया परन्तु उन्होंने अपने पक्षके स्वभाववश फिर निम्न लिखित प्रश्न किया।

पण्डितजी—इसका अर्थ कोषमें देखना चाहिये।

---

* नोट—इस का विस्तार देखना हो तो श्री १००८ श्री महासती पार्वतीजी ने जो पश्चात् में सत्यार्थ चन्द्रोदय नामक पुस्तक रची है उसमें भली भान्ति देख सकते हो।

श्रीमहासतीजी महाराज—जब इस शब्दके अर्थ बहुत हैं और आपने स्वीकार भी कर लिये हैं फिर कोषकी क्या आवश्यकता है यदि है तो आप ढूंढ लो यहां तो केवल सम्बन्ध देखना चाहिये जहां जैसा सम्बन्ध हो वहां वैसा अर्थ लगाना चाहिये आपके पास भी शास्त्र विद्यमान हैं देख कर निश्चय कर लेना चाहिये।

पण्डितजी—इसमें मध्यस्थ कर लीजिये।

पाठक! देखिये पण्डितजीकी योग्यता बारम्बार यही कह देते हैं कि मध्यस्थ करलो अर्थात् सभाके समयको टालना चाहते थे।

श्रीमहासतीजी महाराज—हम तो रमते साधु हैं हम मध्यस्थ कहां ढूंढ सकते हैं इस समय दोनों पक्षोंके श्रावक विद्यमान हैं वे जैसा समझें करें।

पाठक! श्रीमहासती जी महाराज ने कैसा अच्छा और उचित उत्तर दिया। क्योंकि जैनके साधु व साध्वी अपने कल्पसे अधिक अकारण किसी स्थान पर रह ही नहीं सकते और उसके अन्दर भी वे अपनी इच्छाके स्वामी हैं।

लाला कन्हैयालालजी श्रावक—पण्डितजी? आपने जो प्रतिज्ञा पहले की थी कि हम तुम्हारे

ही सूत्रों में मूर्ति पूजने और मन्दिर बनवाने का प्रमाण दिखलायेंगे, वह पूरी नहीं की, केवल एक चेई शब्द पर मध्यस्थ करने को उद्यत होगए जिस शब्द के बहुत अर्थ श्रीमती पार्वतीजी महाराज ने आपको बतला दिये हैं, और स्वयं (आपने) स्वीकार कर लिये हैं, अब मध्यस्थ की क्या आवश्यकता है ।

पाठक ! पण्डितजी से इस बात का कुछ उत्तर न बन पड़ा तो एक भाई को जिसका नाम श्रीरामजी था । सङ्केत किया कि वह उठे और व्याख्यान (लैक्चर) देकर सभाका समय पूरा करें और उन्होंने जो चाहा सो ब्याख्यान (लैक्चर) में कहा और समय समाप्त कर दिया जिससे सभा विसर्जित होगई । इस चर्चा की एक पृथक् पुस्तक भी लाला कन्हैयालाल बेदवाड़ा निवासी देहलीने लाला जय नारायण के प्रबन्ध से ज्ञान प्रैस देहली में १५ फरवरी सं० १८९७ ई० को छपवाई थी, जिस सज्जन को देखने की इच्छा हो उनसे बिना मूल्य मंगवा कर देख सकता है ।

पाठक ! हम चाहते हैं कि इस बात का पूर्णतया निर्णय होजाय कि जैन सूत्रों में मूर्ति पूजन

है वा नहीं। पहले तो दिगम्बर आमना वालों के शास्त्रार्थ से ही सिद्ध होचुका है कि जैन सूत्रों में मूर्ति पूजन का वर्णन नही है। दूसरे आत्माराम जी संवेगी का बनाया हुआ "तत्वनिर्णय प्रासाद" प्रमथावृत्ति पृष्ठ २८ की पंक्ति १४, १५ में देख लेंवे, इसमें आत्मारामजी लिखते हैं कि यदि श्रुत ज्ञान (शास्त्र) न होवें तो देव गुरु धर्म का बोध होना इस काल में कदापि न होवे श्रुत ज्ञान की वृद्धि ही धर्म की वृद्धि है, इसके अतिरिक्त और कोई भी धर्म वृद्धि का उत्तम उपाय नही है, इसलिये सिद्ध हुआ कि धर्म शास्त्रोंके पठन पाठनके अतिरिक्त और कोई भी उपाय धर्म वढ़ाने का नहीं है, क्योंकि आत्माराम जी ने भी इस स्थान पर मूर्ति पूजामें धर्मवृद्धि नहीं लिखी है इससे यह भी निश्चय होगया कि जो लोग यह कहते हैं कि मूर्ति पूजनसे धर्मवृद्धि होती है वह सर्वथा आत्मज्ञान से अनभिज्ञ हैं।

तीसरा प्रमाण और लीजिये आत्मारामजी क्या लिखतेहैं। उनकी रचित अज्ञान तिमिर भास्कर छापा वम्बई गुजरात प्रिन्टिग वर्क्स सं० १९४४-१८८८ई० खण्ड दूसरा पृष्ट १२० पंक्ति दूसरीसे चलता है, जिसकी प्रतिलिपि नीचे लिखी गईहै—

प्रश्न—तुमने कहा है जो सूत्रमें कथन करा है सो परूपण करे जो पुनः सूत्र में नहीं कहा है और विवादास्पद लोकमें है कोई कैसे कहता और कोई किसी तरह कहता है तिस विषयक जो कोई पूच्छे तब गीतार्थ को क्या करना उचित है?

उत्तर—जो वस्तु अनुष्टान सूत्रमें नहीं कथन करा है करने योग्य चैत्य वंदन आवश्यकादि वत् और प्राणातिपात की तरह सूत्र में निषेध भी नहीं करा है, और लोकों में चिरकाल से रूढ़ी चला आता है सो भी संसार भीरु गीतार्थ स्वमन कल्पित दूषण करी दूषित न करें। गीतार्थों के चित में यह बात सदा प्रकाश मान रहती है।

यह उन आत्मारामजीका लेख है जो मूर्ति-पूजक पुजेरों के एक प्रसिद्ध योग्य पण्डित सूरि थे। जब उन्होंने भी स्वयं मान लिया कि मूर्ति-पूजन जैनसूत्रोंमें नहीं है रूढी से ही है तो फिर इस विषयमें अधिक छान वीन की क्या आवश्यकता है। क्योंकि इन्होंके पूर्वज आचार्य्योंमें से जिनवल्लभ सूरीके शिष्य जिनदत्त सूरीजी निज कृत सन्देहदोलावली ग्रन्थमें गाथा लिख गये हैं यथा—

गड्डरि पव्वाहउंजे एइ।
नयरं दीसए वहु जणेहिं ॥
जिण गिह कारवणाई।
सुत्त विरुद्धो असुद्धो अ ॥६॥

अर्थ—भेड़ चालमें पड़े हुए लोग देखने में आते हैं कई नगरों में मन्दिर वनवाते हैं, फल फूल आदि से पूजा करते हैं, यह सव सूत्रों से विरुद्ध है। (जिन मतके नियमों से) वाहर है और ज्ञान वालों के मत में अशुद्ध है। इस विषय का विस्तृत स्वरूप देखना हो तो सत्यार्थ चन्द्रोदय जैन ग्रन्थ श्रीमहा सती पार्वतीजी महाराज विरचित में देख लेंवे ॥

आपका चतुर्मासा सं० १९५४ का देहली में

देहली से आपने यमुना पार विहार कर दिया इन क्षेत्रों में कुछ काल धर्मोपदेश करती हुई आपने देहली वाले श्रावकों की विनती पर सं० १९५४ वि० का चतुर्मासा देहली में किया। श्रीसती द्रौपदी जी महाराज का दीक्षा लेनेके पश्चात् पहला चतुर्मासा भी आपके चरणोंमें देहलीमें ही हुआ श्री सती द्रौपदीजी महाराज वड़ी विद्वान् आर्य्या हैं। जो उर्दू अक्षरोंमें श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज का जीवन चरित्र पहले वना है वह इन्हीं आर्य्या

जी महाराजके साहसका फल है परन्तु वह बहुत ही संक्षिप्त है, इसलिये इसके दोवारा छपवानेकी आवश्यकता हुई जिससे यह भी लाभ हुआ कि जो लेख व घटनाएं पहले ग्रन्थमें छपनेसे रह गई थीं वह भी मिलाकर छपादी गईं।

श्रीसती द्रौपदीजी का संक्षेपतः जीवनचरित्र

आपके पिताजी अग्रवाल वैष्णव वैश्य लाला मेलारामजी और आपकी माता बाई जमना देवी जी हैं जो अम्बाला नगरके रहने वाले हैं। आप का विवाह लाला कृष्णगोपालजीसे जो अम्बाला निवासी लाला बंसीलालजीके पुत्र हैं हुआ था। श्री १००८ जैन आचार्य्या श्रीमती पार्वतीजी महा॰ राजकी शिष्या श्रीसती भगवान देईजी महाराज का सं॰ १९५३ वि॰ का चतुर्मासा अम्बाला नगर में था। श्री.१०८ श्रीभगवान देईजी महाराज जो बड़ी विदुषी पण्डिता थीं उनकी संगतिसे श्रीमती द्रौपदीजी को ज्ञानचर्चा करनेका लाभ हुआ जो संशय उनके मनमें थे वे दूर होगए। उन्होंने सत्या- सत्यकी इस प्रकार परीक्षा करली कि जैसे जौहरी जवाहरातकी कर लेता है और यह जान लिया कि इस जैनधर्म में और मतों की अपेक्षा यम-नियम

श्रेष्ठ रीतिसें पाले जातें हैं इस धर्मका आश्रय लेने से संसार समुद्रसे पार हो सकूंगी इस प्रकार उन को वैराग्यका वह रंग चढ़ गया कि जो मोहरूप धूपसे उतर नहीं सकता था । एक दिन हाथ जोड़ कर उन्होंने श्रीसती भगवान देईजी महाराजके चरणोंमें प्रार्थना की कि यदि आपकी कोई शिष्या बनना चाहे तो आप उसपर कृपा कर सकते हैं? श्रीसती भगवानदेईजी महाराजने उत्तर दिया, क्यों नहीं, परन्तु उसको कि जो हमारी कठिन वृत्ति के अनुकूल साधना कर सकें । इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि क्या इसमें चौरासी लाख योनियों के जन्म मरणके दुःखोंसे भी अधिक कष्ट हैं । तब श्रीसती भगवानदेईजीने कहा कि नहीं कष्ट तो अज्ञानियोंके लिये हैं ज्ञानियोंको नहीं उन्होंने फिर प्रार्थना की कि मेरा मन सांसारिक मिथ्या-सुखोंसे विरक्त होगया है आप कृपा करके मुझे तारें । इस पर श्रीभगवानदेईजी महाराजने कहा हम तो हर्षके साथ स्वीकार करती हैं परन्तु तुम जैनसे अनभिज्ञ हो और तुम्हारी आयु भी लग भग १८ वर्षके है लोग कहेंगे कि धनिक लोगोंकी छोटी छोटी बालिकाओंको फुसला लेती हैं तथा

पति वाली स्त्री को आज्ञा मिलनी भी कठिन है अब बतलाओ कि कैसे करें। इस पर श्रीमती द्रौपदीजीने प्रार्थना की, कि यदि मैं घर वालोंकी आज्ञा लेलूं तो फिर चेली बनालोगी ? पाठक देखिये वैराग्य का रंग कैसा चढ़ा और किस प्रकार संसार के सुखोंको स्वयं अनुज्ञा लेकर त्याग करनेको उद्यत हुई, बलिहारे ऐसी सच्ची वीरता पर। श्रीसती भगवानदेईजी महाराजने कहा, हां फिर तो दीक्षा ले सकती हो। इसपर उन्होंने अपने माता पिता और सुसराल वालों दोनोंसे आज्ञा मांगनी आरंभ की। सब जानते हैं कि, संसार किस प्रकार मोह की सांकलसे जकड़ा हुआ है, माता पिता और सुसराल से आज्ञा लेना कैसा कठिन कार्य्य था, परन्तु उन्होंने इस कार्य्य पर विजय प्राप्त की, और उभय पक्षकी आशा लेकर लुधियानेमें आ गई। वहां श्री १००८ श्री जैन आचार्य्य पूज मोतीराम जी महाराज विराजमान थे उन्होंने उनको अपने मुखारविंन्दसे दीक्षाका पाठ पढ़ाकर श्रीमती सती भगवानदेईजी की शिष्या बनादी इसके अनन्तर श्रीमहासती तपस्विनी मेलोजी महाराज से देहली की ओर विचरनेकी आज्ञा लेकर देहलीमें श्रीमहा-

सती पार्वतीजी महाराजके चरणोंमें उपस्थित हुईं। इस चतुर्मासेमें श्रीसती द्रौपदीजी महाराजने आप से विद्याका लाभ लिया अर्थात् (१) पंचसन्धि (२) भक्तामर (३) नवतत्त्वविचार (४) दस वैकालिक सूत्र पढ़े। इस चतुर्मासेमें धर्म ध्यानका बड़ा उद्यम हुआ और तपस्या भी अच्छी हुई।

आपका मारवाड़ पधारना।

देहली के चातुर्मासे में मेवाड़ आदि कई नगरों के श्रावक व श्राविका आपके दर्शनों को आए, उन्हों ने विनती की, कि श्रीमतीजी आप पंजाब में तो वहुत वर्षों से धर्मोपकार कर रही हैं अब कृपा करके आप मारवाड़ आदि के क्षेत्रो में भी पधार कर धम्मोंपकार करे और उन क्षेत्रों को भी अपने चरणों कमलों से पवित्र करें। आपने कहा कि जैसी फरसना अर्थात्...द्रव्य, क्षेत्र,काल, भावके आधीन हैं। अस्तु चतुर्मासे की समाप्ति के पश्चात् आपकी शिष्याओं ने भी प्रार्थना की कि हमको मारवाड़ देश दिखलाने की कृपा करें, इसलिये आपने मार- वाड़ की ओर विहार कर दिया और कुतब झाड़सा सोना नगीना फिरोजपुर आदि क्षेत्रों में विचरती हुई अलवर रियासत में पधारीं। अलवर वालों की

अधिक विनती होने से आपने संवत् १९५५ वि०का चतुर्मासा अलवर स्वीकृत्त करके जयपुर सवाई को विहार कर दिया जयपुर के श्रावकोंने बड़ी श्रद्धासे भक्ति सहित चतुर्मासा की विनती की परन्तु अलवर का चतुर्मासा प्रथम मान लिया गया था इसलिये पुनः अलवर पधारना हुआ ॥

सं०१९५५का चातुर्मास्य रियासत अलवरमें

अलवर रियासतके श्रावक व श्राविकाओंको आपके इस ओर पधारनेका बड़ा ही उत्साह था उन्होंने धर्म ध्यानका बड़ा उद्यम किया और वहां उदयपुर,पाली,रतलाम,अजमेर और जयपुरके कई भाई सेठ लछमनदासजी केसरमलजी सुगनचन्दजी चौथमलजी बालचन्दजी हमीरमलजी आदि विनतीके लिए अलवर में आए, आपके चरणोंमें प्रार्थना की कि, आपके इस ओर विहारकर आनेसे मारबाड़के अनेक नगरोंके भाईयोंकी शिकायतें हमारे पास आरही हैं कि, श्रीमहासतीजी महाराज जयपुरसे वापिस चली गईं इसका क्या कारण है क्या आप लोगोंसे सेवाभक्ति विधिपूर्वक न बन आई ? इसलिये आप कृपा करके जयपुर पधारें । आप की इच्छा तो देहली वापिस आनेकी थी परन्तु

उनकी बिनती इतनी प्रवल थी कि आपको अपना विचार वदलना पड़ा और चतुर्मासा समाप्त होने पर जयपुरकी ओर विहार कर दिया और गाओं गाओं विचरती हुई जयपुर पधारीं जयपुरके लोगोंने आपके पधारने पर अत्यन्त प्रसन्नता प्रकटकी, और व्याख्यान में श्रावक व श्राविकाके अतिरिक्त अन्य मतोंके लोग भी सम्मिलित होतेथे, कईएक प्रश्न पूछकर अपनेसंशय निवृत्त करतेथे। इस स्थान पर तेरह पंथियोंसे कुछचर्चा भी हुई।

जयपुरमें तेरह पंथियों से चर्चा

पहले यह समझ लेना चाहिये कि "तेरह पंथ" जैनमत की एक शाखा निकली हुई है, अर्थात् अनुमान संवत् १८१५ वि० एक भीखम (भीष्म) नाम साधु अपने गुरु रघुनाथजी की आज्ञा न मानकर वारह साधुओं को अपने साथ लेकर पृथक् होगये थे और दयादान का निषेध करते थे, अर्थात् जिस समय कोई किसी जीव की हिंसा करने लगा हो और वह जीव भयभीत होकर अपने प्राण वचाने चाहता है, उसे छुड़ाना न चाहिये और ऐसी श्रद्धा वाले साधुके अतिरिक्त अन्य किसी को दान नहीं देना चाहिये। ऐसी सूत्रसे विरुद्ध परूपना को सुनकर लोगों ने इनका नाम तेरह पंथी रख दिया। इस

सम्प्रदायके साधु मारवाड़में अब भी बहुत हैं। इस भीखमजी की श्रद्धा वाले (तेरह पंथियों) श्रावकों ने जयपुर में श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज से अधोलिखित प्रश्न किये—

तेरह पंथी—क्यों जी दया नाम न मारने का है, अथवा कुछ और ?

श्रीमहासतीजी महाराज—तुम को दयाके नाम का तो ज्ञान ही नहीं है तो फिर चर्चा किस करतूत पर करना चाहते हो।

तेरह पंथी—आप ही दयाके नामका अर्थ कृपा करें।

श्रीमहासती जी महाराज—हां बतलाती हूं सुनिये न मारने का नाम दया नहीं है न मारनेका नामतो अहिंसा है अर्थात् हिंसाकी निवृत्ति। और प्राणियोंके प्राणोंकी रक्षा के लिये मन, वाणी, कर्मणा से प्रयत्न करना इसका नाम दया है अर्थात् दया में प्रवृत्ति। और मरनेके भयसे भयभीत प्राणी के प्राणों की रक्षा करनेके प्रयत्न करनेका नाम अभयदान है जैसे किसी दुष्टने किसी प्राणीके मारने का उद्योग किया वह प्राणि मृत्युके भयसे भयभीत हो रहा है उसके भयके दूर करनेमें सहाय्य प्रदान करनेका नाम अभयदान है क्योंकि भय हुए विना

अभय दान किसको किया जाता है और इसी उपदेश का नाम मा हनो मा हनो अर्थात् मत मारो मत मारो ऐसा है।

तेरह पंथी—तो फिर आप तो राग द्वेषके बंधनको बढ़ाते रहते होंगे।

श्रीमहासती जी महाराज—वह कैसे ?

तेरह पंथी—जब कोई बिल्ली मूषकको मारने दौड़ी तब तुमने उसको बचानेका उद्यम किया, तो तुम्हारा मूषक पर राग हुआ और बिल्ली पर द्वेष हुआ।

श्रीमहासती जी महाराज—वाह वाह अच्छी कही तुमको राग द्वेषका भी ज्ञान नहीं राग तो अपने काम सुधारने वाले अर्थात् सुख देने वाले पर आता है और द्वेष दुःख देने वाले पर आता है भला मूषकने हमारा कौनसा काम सुधारा जो उस पर राग हुआ और बिल्लीने कौनसा काम बिगाड़ा जो उस पर द्वेष हुआ हमने तो दोनों पर उपकार किया अर्थात् चूहेको अभय दान दिया और बिल्लीको पापसे हटाया यदि बिल्लीको हटाने से तुम बिल्ली पर द्वेष समझते हो तो जब बिल्लीको कुत्ता मारने लगे तो क्या हम बिल्लीके बचानेका उद्यम नहीं करते।

तेरह पंथी—हां करते हो ।

श्रीमहासती जी महाराज—तुम कहतेथे कि बिल्ली पर द्वेष है यदि द्वेष था तो बिल्ली को क्यों बचाया । हे भोले भाईयो ! यह राग व द्वेष नहीं है यह तो अनुकंपा अर्थात् दया है जो सम दृष्टिका लक्षण है मूषकको अभय करना और बिल्लीको खोटे कर्मसे हटानेकी शिक्षा करना है अर्थात् हट हट कहना है उसको यही शिक्षा है ।

तेरह पंथी—परन्तु तुमने अन्तराय कर्मतो बांधा ।

श्रीमहासती जी महाराज—वह कैसे ।

तेरह पंथी—बिल्ली मूषक का भक्षण करती तुमने हटाकर उसके भोजन की अन्तरांय ली ।

श्रीमहासतीजी महाराज—अन्तराय कर्म तो उसको बंधता है जो किसी को द्वेष करके भोजन करने से हटावे । हम तो उसे पापसे हटाते हैं क्यों कि, यदि बिल्ली दूध पीती हो तो हम उसको नहीं हटाते तो फिर हम अन्तराय देने वाले कैसे होसकते हैं प्रत्युत हम तो उपकारी सिद्ध होसकतेहैं । यथा दृष्टांत

किसी की माताने अपने पुत्र को दूध पिलाने वास्ते दूध का कटोरा भरके रखा । वह माता कुछ लेने वास्ते अन्दर गई । अचानक एक सर्प निकला

और उस कटोरेसे दूध पीने लगा इतने में वह स्त्री लौट कर आई और क्या देखती है कि, सर्प दुग्ध पान करके भागा जा रहा है वह दूध सर्प की लार पड़नेसे विषवत् होगया है इतनेमें उसका पुत्र भी आगया और कटोरेको उठाकर मुंहसे लगाने लगा तो माताने दौड़ कर वह कटोरा विष जान कर उस के हाथसे छीन लिया। अब बतलाइये कि, क्या वह माता अपने पुत्र की अन्तराय लेने वाली सिद्ध होती है, नहीं नहीं वह पुत्र को विषसे बचाने वाली और उसके प्राणों की रक्षा करने वाली सिद्ध होती है। इसी प्रकार दया करने वाले भी हिंसा रूपी पापके विषसे बचाने वाले सिद्ध होते हैं अन्तरायके नहीं।

तेरह पंथी—अब दानके भेदकी भी कृपा करें।

श्रीमहासतीजी महाराज—पहले तुम यह बतावें कि, पहले प्रश्नके उत्तरको समझ गए हो और स्वीकार कर लिया है कि ठीक है ?

तेरह पंथी—ठीक हो व ना हो आप दान का भेद भी कहदें।

श्रीमहासतीजी महाराज—नहीं नहीं जब तक एक प्रश्न पूर्णतया सिद्ध न होजाय तब तक दूसरा प्रश्न करना व्यर्थ है क्योंकि, जब पहले ही प्रश्न का

उत्तर स्वीकृत नहीं हुआ अर्थात् सम्यक् नहीं समझा गया तो दूसरे प्रश्नके उत्तर की क्या आशा रखी जा सकती है उसको कब समझोगे या तो यह कहो कि, प्रश्न का उत्तर ठीक है अन्यथा दूसरा प्रश्न न करो।

तेरह पंथी—महाराज आपने अहिंसा और दया, राग और द्वेषके अर्थ बहुत अच्छे कहे हैं।

श्रीमहासतीजी महाराज—अच्छा तो तुम्हारा दूसरा प्रश्न क्या है ?

तेरह पंथी—दान किस को देना चाहिये ?

श्रीमहासतीजी महाराज—सुपात्र को।

तेरह पंथी—सुपात्र किस को कहते हैं।

श्रीमहासतीजी महाराज—यह तुम ही बतलाओ।

तेरह पंथी—यह क्या ?

श्रीमहासती जी महाराज—जो तुम्हारी समझ में अच्छा प्रतीत होता होगा तुम कदाचित् उसी को सुपात्र समझोगे।

तेरह पंथी—हम तो तेरह पंथी साधुओं को ही दान देने में पुण्य मानते हैं इनके अतिरिक्त सब को दान देने में एकान्त पाप मानते हैं।

श्रीमहासतीजी महाराज—तो ग्यारह पड़मा-धारी श्रावक को दान देना भी पाप मानते होंगे ?

तेरह पंथी—हां

श्रीमहासतीजी महाराज—तो श्रीमद्भगवान् महावीर स्वामीजी ने ग्यारहवीं पड़मामें श्रावक को गोचरी करनी क्यों कही है अर्थात् जिसके गृह में वह श्रावक गोचरी को अर्थात् दान लेने को जायगा उसको पापी बनायेगा और वह गृहस्थ उसको दान देगा तो एकान्त पापी बनेगा। तो क्या भगवन्तों ने पाप बढ़ाने के लिये पड़माधारी श्रावक को गोचरी करनी कही है और तीर्थङ्कर देवोंने दीक्षा लेने के समय वर्ष दिन तक पहले दान दिया है तो क्या पापके महल की जड़ लगाई है?

तेरह पंथी—चुप।

श्रीमहासतीजी महाराज—भला यह तो बतलाओ कि तुम पुण्यको जानवा योग मानते हो व छोड़वा योग अथवा आदर वा योग?

तेरह पंथी—छोड़वा योग अर्थात् संसार में बन्धन रूप होने से।

श्रीमहासतीजी महाराज—तो फिर तेरह पंथी साधु को भी दान नहीं देना चाहिये क्योंकि तुम पुण्यको छोड़वा योग कहते हो और तेरह पंथी साधुओं को दान देनेमें ही पुण्य कहते हो और सब

के दान देने में एकान्त पाप कहते हो और तेरह पंथी साधुओंको दान लेना भी न चाहिये क्योंकि, दान देने वाले संसारके बंधनमें पड़ेंगे तो क्या साधु लोगों को संसारके बंधनमें डालते फिरते हैं ?

तेरह पंथी—(सोच सोच कर) तो साधु के बिना किसको दान देने में पुण्य है ? और साधुके दान देनेमें क्या है ?

श्रीमहासतीजी महाराज—हे भोले भाईयो ! आप लोकोंने पुण्य पाप और धर्म अधर्म का पूरा विचार नहीं सीखा है कोई स्थूलसी बात सुनली उसे गांठमें बांध लिया परन्तु सूक्ष्म अर्थ का ज्ञान नहीं जाना लो सुनो, साधु को दान देना निर्जरा तत्त्व में है पुण्य तत्त्वमें नहीं अर्थात् साधु को दान देनेमें, ऐसा पाठ आया है ।

निज्जर ट्ठाए धम्मं ट्ठाए मोख ट्ठाए

अर्थात् कर्म क्षय करने के लिये, धर्म के लिये मोक्षके लिये, प्रत्युतपुण्यके लिये साधुको दान देना और साधुओंको पुण्यका दान लेना सूत्रमें निषेध है यथा दसवै कालिक ५ वें अध्याय ।

"पुणट्ठा पगड़ं इमं" इति वचनात्

तेरह पंथी—तो फिर पुण्य किसको देनेमें है ?

श्रीमहासतीजी महाराज—दीन, दुःखी, निस्सहाय आर्य्यवृत्ति रखने वालेको देनेमें।

तेरह पंथी—आप भी तो पुण्यको छोड़वा योग मानते होंगे ?

श्रीमहासतीजी महाराज—पुण्य एकान्त छोड़वा योग नहीं है पुण्य जीवको पवित्र करता है पुण्य जीवको उच्च गतिमें लेजाता है पुण्य मोक्ष मार्ग अर्थात् मोक्षकी साधनामें सहायता देता है। जैसे अन्तगढ़ सूत्रमे श्रीकृष्णचन्द्रजी ने कहा है कि मैं अकृत पुण्य हूं। जो संयम लेनेको समर्थ नहीं हूं। इसलिये पुण्य तीनों पदमें है अर्थात्—

ज्ञेय, हेय, उपादेय

ज्ञेय अर्थात् जानवा योग, हेय अर्थात् छोड़वा योग, उपादेय अर्थात् आदरवा योग अर्थात् अंगीकार करनेके योग्य।

तेरह पंथी—पुण्य जानवा योग कब छोड़वा योग कब और आदरवा योग कब ?

श्रीमहासतीजी महाराज—सचित वस्तु के दान करते हुए वर्त्तमानमें जानवा योग है यथा (१) अन्न पुन्ने पानी पुन्ने आदिक अर्थात् किसी पुरुष ने साधुसे पूछा कि, मैं सदावर्त व प्याऊ लगाऊं,

तो साधु पुण्यको जानवा योग समझ कर मौन अर्थात् चुप रहते हैं, यदि छोड़वा योग होता तो ना कर देते (रोक देते) और आदरवा योग होता तो हां कर देते (आज्ञा दे देते) बस इस समय जानवा योग ही है क्योंकि यदि रोकते तो दान लेने वालोंकी अन्तराय आती और हां करते तो जलमें जीव कीचमें कृमि व अन्नमें जीव अथवा सुसरी ढोरा आदि, स्थावर और जंगम जीवोंकी हिंसा होती है उसका अनुमोदन होता इसलिये मौन करना उचित है और (२) संयम तपमें सहायक होने से पुण्य आदरवा योग है अर्थात् मनुष्यदेह पञ्चेन्द्रिय संपूर्ण, आर्य्य देश, आर्य्य कुल आदि पुण्यसे ही मिलते हैं यथाठानाङ्ग सूत्र ठाणे ५। ७। १० वें में १० बोल दुर्लभ मिलते हैं तो जो बात अच्छी समझी जाती है उसे ही दुर्लभ कहते हैं इत्यर्थः और इसी सामग्रीसे तप संयम मिल सकता है यथा उत्तराध्ययन अध्ययन तेईसवां श्री गौतमजी महाराजने कहा है कि, मनुष्यका शरीर नावा है और जीव नाविया (खेवट) है अर्थात् मनुष्य तनुमें जीव तप संयम पालकर संसार सागर से पार हो सकता है और तीर्थंकर पदभी पुण्यके

उदयसे मिलता है अर्थात् नाम कर्मकी ९३ प्रकृतियों में से ३७ प्रकृतियां पुण्य से बंधती हैं उन ३७ में ही तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति भी है अर्थात् पुण्यसे ही तीर्थंकर पद मिलता है जैसे दया पोसा करानेमें अथवा तप संयमकी सहायता देनेमें, यथा अन्तगढ़ सूत्रमें श्रीकृष्णजीने संयम लेने वाले को सहायता दी है कि, जिसका पुत्र संयम लेगा उसके माता पिता की सेवा में पुत्र की न्याई करूंगा और जिन के माता पिता दीक्षा लेंगे उनके बालकों की में माता पिता के समान पालना करूंगा। इत्यादि सो श्री कृष्णचन्द्रजी ने इस तप संयम के लिये तन मन धन लगाकर पुण्य प्रकृति में तीर्थङ्कर नाम गोत्र कर्म बांधा है ऐसा सम्भव है।

(२) चौदहवें गुणठानेमे पुण्य छोड़वा योग होता है जहां निरास्त्रव (क्रिया रहित होकर) नवीन कर्म नहीं बांधता, यथा दृष्टान्तः—

नदी में नाव पड़ी है गांओं के रहने वालों को वह नाव जानवा योग है अर्थात् वे जानते हैं कि यह नाव है परन्तु उनका इससे कुछ प्रयोजन नहीं परन्तु गांव में से किसी को पार जाने की इच्छा हो तब उसको वह नाव आदर वा योग है अर्थात् जब

तक नदी में नाव पर चढ़ा हुआ है तब तक उस नाव की रक्षा करता है अर्थात् इसमें जल आरहा है इसे रोको अर्थात् इस छिद्र को बन्द करो और इसके बंधन ढीले हैं कस दो लाओ चप्पू मैं लगाता हूं इत्यादि जब नाव तीर पर जालगे तब नाव छोड़ने योग्य है अर्थात् उस नावमें बैठा नहीं रहता कि इसने मुझे पार कियाहै इसे क्यों छोडूं नहीं नहीं तुरन्त छोड़ देता है अर्थात् नाव से उतर कर पार होजाता है। इस उत्तर को सुनकर कई तेरह पंथियों की श्रद्धा हिल गई और कईओं की ठीक होगई प्रतीत होती थी और वे आपकी प्रशंसा करते हुए चले गए और आपने जयपुरमें धर्म का विशेष प्रचार कर अजमेर की ओर विहार कर दिया।

एक राजकुमार के प्रश्न।

आप जयपुर से विहार करके सेठ सौभाग मलजी ढड्ढाके बाग़ में उतरीं। वहां जयपुरके बहुत से श्रावक व श्राविका और कई अन्य पुरुष व्याख्यान सुनने के लिये आए। उसी बाग़ में एक ओर एक कोठी में किसी रियासत का एक राजकुमार उतरा हुआ था उसने अपने सेवक से पूछा कि, सामने की कोठी में बहुतसे साहुकार व भद्र महिलाएं क्यों

एकत्र हुई हैं ? उसने उत्तर दिया कि, जैन मत की साध्विआं इस स्थान पर उतरी हुईहैं और वे धर्मोपदेश करती हैं उनका उपदेश सुनने के लिये यह सब लोग इकट्ठे हुए हैं। यह सुनकर वह राजकुमार भी सभा में व्याख्यान सुनने के लिये आ बैठा, व्याख्यान में श्री महासतीजी महाराज साधु के वैराग्य व त्याग का कथन कर रही थीं, वह राजकुमार बहुत प्रसन्नता से व्याख्यान सुनता रहा और व्याख्यानके पश्चात् हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा।

राजकुमार—मन और इन्द्रियां किस प्रकार वश में हो सकती हैं ?

महासतीजी महाराज—मनको योगेश्वरों ने घोड़े की उपमा दी है। इस लिये मन ज्ञान की रास (लगाम) और वैराग्यके कोड़ेसे वशीभूत होसकता है और इन्द्रियों को गर्दभके समान माना है जो विषयोंके त्याग और तपस्या के डण्डे से वशमें हो सकती हैं।

राजकुमार—सबसे उत्तम वस्तु क्या है और सबसे अधम वस्तु क्या है ?

महासतीजी—सबसे उत्तम वस्तु ज्ञान है और सबसे अधम वस्तु झूठ है।

राजकुमार—सबसे प्यारी वस्तु क्या और सबसे खारी वस्तु क्या ?

महासतीजी महाराज—सबसे प्यारी वस्तु धर्म और सबसे खारी वस्तु क्रोध ।

राजकुमार—क्या आप हमको जैन साधु बनाकर चेला कर सकती हैं ?

महासतीजी महाराज—नहीं हम चेला नहीं कर सकतीं क्योंकि, हमारे जैन शास्त्रोंका असूल है (शास्त्रोंमें लिखा है) कि, साधुओंकी मडण्ली पृथग् रहे और साध्विओंकी मण्डली पृथग् रहे ।

जिस मकानमें साधु रहे उस मकानमें साध्वी न रहें और जहां साध्वी रहें वहां साधु न रहें वरञ्च जिस मुहल्लेका एक दरवाज़ा हो उस मुहल्लेमें भी न रहें प्रत्युत यहां तक लिखा है कि, जो गांव कोट वाला हो और उसका केवल एक दरवाज़ा हो उस गांवमें यदि साधु ठहरे हुए हों तो साध्वी न ठहरें और यदि साध्वी ठहरी हुई हों तो साधु न ठहरें और तीन साध्वियोंसें न्यून साध्वियोंकी मण्डली नहीं बिचर सकती और दो साधुओंसे न्यून साधुओंकी मण्डली नहीं बिचर सकती इसलिये आज्ञा है कि, जिस पुरुषको वैराग्य हो वह साधुओंके पास

दीक्षाले और जिस स्त्रीको वैराग्यहो वह साध्वियोंके पास दीक्षाले अर्थात् साधु पुरुप हीको चेला करसकते हैं स्त्रीको नहीं और साध्वियां स्त्रीको चेली कर सकती हैं पुरुपको नही इसलिये आपको उचित है कि, यदि संयम लेलेका विचार हो तो किसी साधु महात्मा से विनती करो वे आपको चेला करसकते है,परन्तु एक वात स्मरण रखनाकि जैनका साधु होना अतिकठिन है जिसमे पांच यम अर्थात् महाव्रतोंका आजीवन पालन है। (१)दया(२)सत्य(३)अचौर्य अर्थात् निर्दोष पदार्थ आहार जल वस्त्रआदिक गृहस्थीकादिया हुआ लेना विना दिया न लेना (४) ब्रह्मचर्य अर्थात् सर्वदा यति रहना स्त्रीको स्पर्श तक न करना और जिस मकानमे स्त्री रहती हो उस मकान में भी न रहना(५) निर्ममत्व अर्थात् धन दौलतका सर्वथा परित्याग और रात्रिके समयमें खाने पीनेका और खाने पीने की वस्तु रखने का भी त्याग इत्यादि । यह वह फ़क़ीरी नहीं है कि, गृहसे किसी वातसे तंग होकर निकल गए और भगवे वस्त्र पहन लिये फिर गृहिणी पीछेसे रोतीहुई आगई उसकोभी भगवेवस्त्र पहनाकर अपने पास रख लिया और एक स्थान पर डेरा वना लिया यदि मन चाहा तो पुनः गृहमें लौट आए इत्यादि। हे

भाई! साधु होना तो बहुत दूर है आप पहले गृहस्थ में रहते हुए ही यथा योग्य धर्म का पालन करो अर्थात् (१) आखेट (शिकार) न करो अर्थात् निर्दोष प्राणियों को न मारो (२) राज विरुद्ध और धर्म विरुद्ध जूठ न बोलो (३) परस्त्री का त्याग करो और (४) मांस खाना और मद पीना छोड़ दो (५) अपने इष्ट देवों का जाप बड़ों की भक्ति और सज्जनों से प्रेम अनाथों की रक्षा इत्यादि धर्मोपकार करने से आपका जन्म निष्फल न होगा।

राजकुमार—(हाथ जोड़ कर) (१) किसी दौरे के अवसरके अतिरिक्त आखेट(शिकार)नहीं खेलूंगा (२) विवाह और भोज के अतिरिक्त मांस और मद अंगीकार न करूंगा और मेरा एक विवाह तो हो चुका है अब दूसरा होने वाला है परन्तु मेरी माता सौतेली है उसने मेरे पिताजी को सिखला कर उनका हृदय मेरी ओर से कलुषित कर दिया है इस लिये इस विवाह में विलम्ब हो गया है और इसी लिये मैं उदास होकर इधर को भ्रमण करनेके लिये चला आया हूं परन्तुमैं विवाहिता और उनकी साथकी दासियोंके आतिरिक्त सब पर स्त्रीका त्याग करता हूं।

श्रीमहासतीजी महाराज ने उस राजकुमार

को उसकी विनतीके अनुसार त्याग करादिये और वह राजकुमार विनयपूर्वक प्रणाम करके चला गया।

पाठक! देखिये कहां तक परोपकार श्रीमहासती श्रीपार्वतीजी महाराज अपने जीवनमें कररही हैं। इन वातों का त्याग स्वीकार करना कोई सहज वात नही हे परन्तु श्रीमहासतीजी महाराजके सत्य उपदेश मे ही यह वल है, कि राजकुमार भी इन वातो का सहर्ष त्याग करे इस कुसार का और ग्रांव का नाम याद नहीं रहा। इसके अनन्तर आप वहांसे किशन गढ़ अजमेर नवा शहर में धर्म उपदेश करती हुई सोहजत नगरमें पधारी इस स्थान पर आपके उपदेश से वाई हीरादेवीजी को वैराग्य होगया और दीक्षा ग्रहण करने को उद्यत होगई। जव महासतीजी महाराज विहार करने लगीतो वहांके श्रावक शाहजी इन्द्रसेन सोरानाने विनती की, कि हमारे देशमे यह रीति है, कि जिसका दीक्षा लेने का सङ्कल्प हो वह किसी दूसरे नगरमे नहीं जाता अपने नगरमें ही दीक्षा दी जाती है इसलिए आप इसी नगरमे इस वाई को दीक्षा देकर फिर विहार करे तव उस वाई की दीक्षा सं० १९५५ वि० चैत्र वदी ८ को उसी नगरमें हुई। दीक्षाके पश्चात् आप विहार करके

पाली नगरमें पधारीं और वहांके श्रावकों की विनती पर सं० १९५६ का चतुर्मासा उसी नगरमें स्वीकार करके रियासत जोधपुरमें पधारीं। वहां के श्रावकों ने आपके पधारनेकी खुशीपर एकसौ बकरा कसाईयों से छुड़वा कर पिञ्जरापोल आदि स्थानोंमें उनकी रक्षा के निमित्त भेजदिया और धर्मका बहुत प्रचार हुआ।

सं० १९५६ वि० का चातुर्मास्य पालीनगरमें

आपका चतुर्मासा सं० १९५६ वि० का पालीनगर रियासत जोधपुरमें हुआ और आपके पधारने पर वहां भी लगभग एक सौ बकरे कसाईयोंसे छुड़ाए गए, वहां पशुओंकी रक्षा अच्छी रीतिसे होती रहतीहै और व्याख्यानमें लगभग दस बारह सौ स्त्री व पुरुष एकत्र होते थे और व्याख्यान सुनकर भवजीवोंके हृदय हर्षसे प्रफुल्लित होतेथे जैसे घटाके बरसनेसे भूमि अंकुरोंको प्रकट करतीहै वैसे ही आपकी ज्ञानरूपी वर्षासे भवजीवों की हृदयरूप भूमि पर नाना प्रकार के धर्म अंकुर प्रकट होतेथे अर्थात् धर्म उपदेशसे ज्ञान, ज्ञान से वैराग्य, वैराग्य से त्याग, त्याग से सन्तोष, सन्तोषसे मन वचन और काया तीनोंका वशमें होना और इनके वशमें होनेसे मुक्ति अर्थात् जन्म मरणसे रहित होतेहैं। इस साधना विधिको सुनकर श्रोताओं

को वड़ा ही आनन्द हुआ और यथाशक्ति नियम पचक्खान किये अर्थात् कई श्रावक व श्राविकाओं ने आयु भरके लिये ब्रह्मचर्य्य धारण किया और कई मनुष्योंने झूठी साक्षी देनेका, कम तोलने का,कम मापनेका और शुद्ध वस्तुमें मिलावट डालकर(सरवरी में निरवरी वस्तु मिलाकर) वेचनेका त्याग करदिया इत्यादि। और इकतीस दिन तकके व्रतकी तपस्या भी हुई। और वहां एक दिन तेरहां पंथके मतकी साध्वियोंसे महासती प्रवर्तिनी पार्वतीजी महाराजने प्रश्न पूछा कि तुम्हारे मतमें तर्स व स्थावर जीव की हिंसाके दण्डमें कुछ भेद है किम्वा नहीं तो वे प्रश्न के अर्थको ही न समझ सकीं तो फिर उनसे उत्तर की क्या आसाथी अस्तु चतुर्मासा समाप्त होने के पश्चात् आपने वहांसे विहार कियातो आपके साथमे भक्ति वाले पुरुप व स्त्रियां इतनी साथ थीं कि उरले पासे के लोकोंको परले पासेके लोक पहचान पड़ने मुश्कल थे अधिक क्या लिखूं आप गांओं २ में धर्मोपकार करती हुई नवांशहरमें पधारीं वहां उदयपुरके तीस चालीस श्रावक आ उपस्थित हुए और प्रार्थना की कि महाराज! आपने स्थान स्थान विचरकर अनेक भव्य जीवोंको तारा है अब हमारे नगरमें भी पधारने

की कृपाकरें जिससे हमारा जन्मभी आपके हितोपदेशसे सफल हो तब उनकी अतिशय विनती पर आपको उदयपुर पधारना ही पड़ा ।

(मूर्त्ति पूजकों की ईर्षा का चित्र)

उदयपुरके श्रावक भाईयोंने बड़े उत्साहसे आपकी अभ्यर्थनाकी और आपके पधारनेके हर्षमें आपके आगमन की सूचना देने वाले, स्तुति करने वाले, और उपासरामें प्रलेहना करने वाले, अर्थात् मकान की रक्षा(हिफाजत)करने वाले सेवकोंको पारितोषिक (इनाम) दिया गया। आपके व्याख्यानमें बड़ी रौनक होती थी कई राजदरबारी ऐहलकार भी आते थे और धर्मोपदेशसे दया, क्षमा, सत्, सन्तोष, त्याग, वैराग्य, आदिकका लाभ उठातेथे। और कईप्रकारके मतभेदादि विषयपर चर्चा भी करते थे और सन्तोष जनक उत्तर पाकर आपकी प्रशंसा करतेथे । जब आपकी प्रशंसा प्रत्येक मनुष्यके मुखसे होने लगी तोपुजेरे भाईयोंने ईर्षानलके कारण तप्तभावमें आकर एक नोटिस उस मकानके दरवाजे पर लगा दिया जिसमें श्रीमहासतीजी महाराज विराजमान थीं ।

नोटिस ।

"आर्य्या पार्वतीजी उदयपुरमें मूर्तिखण्डन चर्चा

के लिये आई हैं, मूर्ति खण्डन का वखेड़ा उठा रखा है, इस वखेड़े को मिटाना चाहिये क्योंकि जितने साधु मुखपत्ती वाले मूर्ति के अपूजक हैं उन सबमें यह बढ़िया हैं और सब इनसे नीचे हैं और यह बारह पंथी मूर्तिपूजा को नहीं मानते। अब सभा कराकर मूर्तिपूजाके खण्डन मण्डनका निर्णय होना चाहिये"

पाठक! देखिये पुजेरे भाईओं के द्वेष का प्रमाण कि हठात् वखेड़े छेड़ते तो आप हैं और नाम औरों का लेते हैं परन्तु धर्म की सदा ही जय है। इसका उत्तर इस प्रकार दिया गया।

नोटिस का उत्तर।

पहिले तो तुम्हारा नोटिस झूठा है क्योंकि हमने कौनसा नोटिस तुमको दिया था कि आर्य्या जी सती पार्वतीजी उदयपुरमें मूर्तिखण्डन चर्चा के लिये आईहै और मूर्ति खण्डनका वखेड़ा उठा रक्खा है क्योंकि तुम लिखते हो कि इस वखेड़को मिटाना चाहिये, सो वखेड़ा तो तुमने नोटिस देकर स्वयं उठाया है और बारह पंथी कौन होते हैं इधरतो तेरह पंथी और बाइस टोले वाले साधु श्रावक लोग लाखोंकी संख्यामें जड़ मूर्तिके न पूजने वाले हैं और मूर्ति खण्डन मण्डनका वखेड़ा तो सैकड़ों वर्षोंसे चला

आताहै तबसे प्रेम विजय और उसके सेवकोंने नोटिस देकर मूर्ति मण्डन मत सब जैनियोंका क्यों न किया दूसरे यह है कि आर्य्या जी तो धर्मचर्चा करनेमें बहुत प्रसन्न हैं परन्तु तुम अपने नोटिसमें लिखते हो कि यह सबसे बढ़िया हैं तो फिर जो तुम्हारे सम्प्रदाय में सबसे बढ़िया हैं उनसे चर्चा करानी उचित प्रतीत होती है परन्तु हम लोगों का विचार इस प्रकारकी चर्चा करानेका नहीं है क्योंकि तुम्हारे लिखने और कहनेके अनुसार हम तुममें बहुत बखेड़ा होता देख पड़ता है क्योंकि यह एक धार्मिक विषय है और सती जी महाराजको यहांका जलवायु अनुकूल नहीं है इस कारण कई दिनसे विहार करनेका संकल्प है परन्तु प्रेम बिजयजी का उपासक मूर्ति पूजक दोलजी के प्रश्नका उत्तर देनेके लिये और हमारी विनतीसे चौदस तक ठहरी हैं और अब माघ वदी द्वितीया व तृतीया को विहार करनेका विचार प्रतीत होता है यदि तुम्हारे प्रेम बिजयजी को अथवा उनके सेवकोंको चर्चा की उत्कण्ठा है तो तुम इन बातोंका उत्तर दो, कि कौन सभा करवाता है ? सभापति कौन होगा ? और जय पराजय पर झूठको छोड़ देना और सत्यको ग्रहण करना ऐसी प्रतिज्ञाहो, और

जोज्ञानचर्चा(शास्त्रअर्थके)अतिरिक्तअनुचित भाषण बोलेउसपर मानहानिकादावा और उसपरअभियोग होजावेतो उसका मुचलका और सारे खर्च का उत्तर दायित्व(जुम्मावारी)कौन लेगा?उसका नाम लिखो।

यह विज्ञापन उनके मन्दिरके दरवाज़ेपर लगाया गया।जब यह नोटिस पुजेरोंको मिला तो बड़े बड़े पुरुष तो चुप हो रहे एक साधारणसे मनुष्यने उसका उत्तर लिखदिया किमैं सभा कराताहूं,ऐसे अप्रतिष्ठित मनुष्य पर किसको भरोसा था क्योंकि इस मनुष्यने ऐसे ऐसे अनुचित शब्द उत्तरमें लिखे कि जिनसे यह स्पष्ट प्रकट होता था कि, झगड़के अतिरिक्त और इनका कुछ प्रयोजन नहीं है इस लिये श्रावकों ने चर्चा करानी स्वीकार न की और आप दया धर्मका झण्डा ऊंचा करती हुई अनेक प्राणियों को सत्य मार्ग दर्शाती हुई विहार करके भिलाड़े पधारीं। भिलाड़े में रतलामके श्रावक सेठ अमरचन्दजी पीतलीया निज पत्नी सहित और साठ सत्तर श्रावक श्राविका विनती के लिये उपस्थित हुए परन्तु आपको जल वायु अनुकूल न होने के और कुछ दुर्भिक्षके कारण मार्ग मे संयमवृत्ति मे कठनाई पड़ती थी इस लिये रतलाम न पधारसकीं।

शाहपुरमें आर्य्य समाजसे प्रश्नोत्तर।

भिलोड़ से विहार करके शाहपुर पधारीं चार पांच दिन वहां ठहरीं। दस पंद्रह सौ ओसवाल राजपूत ब्राह्मण वैष्णव आर्य्य समाजी आदिक आपके व्याख्यानमें उपस्थित होतेथे एक दिन एक आर्य्यसमाजी ने खड़े होकर कुछ बोलनेकी आज्ञा मांगी श्रीमहासतीजी महाराजने एक घण्टा तक सभामें बैठना और स्वीकार किया तब उस ने खड़े होकर लेक्चर दिया जिसमें यह कहा कि श्रीमतीजी ने जो दया सत्यादि का उत्तम उपदेश दिया है उसमें हमको कुछ भी शंका नहीं है परन्तु इनके रत्नसार नाम ग्रन्थमें लिखा है कि, जैन मतके अतिरिक्त और मत वालोंसे अप्रिया चरण करना चाहिये जहां तक बन पड़े उनको नीचा दिखलाना चाहिये भला देखो इनकी यह कैसी दया है। इसको सुन कर कई भाई बड़बड़ाने लगे, तब सतीजीने कहाकि, इसको अपने मनमानी कहने से न रोकें। जब वह मनुष्य लैक्चर देचुकातो स्वयं महासतीजी महाराजने कथन किया "हे भाई! हमारे प्रामाणिक शास्त्रोंमें ऐसा कथन कहीं भी नहीं है और जो तुमने ग्रन्थ का प्रमाण दिया है उस ग्रन्थ को हम प्रामाणिक नहीं मानते हैं, परन्तु

तुम्हारे दयानन्द कृत सत्यार्थ प्रकाश सं० १९५४ में मुद्रित उसके ६३० पृष्ट पर ऐसा लिखाहै, कि और धर्मी अर्थात् वेदादिमतसे बाहर चाहे कैसा भी गुणी क्यों न हो उसका भी नाश अवनती और अप्रिया-चरण सदा ही किया करें। अब तुम ही देखलो कि यह दयानन्दजी की दया कैसी हुई। पाठक ! श्री महासतीजी महाराजके शब्दों का कुछ उत्तर न पाकर भी वह आर्य्य समाजी चुपरहनेमें अपनी हार समझ कर बोलनेसे न रुका और बोला अजी हमारे दयानंद जी के सत्यार्थ प्रकाशमे बारहवें समुल्लासके ४६७ पृष्ट पर प्रथम ही ऐसा लिखा है कि देखो जैनियों का वीतराग भाषित दया धर्म दूसरे मत वालों का जीवनभी नहीं चाहते हैं,इसपर श्रीमहासतीजी महा-राजने कहा कि हे भाई ! जैनियों की दया तो प्रसिद्ध है देखो इम्पीरियल गैज़िटीयर हिन्द जिल्द ६ दफा २ सन् १८८६ ई० पृष्ट १५९ में ऐसा लिखा है कि जैनी लोग एक धनवान् सम्प्रदाय है प्रायः थोक बेचने वाले और हुंडी पत्री का व्यवहार करते हैं, यह लोग बड़े दानी हैं बहुधा यह लोक जन्तुओं के पालन पोषण के लिये हसपताल बनवाते हैं। पाठक ! और देखिये मैंने बुद्ध देव का जीवन चरित्र उर्दू अक्षरों

में ब्रह्म संमत् ७४ में लाहौर स्टीम प्रेस का छपा हुआ देखा जिसके चौथे भागमें २०९ पृष्ट पर ऐसा लिखा है कि जैनियों की ओर से कलकत्ते के पास सिद्धपुर में जन्तुओं के लिये हस्तपताल पिञ्जरापोल बना हुआ है जो (अहिंसा परमोधर्म) का एक अनुपम उदाहरण है जैन "अहिंसा परमधर्म" पर चलते हैं, मांस नहीं खाते, जल भी छान कर पीते हैं मुख पर पट्टी बांधते हैं कि कोई जीव न मरे रात्रि को इसी कारण खाते भी नहीं इत्यादि। अब देखिये सरकारी पुस्तकोंमें तो जैनियों की इतनी दया लिखी है परन्तु तुम्हारे जैसे भोले लोग औरों के तो अनहुए दोष देखते हैं और अपने होते हुए दोष भी नहीं देखते। यथा श्लोक राजनीतौ—खलःशर्षप मात्राणि, परछिद्राणि पश्यति॥ आत्मनो विल्वमात्राणि, पश्यन्नपि नपश्यति

अर्थ—दुष्ट लोग दूसरोंका सर्सों जितना छिद्र भी देख लेते हैं और अपना बिल जितना छिद्र भी नहीं देखते चाहे वह दीखता भी हो। तनक देखिये दयानन्दजी इस सत्यार्थ प्रकाशके ग्यारहवें समुल्लास पृष्ट ३५५ की पांचवीं छठी पंक्तिमें क्या लिखते हैं कि इन भागवत आदि के बनाने वाले क्यों नहीं गर्भमें नष्ट होगए जन्मते ही समय क्यों न मरगए

और इसी के पृष्ट ४३२ के नीचे लिखा है जो वेदों के विरुद्ध करते हैं उनको जितना दुःख हो थोड़ा है अब देखो तुम्हारे दयानन्दजी ने उन पर कैसी दया की है हा शोक ? अपनी चारपाई तले सोटा नहीं फेरा जाता। जब आपने इनके ग्रन्थों के ऐसे लेख लिखे दिखलाए तो वह निरुत्तर होगया परन्तु चुप रहना पराजयके बराबर था। वह फिर बोला, अजी यह क्या बात है हमारे सत्यार्थ प्रकाशमें ४६२ पृष्ट पर दयानन्दजी लिखते हैं कि जैनी लोग अपने मुख से अपनी बड़ाई करते हैं और अपने ही धर्म को बड़ा कहतेहैं यह बड़ी मूर्खता की बातहै। पाठक! देखिये जब कुछ उत्तर न बन पड़ा तो दयानन्दजी का एक और लेख सुनादिया ताकि सिलसिला बन्द न हो, और शास्त्रार्थ का कुछ परिणाम न निकले लोग सन्देहमेंही पड़े रहें। और वह दूसरोंको मूर्ख कह रहा था परन्तु वास्तव में अपनी मूर्खता प्रकट कर रहा था। इस पर महासतीजी को ज़रा हंसी आई और कहा कि यहतो बतलाओ कि तुम्हारे दयानन्द जी तो अपने माने हुए धर्म को छोटा कहते होंगे और औरों के धर्म को बड़ा।

ईश्वरकेनिराकारऔरसर्वव्यापकहोनेपर प्रश्न

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने पूछा भला यह तो बतलाओ कि तुम्हारे दयानन्दजीका माना हुआ ईश्वर साकार है व निराकार ? और सर्वव्यापक है व देशव्यापक ?

आर्य्यसमाजी—निराकार और सर्वव्यापक।

श्रीमहासतीजी—तुम्हारा ईश्वर बात करता है व नहीं ?

आर्य्यसमाजी—कभी निराकार भी बोल सकता है।

श्रीमहासतीजी—बस तुम्हारा इन दोनों बातों का अब मैं खण्डन करती हूं। देखो सं० १९५४ का छपा सत्यार्थप्रकाशका सातवां समुल्लास १८८ पृष्ठके नीचे छठी पंक्तिसे लिखा है कि ईश्वर सबको उपदेश करता है कि हे मनुष्यों ! मैं सबका पति हूं मैं ही सबको धन देता हूं और भोजन देकर पालन पोषण करता हूं और मैं सूर्य्यवत् सम्पूर्ण जगतका प्रकाशक हूं तुम लोग मुझे छोड़कर किसी दूसरेको मत पूजो मत मानो। अब विचारो कि जैनी तो मनुष्यमात्र हैं अपनी बड़ाई करते होंगे व न करते होंगे परन्तु तुम्हारा तो ईश्वर भी अपनी

बड़ाई करता है और कहता है कि मुझे मानो और सबका त्याग करो, और देखो बड़े आश्चर्य का विषय है कि ईश्वर कहता है कि मैं धन देता हूं और भोजन आदि देकर सबका पालन करता हूं परन्तु लाखों करोड़ो मनुष्य निर्धन पड़े रोते हैं क्या इनको देनेकेलिये ईश्वरके कोषमें रुपया नहीं रहा और दुर्भिक्ष अर्थात् अकाल पड़नेपर लाखों मनुष्य और पशु भूखसे पीडित होते हुए तड़प तड़प-कर मर जाते हैं तो ईश्वरके पास इन दुःखी प्राणियोंके देनेको अन्न नहीं रहता होगा अथवा दयानन्दजी को तुम्हारी तरह ज्ञान न था कि निराकार और सर्वव्यापी किससे और कहांसे और किस प्रकार बात कर सकता है, लिखते तो इस प्रकारसे हैं कि मानो दयानन्दजीके कानोंमें ही ईश्वरने ओछे मनुष्यकी न्याईं उपरोक्त बातें कहीं हों परन्तु तुम्हारे दयानन्दजीने यह विचार न किया कि क्या सभी मेरे ऐसे कथनपर हांमें हां मिला देंगे और यह भी न सोचा कि क्या विद्वान् पुरुष इतना भी विचार न करेंगे कि बात करना एक कर्म इन्द्रियका काम होता है और ईश्वर तो निष्कर्म और निराकार अर्थात् अशरीरी है जब

ईश्वरके शरीर ही नहींहै तो कर्मइन्द्रिय जो शरीर से सम्बन्ध रखते हैं कैसे होसकते हैं। इनारां आप की यह बात सुनकर वह तो निरुत्तर होकर चुप होगया परन्तु जो आर्य्यसमाजी उसके साथ थे उन्होंने उसका चुप रहना अपमानका कारण समझा और अपने स्वभावके अनुसार एकने और ही मनघटित प्रश्नका आडम्बर रचा।

आर्य्यसमाजीका प्रश्न मुक्तिके विषयपर।

अजी इनका और ज्ञान तो ठीक है परन्तु जो सर्व धर्मोंका सार मुक्ति है वह इनके हां ठीक नहीं है क्योंकि यह मोक्षरूप चेतनको एक शिला के ऊपर अर्थात् एक मर्य्यादित स्थानपर सर्वदा रहना मानते हैं, कहोजी वह मुक्ति हुई वा आजन्म का बन्धन (उमर कैद हुई)। पाठक ! देखिये आर्य्यसमाजियोंकी रीति जब एक निरुत्तर होचुका तो दूसरेने एक ऐसा प्रश्न कर दिया जिसका विषय इतना महान् था कि जिसका सिद्ध होनाइतनेथोड़े समयमें अत्यन्त कठिन था, इससे इसका अर्थ यह होगा कि इस चर्चाका परिणाम कुछ न निकल सके परन्तुश्रीमहासतीपार्वतीजीमहाराजभीतो अवसरको भली भान्ति जानने वाली थीं, उन्होंने समझ लिया

कि यह प्रत्येक मतके अवगुणों की ओर ही दृष्टी रखते हैं, और यह सूत्रार्थको भी प्रमाण नहीं करते हैं तो यहां युक्तिसे ही समझाना चाहिये। अस्तु इस सभामें एक वृद्ध राजपूत बैठा हुआ था, आपने उसे कहा कि हे भाई! तुम्हारी आयु कितने वर्षकी है?

राजपूत—अस्सी वर्षकी।

श्रीमतीजी—तुम्हारा जन्म कहां हुआ?

राजपूत—शाहपुरमें।

श्रीमतीजी—तबसे आप कहां कहां फिरते रहेहो?

राजपूत—शाहपुरमें ही रहाहूं।

श्रीमतीजी—ओहो क्या अस्सी वर्षसे इसी बन्धन (क़ैद) में हो अर्थात् इस एक मीलके अनुमान की मर्यादावाले छोटेसे गाओमे ही क़ैदी हो और अब भी जब तक जीवित रहोगे इसी गाओंमें रहोगे वा कहीं लाहौर कलकत्ता जयपुर आदि नगरों में जाकर रहोगे अथवा कहीं २ घूमते फिरोगे?

राजपूत—यहां ही रहूंगा मुझे क्या आवश्यकता पड़ी है जो ठौर ठौर भटकता रहूं अथवा घूमता फिरूं।

श्रीमतीजी—तो क्या तुम उमर क़ैदी हो?

राजपूत—कैदी किसका हूं मैं तो यहीं का निवासी हूं मेरा कोई कार्य्य रुके तो परदेश जाऊं अन्यथा क्यों जाऊं।

श्रीमहासतीजी—भलायदि तुम्हें महाराज साहब आज्ञा देदें कि एक मास तक शाहपुर से बाहर कहीं नहीं जाने पाओगे, तब तुम क्या करो?

राजपूत—तो हम महाराजसे प्रार्थना करें कि हमसे क्या अपराध हुआ है जो आप हमको गाओं से बाहर नहीं जाने देते और वकील भी करें।

श्रीमतीजी—भलाजी तुम अस्सी वर्ष से यहां रहते हो तब से तो आतुर नहीं हुए जो एक मास की रुकावट हो गई तो क्या हुआ जो इतने व्याकुल होएं और प्रार्थना करनी पड़े।

राजपूत—अजी महाराज महात्माजी वह तो अपनी इच्छासे रहना है और यह परवश का रहना है सो बन्धन (कैद) है।

श्रीमतीजी—बस यही कहाना था कि जो पराधीन अर्थात् बलवान की रुकावट से एक स्थान में रहे वह कैद होती है परन्तु अपनी इच्छासे रहना कैद नहीं होती इसी प्रकार सच्चिदानन्द मोक्ष स्वरूप आत्मा स्वाधीनसदा आनन्दरूपहै इसको कैद कहना

अज्ञानियों का काम है। इस उत्तरसे वे आर्य्यसमाजी निरुत्तर होकर चले गए और सभा श्रीमती पार्वती जी महाराज की अत्यन्त प्रशंसा करती हुई विसर्जित हुई और परिणाम यह हुआ कि वहुत लोगों को जैनके नियमों पर निश्चय होगया। आप शाहपुरसे विहार करके विचरती हुई जयपुर नगरमें पधारी और सं० १९५७ का चतुर्मासा इसी नगरमें स्वीकार हुआ।

सं० १९५७वि० का चातुर्मास्य जयपुरमें।

आपका चतुर्मासा सं० १९५७ का जयपुरमें हुआ इस स्थान पर धर्म ध्यान का उद्यम अच्छा होता रहा चतुर्मासेके पश्चात् आप अलवर देहली रोहतक होकर हंसी नगरमे पधारी वहां धर्म ध्यान का उद्यम अच्छा हुआ। एक दिन हिसार वाले कई दिगम्बर आमनाके श्रावक श्रीमती पार्वतीजी महाराज के व्याख्यान सुननेके लिये हंसीमे आए। व्याख्यान सुननेके पश्चात् उनमेसे एक जो वड़ा योग्य विद्वान् संस्कृत अंग्रेज़ी फ़ारसी पढ़ा हुआ और अपने मत का भी अच्छा ज्ञान रखताथा और सरकारी कर्मचारी भी था परन्तु उसका नाम व पदवी मुझे स्मरण नहीं रही उसने सभामे कहा कि आपका

व्याख्यान सुन कर चित्त अतीव प्रसन्न हुआ जैसी आपकी कीर्ति सुनी थी उससे भी अधिक रचना देखी, पुरुष जाति में ऐसा निर्भय सरस और सरल भाषामें सविस्तर शास्त्र प्रमाण और युक्ति युक्त वक्ता मिलना दुर्लभ है और स्त्री जातिमें मिलना तो अत्यन्त ही कठिन है, कृतार्थ है आपका जन्म और आपकी सेवामें प्रार्थना की, कि आप साधुके पंच महाव्रतों का नाम और अर्थ कृपा करें।

स्वेताम्बरदिगम्बरविषयमेंप्रश्नोत्तर ।

श्रीपार्वतीजी महाराज—(१) दया (२) सत्य (३) अचौर्य (४) ब्रह्मचर्य्य (५) निर्ममत्व ।

अर्थ—(१) दयाव्रतमें हिंसाका त्याग (२) सत्य व्रतमें झूठका त्याग (३) अचौर्य व्रतमें चोरीका त्याग (४) ब्रह्मचर्य्य व्रतमें मैथुन का त्याग (५) निर्ममत्व व्रतमें प्रग्रह का त्याग ।

सरावगी—-प्रग्रह कितने प्रकार का होता है।

श्रीपार्वतीजी महाराज—प्रग्रह २४ प्रकारका होता है चौदह प्रकार का आभ्यन्तर और दस प्रकार का बाह्य ।

आभ्यन्तर के नाम (१) मिथ्यात्व (२) स्त्री वेद (३) पुरुष वेद (४) नपुंसक वेद (५) हास्य (६) रति

(७) अरति (८) भय (९) शोक (१०) दुर्गंछा (घृणा) (११) क्रोध (१२) मान (१३) माया (१४) लोभ।

वाह्यके नाम—(१) खेत (२) वस्ती (३) सोना (४) चांदी (५) धन (६) धान्य (७) दोपद (८) चौपद (९) धातुके वर्तन आदि (१०) अपनी देह।

सरावगी—अभ्यन्तर प्रग्रहका त्याग तो कर्मो की प्रकृतिओंके क्षयोपसम होने पर निर्भरहै परन्तु वाह्यप्रग्रहकोसर्वथात्यागे विना साधु नहीं हो सकता सोआपकेमतमें सर्व प्रग्रहका त्याग नहीं है ?

श्रीपार्वतीजी महाराज—सर्व ही का त्याग है नहीं कौनसी का ?

सरावगी—वस्त्र पात्र आदिक का।

श्रीपार्वतीजी महाराज—इस पांचवें महाव्रत का नाम निर्ममत्व है जो वस्त्र पात्र संयम के निर्वाह के लिये मर्य्यादा वर्ती रखे जाते हैं उनमें ममता करने का त्याग लिखाहै यथा सूत्र "मुच्छा परिगाहो वुत्तो"।

अर्थात्—भगवत् ने मूर्छा को प्रग्रह कहा है।

सरावगी—वस्त्र पात्र के रखते हुए ममता कैसे न हो ?

श्रीपार्वतीजी महाराज—तव तो साधु कोई भी नहींहोसकता क्योंकि देहभीतोप्रग्रह में है फिर

इस देह के होते हुए साधु कैसे होसकता है परन्तु देह के निमित्त विना संयम का पालन नहीं होसकता जैसे देह के निर्वाह के लिये साधु मर्य्यादा वर्ती भोजन करते हैं ऐसेही लज्जा, दया, संयम, ब्रह्मचर्य्यके पालने को साधु मर्य्यादा वर्ती वस्त्र पात्र रखते हैं ।

सरावगी—हमारे क्रिया कोषादि ग्रन्थोंमें तो ऐसा लिखा है कि साधु वह होताहै जो तिल तुपमात्र प्रग्रह न रक्खे ।

महासतीजी—ऐसा साधु कौन है ?

सरावगी—दिगम्बरी साधु अर्थात् नग्न मुनि ।

महासतीजी—आपके शास्त्रोंमें श्रीसंघ कितने प्रकार का माना है ?

सरावगी—चार प्रकार का अर्थात् चतुर्विध संघ तीर्थ(१)साधु (२)साध्वी(३)श्रावक(४)श्राविका ।

महासतीजी—साधुके कितने महाव्रत और साध्वी के कितने ?

सरावगी—जैसे साधुके पांच महाव्रत हैं वैसे ही साध्वी के ।

महासतीजी—क्या साध्वी भी दिगम्बर अर्थात् नग्न होकर विचरे व वस्त्र धार कर ?

सरावगी—(सोच सोच कर) वस्त्र धारिका (श्राविका) होकर विचरे ।

महासतीजी—तो फिर तीर्थङ्कर भगवानने तो चार तीर्थ कहे हैं और आपने भी अभी ऊपर शास्त्रानुसार चार ही तीर्थ कहे हैं तो अब आपने अपने पक्षके सिद्ध करनेके लिये तीन तीर्थ कह दियेकि वस्त्र धारिका श्राविका होके विचरे, साध्वी का चौथा तीर्थ ही उड़ा दिया यह काम विद्वत्ता का नहीं, और जो आपने यह कहा है कि हमारे क्रिया कोष ग्रन्थ मे यह लिखा है कि साधु वही हो सकता है जो तिल तुष मात्र प्रग्रह न रखे परन्तु आप का यह लेख भी सत्य नहीं हो सकता, आप बतलाईये कि आप के साधु नग्न मुनि कमण्डलु और मयूर पीच्छी रखते हैं किम्वा नहीं ?

सरावगी—हां रखते हैं।

महासतीजी—तो क्या कमण्डलु और मयूर पीच्छी तिल तुष मात्र से भी न्यून हैं ?

सरावगी—बस दृष्टि नीची कर ली क्योंकि लिखे पढ़े मनुष्य थे समझ गए कि सतीजी के उत्तर युक्ति युक्त हैं परन्तु पक्ष का ढङ्ग कुछ निराला ही होता है, अस्तु वे प्रणाम करके चले गए। आप वहां से विहार करके रोहतक पधारीं और चतुर्मासा वहीं का स्वीकार हुआ।

सं० १९५८ का चातुर्मास्य रोहतक में ।

आपका सं०१९५८वि०काचातुर्मासा रोहतक नगरमें हुआ । यहां पर एक बाई पन्नादेवी को दीक्षादी और इस स्थान पर पंजावके अतिरिक्त मेवाड़ मारवाड़ (उदयपुर, जोधपुर, पाली, रतलाम) अजमेर, जयपुर आदि नगरों के बहुत से श्रावक श्राविका आपके दर्शनार्थ उपस्थित हुए, और बड़े भाव से विनती की, कि महाराजजी ? हमारे वड़े पुण्य योगसे आप का मारवाड़में पधारना हुआथा परन्तु आप बहुत शीघ्र पंजाब की ओर चली आईं अस्तु फिर भी कृपा कर के कभी दर्शन देना आपने कहा भाई जो फरसना। रोहतक में आप के उपदेश से धर्म ध्यान का बड़ा उद्यम हुआ और चतुर्मासा समाप्त होने पर आप जींद नगूरा कैथल समाना में धर्मोपदेश करती हुई पटियाला पधारीं यहां पर श्रीमतीसती द्रौपदीजी महाराजने दो सूत्र एक ग्रन्थ दस थोकड़े (प्रकरण) आदि आपसे पढ़े । यहां कई मत मतान्तर वालों से भिन्न भिन्न विषयों पर चर्चा भी होती रही वहां से विहार करके आप अम्बाला थनेसर करनाल हो कर मियां दुआबमें विचर कर सं०१९५९का चतुर्मासा कांधला नगर में स्वीकार किया।

सं०१९५९वि०का चातुर्मास्य कांधलामें।

आप का चतुर्मासा सं० १९५९ का कांधला जिला मुज़फ़र नगर में हुआ। इस चतुर्मासा में और कुछ समय प्रथम से श्रीसती द्रौपदीजी को आप ने निम्न लिखित सूत्र पढ़ाये सुयगडाङ्ग सूत्र, समवायाङ्ग सूत्र, जम्बुद्वीपपनन्ती सूत्र, अनुयोगद्वार सूत्र, व्यवहार सूत्र। यहां पर आर्य्य समाजी व वेदान्तियोके साथ ईश्वर कर्ता अकर्ताके विषय पर और नास्तिक आस्तिक के विषय पर कुछ चर्चा भी होती रही जिसमें आपने कर्ता अकर्ता व नास्तिक और आस्तिक का, स्वरूप दिखला कर सत्य धर्म का प्रकाश किया। इस चर्चासे आपका यह विचार हुआ कि यह लोग कर्ताऽकर्ता व नास्तिक आस्तिक के वास्तविक स्वरूप को न जानते हुए सचाई से वञ्चित रहते हैं केवल इतना ही नहीं वरं आपसमें वाद विवाद करते हुए भी तत्व तक नहीं पहुंच सकते। इसलिये इस विषय पर कोई पुस्तक लिखनी चाहिये। अस्तु इसविषयपरआपने पुस्तक कालिखना आरम्भ करदियाचतुर्मासे केपश्चात् आप देहली होकर आगरा में पधारीं वहां आर्य्या चन्दांजी व उसकी शिष्या श्रीयाजी व श्रावकों की प्रार्थना कोस्वीकार करके

श्रीसती राजीमतीजी के नाम की दीक्षा का पाठ पढ़ा कर अपने सम्प्रदायमें सम्मिलित किया। फिर वहां से यमुना पार विचरती हुई अम्बाला नगरमें पधारीं और वहां के भाई बाईयों की विनती पर सं०१९६०वि०का चतुर्मासा वहांकाही स्वीकार किया।

सं० १९६०वि०का चातुर्मास्य अम्बालामें तीसरी बार।

इस स्थान पर वल्लभ विजयजी सम्वेगीका भी चतुर्मासा था, परन्तु किसी पक्ष की ओर से कोई आक्षेप न हुआ। एक दिन कार्तिक मास में हीरा लाल भावड़ा पुजेरा लाहौर निवासीजो वल्लभ विजय जी पीताम्बरीके दर्शन को आया था, श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज केदर्शन को भी आया और एक पुस्तक आप की सेवामें रखकर बोला कि आप इस पुस्तक को देखिये। तब आप ने उस पुस्तक को लेकर पूछा कि यह कौनसी पुस्तक है हीरा लालजी ने कहा कि श्रीमद् आत्मा राम आनन्द विजय सूरी कृत "सम्यक्तशल्यो धार" गुजराती भाषा का था जिसको पञ्जाबी भली भान्ति समझ न सकते थे इस लिये वल्लभ विजयजी के उपकार से सरल भाषामें होकर लाहौर में छपा है।

श्रीसतीजी महाराजने कहा कि इस पुस्तक में ज्ञान वैराग्य का तो विचार नहीं है, और ना ही देखने वालों को कुछ धर्म का लाभ होता है, क्योंकि इसमें तो निन्दा वा गालियां आदि झगड़े भरे पड़े हैं, प्रत्युत पढ़ने वालों को कर्म बन्धन का कारण है, हां कदाचित् अब कुछ सुधार दिया हो तो बात पृथक् है। हीरालाल बोला कि अब तो ठीक होगया है। श्रीसतीजी महाराजने हीरालाल के इस वचन पर विश्वास करके कहा कि अच्छा रहने दो देख लेंगे। जब आपने पुस्तक को पढ़ा तो प्रतीत हुआ कि हीरालालजी ने सत्य नहीं कहा था किन्तु पहले से भी अधिक अन हुई नई नई निन्दा के नोट देरक्खे हैं। तब श्रीमहासतीजीने विचार किया कि काल के प्रभाव से सनातन जैन धर्म मे से अनेक शाखाएं निकल गई हैं, जिससे कई बातो में भेद पड़ गया है परन्तु वर्तमान मे प्रधान भेद मूर्ति पूजा का है और अधिकतर शास्त्रार्थ भी इसी विषय पर होते रहते हैं, अर्थात् कई कहते हैं कि मूर्ति पूजन जैन सूत्रोंमें नहीं है और कई कहते हैं कि है, इस विषय में भी एक विशेष पुस्तक लिखना चाहिये जिससे भव जीवों की शङ्का निवृत्त होसके। इसलिये जब कभी

जप तप संयम की क्रिया से अवकाश मिलता तो जो प्रथम ५९ के चौमासा में कर्त्ता अकर्त्ता के विषय में पुस्तक आरम्भ किया था वह और दूसरा इस विषय में भी कुछ लिख लिया करती थीं, और सती चंदाजी को सूत्र दशवैकालिक और उत्तराध्ययन के शब्दार्थ पढ़ाये और पश्चात् में देशकाल के मिलनेपर सूत्र नंदी, अनुयोग द्वार, ठाणाङ्ग, पन्नवणा और कई उद्देशक भगवती के पढ़ाये और जो लोग आपके दर्शनों को आते थे उनका वहां के भाईयोंने तन, मन, धन से सत्कार किया और बड़े उत्साह से चतुर्मासा समाप्त हुआ। आप वहां से विहार कर के पटियाला व नाभा में धर्मोपदेश करती हुई मालेर कोटला पधारीं, वहां आपका उपदेश मांस के निषेध पर हुआ, कई मतों के लोगों ने त्याग भी किया। वहां से लुधियाना पधारीं, वहां जीव रक्षा, अर्थात् अहिंसा परमधर्म के विषय पर और मांस के निषेध पर व्याख्यान हुए जिनका प्रभाव यह हुआ कि अभय दानादि धर्म की सहायता के लिये किसी श्रावकने सौ रुपया किसीने साठ किसीने पचास किसीने इससे थोड़ा वार्षिक देना स्वीकार किया। वहां से फगवाड़ा बंगा होकर जेजों पधारीं, वहां

जैनी भाईयोंने आपके आगमन के हर्ष में यह प्रण कर लिया कि आपके व्याख्यान तक हम सब अपनी दुकानें न खोलेंगे,वहांपर हुश्यारपुरके वहुतसे श्रावक उपस्थित हुए और प्रार्थनाकी कि आपने १९४५ का चौमासा होश्यारपुर में किया था जव से अव तक दर्शन नहीं दिये १५ वर्ष होगए हैं, इसलिये आप अव के चतुर्मासा की कृपा हम पर करें । आप अनुलोम प्रकृति की धारिका हैं, इसलिये उनकी विनती को स्वीकार किया । इस पर हुश्यारपुर के भाई प्रसन्न होकर चले गए और आप जेजों से विहार करके पुनः वंगा फगवाड़ा होकर जालन्धर नगर में पधारीं और राय सेठ चांदमलजी आनरेरी मेजिस्ट्रेट रईस अजमेर व खज़ानची छावनी जालन्धर के मकान पर उतरीं। आपके व्याख्यानों की महिमा कुछ ही दिनों में फैल गई, तीन तीन चार चार सौ स्त्री व पुरुप प्रतिदिन व्याख्यानमें एकत्र होते थे और कई भ्रान्तिजनक विचार अन्य मत वालों के आप के उपदेश से दूर होगए और जैनधर्म के महत्व पर निश्चय लाने लगे। मांस भक्षण और मदपानादि व्यस्नों का वहुत लोगोंने त्याग कर दिया। छावनी के खज़ानची लाला मथुरादास ढोसर रिवाड़ी

निवासी ने अपने सारे कुटुम्ब को जैन धर्म की सरधानसे अलंकृत किया और उसकी एक बाल विधवा पुत्री ने जिसने पश्चात् संस्कृत की प्राज्ञ, विशारद परीक्षा भी पास की हैं, प्रतिदिन सामायिक सन्ध्या करने का नियम लिया और रातकों सर्वथा कोई पदार्थ न खाना न पीना ऐसा नियम किया और हरा शाक पात फल आदि खाने का भी त्याग कर दिया। और बाबू रूड़ामलजी ने जो इस समय सरकारी ख़ज़ाने के दफ़तर में क्लर्क हैं जैन धर्म के नियमोंको ग्रहण किया और दोनों सन्ध्या सामायिक करने लग गये इस प्रकार दया धर्म के पौदे जालन्धर में लगाकर आप होश्यार पुर पधारीं।

सं० १९६१ वि० का चातुर्मास्य होश्यारपुर में पांचवीं बार

पाठकवर्य्य! आपके ध्यान में आया होगा कि आप का एक एक पल हमारे लिये धर्म का संचय करता रहा है, देखिये! तप संयम के साधन, अपनी शिष्याओं को उपदेश, विद्यादान और ज्ञान का विचार इन कार्यों के करते हुए भी आप ने अपने सुख और विश्राम को छोड़ कर दोनों पुस्तकों को इस चातुर्मास्य में समाप्त कर

लिया। ("सत्यार्थचन्द्रोदयजैन" और "सम्यक्त सूर्य्योदयजैन अर्थात् मिथ्यात्वतिमिरनाशक")
"सत्यार्थचन्द्रोदयजैन" जिसमे यह प्रकट किया है कि, जैन शास्त्रों के अनुसार मूर्तिपूजन ज्ञान दर्शन चरित्र की विधि में नहीं है अर्थात् किसी प्रामाणिक जैन सूत्र के मूल में ऐसा नहीं लिखा है कि, कोई श्रावक इस कर्म से अर्थात् मन्दिर बनवाने मूर्ति पूजने अथवा तीर्थ यात्रा (पहाड़ों की यात्रा) करने से देवलोक व मुक्ति पागया हो इत्यादि। यह ग्रन्थ शास्त्रों और युक्तियो के प्रमाणसे ऐसा बनाया गयाहै कि जिसकी प्रशंसा बड़े २ पण्डितों ने की है और जिनके प्रशंसा पत्रों की अनुलिपि भी इसी पुस्तक में दी हुई हैं।

प्रसिद्ध और माननीय पण्डितोंकी सम्मतियें

संस्कृत से अनूदित—

"यदि पुरुप अपनी बुद्धि से नवीन ग्रंथ बनाए तो कोई आश्चर्य्य नहीं, क्योंकि वे जन्म से ही शास्त्र के पथ पर भ्रमण कर रहे हैं, आश्चर्य्य तो यह है कि स्त्री हो कर नये ग्रन्थ की रचना करे, क्योंकि स्त्रियोंको लोक निर्बोध समझते हैं। श्री पार्वतीजी का बनाया हुआ यह ग्रन्थ मेरी सम्मति

में अतीव प्रशंसनीय है जो कि मूर्तिपूजा करनी चाहिये व न करनी चाहिये इन दोनों मतों में से अपर मतको अर्थात् नहीं करनी चाहिये इस को भली भान्ति निर्णय करता है और वादी प्रतिवादियों के प्रश्नोत्तरों की रीति पूर्वक यह पुस्तक भी प्रश्नोत्तरों से विभूषितहै और युक्तियां और प्रतियुक्तियां भी इसमें बहुत अच्छी हैं और प्रत्येक स्थल में प्रत्येक विषय पर सूत्रों के प्रमाणभी इस में दिये गये हैं। और यह पार्वती देवी जी वह हैं जिन के मनको बालक अवस्थासे लेकर वृद्ध अवस्था तक सब किसी ने शान्त रसमें देखाहै और जिनके मुख से जैनमत के उपदेश के अतिरिक्त शिष्यों ने आज तक दूसरा शब्द नहीं सुना।

पण्डित दुर्गादत्त शास्त्री अध्यापक,
औरियैण्टल कालिज लाहौर। १

अंग्रेज़ी से अनूदित।

मैंने सत्यार्थचन्द्रोदय श्रीसती पार्वतीजी रचित पढ़ा। यह मूर्ति पूजाके विरुद्धहै और सती जी ने जैन सूत्रों के प्रमाणों से सिद्ध कर दिखलायाहै कि मूर्ति पूजा जैन सूत्रों से नहीं चली। इस पुस्तककी विधि बड़ी उत्तमहै और युक्तियां विधि पूर्वक दी हैं

जो प्रकट करती हैं कि, सती जी ने जैन सूत्रों के अनुसार इस विषय का न्याय किया है।

पण्डित तुलसी राम बी० ए० लाहौर २

८ मई १९०५ ई०।

भाषा।

इस पुस्तकमें यह दिखलाया गया है कि, मूर्ति पूजा जैन सिद्धान्तके विरुद्ध है। युक्तियां सबकी समझमें आने वाली और उत्तम हैं। दृष्टान्तोंसे जगह जगह समझाया गया है और फिर जैनधर्मने सूत्रोंसे भी इस सिद्धान्तको पुष्ट किया है। जैन धर्म वालो के लिये यह ग्रन्थ अवश्य उपकारी है।

पण्डित राजाराम सम्पादक आर्य ग्रन्थावलि लाहौर। ३

गुरुमुखी से अनूदित।

"जब मैंने इस सत्यार्थचन्द्रोदय जैन पुस्तकको पढ़ा तो प्रतीत हुआ कि, यह जैन धर्मके तत्वका वास्तविक ग्रन्थ है। मैंने पुरुषोंके रचे बहुत ग्रन्थ देखे परन्तु स्त्रीका रचा हुआ पुस्तक मेरे देखनेमें नहीं आया था इसमें जैन धर्मका सब झगड़ा निवारण कर दिया है, इस लिये में सतीजीको धन्यवाद देता हूं। शास्त्रोंके प्रमाणोंसे सिद्ध किया है कि, मूर्ति पूजन शास्त्रोंमें नहीं है। इस पुस्तकके पढ़नेसे प्राचीन जैनका

परिचयहो जाता है। मेरे मुखसे धन्यवादके अतिरिक्त और कुछ नहीं निकलता । लाख असीसां देदां हूं परमेश्वर तुम्हें लख करोड़ वर्ष आनन्द रक्खे, जेकर ऐसी बड़ी उत्तम पुस्तक स्त्रियां रचन तां मर्दां नुं उचित है कि बहुत विद्या पढ़ें ।

जसवन्तासिंह योगीश्वर लाहौर । ४

संस्कृत से अनूदित ।

मिथ्या तिमिर नाशक यह पुस्तक जैन धर्म भाषामें बनाया इसको मैंने मिथ्यातिमिर नाशक यथार्थ में रक्खा गया है क्योंकि, इसमें ज्ञान पक्षपात रहित प्रकट होता है। इसका मन अच्छी तरह देख लिया है, यह प्रमाण करता हूं ।

लाहौर डी० ए० वी० कालिज
प्रोफ़ैसर पण्डित राधाप्रसादशर्मा शास्त्री । ५

छन्दों का अनुवाद ।

मुझको आश्चर्य्य नहीं है जो पुरुष ऐसा ग्रन्थ बनावें, आश्चर्य्यकी बाततो यह है कि प्राकृतभाषा और हिन्दी भाषामें ऐसा पुस्तक स्त्री बनावे । इस स्त्रीको मैं सब स्त्रियों का शिरमौर समझता हूं। अपने अपने धर्मको सब पुरुष भी पूरा नहीं जान सकते ऐसी दशा है, परन्तु एक स्त्री अपने धर्मको पूर्णतया

जानती है यही तो वड़ा-खियाल है। मैं जानता हूं कि, उसने विद्या वलसे और पुण्ययोगसे यह ग्रन्थ वनाकर वड़ा उपकार किया। इस लिये पार्वतीदेवी? तुझको धन्य है, प्रत्येक स्त्रीको ऐसी वुद्धि नहीं हो सकती। दयानन्दने सत्यार्थ प्रकाशमें ऐसा लिखा था कि मूर्ति पूजाका आरम्भ जैनियोंसे हुआ है परन्तु इस ग्रन्थके पढ़नेसे यह शंका दूर होगई इस लिये धन्यवाद है तुझको हे देवीपार्वती, मे शिवनाथ सच्चे हृदय से कहता हूं कि यह कोई अवतार है हम ईश्वर से हाथ जोड़ कर वर मांगते हैं कि यह पार्वती चिरञ्जीव रहे जिसने यह सिद्धान्त वनाया है।

पण्डित जोगी शिवनाथ लाहौर। ६

भाषा।

श्रीमती पार्वतीजी महा उपदेशिका वाल ब्रह्मचारिणी अपूर्व प्रतिभा परोपकारिणी शास्त्रोंकी पण्डिता जैनमत पथ प्रदर्शिका जिसने इस ग्रन्थ को बनाया। इस ग्रन्थके वनाने वालीने वड़ी सुगमतासे जैन शास्त्रोंके अनुसार अनेक सूक्ष्म प्रमाणोंसे मूर्ति पूजनका खण्डन करके जैन मत वालोंके लिये जैन धर्मका प्रकाश कियाहै। और जैन धर्मानुयाई देशके हितैषी लाला मेहरचन्द लक्ष्मणदास

ने छपवाया, इस सत्यार्थचन्द्रोदय ग्रन्थको मैंने आद्योपान्त पढ़ाहै इसलिये जैन धर्मके प्रेमियोंसे मेरी प्रार्थनाहै कि उपरोक्त सत्यार्थचन्द्रोदयजैन को पढ़कर अपना जन्म सफलकरें और ग्रन्थ बनाने वाली और छपवाने वालेका उत्साह बढ़ावें । सती जीका बनाया हुआ ग्रन्थ जैन मतके दिखलानेमें सदा कल्याणकारी हो ।

गोस्वामी रामरंग शास्त्री मुख्याध्यापक राजकीय
पाठशाला लाहौर । ७
१४ मई १९०५ ई०

नोट—इत्यादि और भी कई पण्डितोंकी सम्मतियें लिखीहैं परन्तु यहां पुस्तकके वधनेके कारण नहीं लिखीं ।

सम्यक्त्व सूर्य्योदयजैन पुस्तक ।

दूसरा पुस्तक जो आपने रचा इसका नाम "सम्यक्त्व सूर्य्योदयजैन" है इस पुस्तक का अपर नाम "मिथ्यात्वतिमिरनाशक" है इस पुस्तकमें यथार्थ युक्तियोंसे यह सिद्ध कर दिखलायाहै कि ईश्वर जीवोंके शुभाशुभ कर्मोंका उत्तर दायी नहीं है प्रत्युतजो मायामें मुग्ध होकर कर्म करतेहैं वही कर्म उसको उत्तरदायी होते हैं । अर्थात् ईश्वर कर्म

कर्ता नहीं है उसके कर्ता माननेमें चारदोष सिद्ध किये गएहैं और इसमें यह भी सिद्ध कियाहै कि जो लोग ईश्वरको कर्ता मानतेहैं उन्होंने कर्मोंका स्वरूप अर्थात् कर्मके सूक्ष्म संस्कारजो अन्तःकरणमें वासनाओं द्वारा सञ्चित होते हैं उनके न जाननेसे ईश्वर को कर्ता मानना स्वीकार कियाहै। इसी विषय पर १५ प्रश्नोत्तरहैं, और नास्तिक आस्तिक पर युक्तियोंसे प्रश्नोत्तर करके आस्तिकत्व सिद्ध-कियाहै। इस पुस्तकके गुण इसके देखनेसे ही स्फुट (प्रकट) होंगे मैं इसके गुण लिखनेको समर्थ नहीं हूं। हां पश्चात् एक पण्डित ने इस पुस्तकको देखकर सम्मति पत्र भेजा था सो उसका उतार यहां लिख दिया जाताहै।

श्री १००८ मत्याजैनाचार्य्या पद विभूषितया श्रीपार्वती साध्व्या निर्मितं, "सम्यक्त्वसूर्य्योदय जैन" (मिथ्यात्वतिमिरनाशक) नामकं ग्रन्थं समवलोक्यातीव हर्ष आविर्वभूव अयंग्रन्थः कर्ताऽकर्ता च नास्तिकत्व आस्तिकत्वस्य परति कारण बोधकः अतः अतीवादरणीयः।

श्लोक—सम्यक्त्वसूर्य्योदयजैन नामा, प्रश्नोत्तरं यत्र मनोभिरामम्। तयाप्ययं निर्मित ग्रन्थ मुख्यः, प्रीतोभवेत्तेन जिनेन्द्रनाथः॥१॥ श्रीमतीपार्वतीसाध्वी,

जिनधर्मानुगावरा। ययाऽयं निर्मितोग्रन्थः, जनानां लाभदः स्फुटम्॥२॥धन्यासा जननी भवादृशसुतां या जीजनत् विश्रुताम्, धन्यो सौ जनको जिनेश कृपया यश्चत्वया पुत्रिवान्। धन्यासा वसुधा त्रिविष्टपसमा यस्यां भवन्ती स्थिता, तां त्वां सर्वजनोपकार निरतां किं वर्णयामोधुना ॥३॥ सम्मति कर्पूरस्थल राजकीय रणधीर कालेज हाई स्कूल संस्कृत प्रधानाध्यापकः पं० कृष्णचन्द शास्त्री सुरत्राणपुर निवासी।

अतः पाठक इसको अवश्यमेव पढ़ें। इस पुस्तक को हुश्यारपुर निवासी लाला कृपाराम कोटुरामने अहमदाबाद गुजरातके मिस्टर बाड़ीलालके प्रैसमें छपवाया। आपके इस चतुर्मासेमें धर्मका बड़ाही ठाठ लगा रहा, अर्थात् बड़े बड़े रईस साहूकार, मुन्शी, मुसद्दी, डिपटी, ऐहलकार, अफ़सर, वकील, आदिक आपके व्याख्यानोंसे धर्मका लाभ उठाते रहे और हैडमास्टर मुन्शीराम ओसवाल व वायस प्रेजीडण्ट टानक क्षत्रिय प्रतिनिधि सभा पञ्जाब और श्री सनातन धर्मसभा हुश्यारपुरके उपमन्त्री मुन्शीराम कुन्दनसाज आपके उपदेशोंसे धर्मके बड़े अनुरागी होगए और जैनके महत्व पर तथा महासती श्रीपार्वतीजी महाराजके गुणानुवाद रूप भजन

वना वनाकर परिषधामे सुना सुनाकर सभासदों के मनरञ्जन करते रहे। आपके दर्शनोंको बहुतसे नगरोंके श्रावक और श्राविका आए-जिनकी सेवा हुश्यारपुर वालोंने तन, मन, धनसे की। चतुर्मासेके अनन्तर विहार करके आप जालन्धर, कपूरथला, जंडियाला, अमृतसर होकर लाहौर पधारीं। वहां आपने श्रीमती सती राजमतीजी को और श्रीमती सती द्रौपदीजीको भगवती सूत्र पढ़ाया। पाठक ? देखिए यह मनुष्य यदि चाहे तो अपने आपको सांसारिक धन्धोंसे पृथक् रख कर कितना उपकार कर सकताहै। जव हम एक स्त्रीको इतना उपकार करते हुए देखतेहैं तो कैसा आश्चर्य होताहै जैसाकि श्री महासती पार्वतीजी महाराज नामको तो आप एक स्त्रीहैं परन्तु ज्ञान ध्यान सूत्र विचार और परोपकारमें आप सरीखे पुरुष भी इस समयमें थोड़े ही मिलेंगे। आपने जो उपकार कियेहैं वे सब तो लेखनी बद्ध नहीं होसकते हां जिस प्रकार कोई मनुष्य किसी बड़े सागर व झीलका वर्णन करता हुआ एक जलसे भरे हुए कटोरेकी ओर लक्ष्य बांध (संकेत) करके लोगोंको समझाता है कि, वह झील कटोरेकी न्याई है इसी प्रकार में भी आपके

जीवन के यतकिञ्चित चरित्र लिख कर जनता (पब्लिक) की भेंट करता हूं क्योंकि, यदि आपके एक चातुर्मास्यके व्याख्यानों का तत्व विचार (फिलास्फी) का वर्णन पूर्णरूपसे लिखा जाता तो एक बृहद्ग्रन्थ (बड़ा पुस्तक) बन जाता। यदि समग्र वर्षोंके आपके सदाचार विचार और व्याख्यान लेख बद्ध किये जाते तो कितने पुस्तक बन जाते। इसमें किञ्चित् मात्रभी सन्देह नहीं कि, यदि आप जैसी साध्वी किसी अन्य मतमें होतीं तो सोसायटी उसके प्रतिदिनके उपदेशों और उपकारों को हम जैनियों की तरह इतने संकीर्ण क्षेत्रके अन्दर बंद रखना कदापि सहन न करती प्रत्युत लाखों रुपयोंके खर्च से भी कभी न हिच-किचाती अर्थात् उनको उर्दू, हिन्दी, गुरुमुखी, अंग्रेज़ी आदि भाषाओंमें प्रकाशित करवाती और विदेशों में पहुंचा कर इनके विचारोंको विश्वव्यापी और सार्वभौमिक बनाती। परन्तु जैन सोसाइटीने उपेक्षा करके जगत् के प्रायः सम्पूर्ण मतों और जातियों से बढ़ कर कोई उन्नति की, अपितु...। इस लिये उचित यह है कि, यदि जैन जाति वर्तमान अवस्थामें कुछ बढ़ कर उन्नति करना चाहती हो तो वह श्रीमहासती पार्वती जी जैसे विद्वानोंके विचारोंको सार्वदेशिक

बनानेमें तन, मन, धनसे प्रयत्न करें ताकि जैन धर्म के नियम संसार मात्रमें फैल सकें। अस्तु जंडियाला, गुजरांवाला, रावलपिण्डी आदि कई नगरोंके भाई चतुर्मासा की विनती करनेके लिये लाहौरमें उपस्थित हुए परन्तु आपका चतुर्मासा सं० १९६२ वि० का गुजरांवाला का स्वीकृत हुआ।

सं० १९६२वि०का चातुर्मास्य गुजरांवालामें

श्री श्रीमती सती भगवानदेवीजी महाराजका यह अन्तिम चतुर्मासा था जो उनके पुण्ययोग से आपके चरणोंमें हुआ।

श्रीमती भगवानदेवीजी बड़ी श्रेष्ठ बुद्धिकी धारिका थीं श्रीमहासती पार्वती जी महाराजने कृपा करके भगवानदेवी जी की चार चेलियां बनादी थीं।

(१) श्रीमती सतीमथरो जी (२) श्रीमती सती पूर्णदेवीजी (३) श्रीमती सती द्रौपदीजी (४) श्रीमती सती लक्ष्मीजी॥

श्रीमती सती भगवानदेवी जी महारज उन्नीस वर्ष संयम वृत्ति को रीतिपूर्वक पालती रहीं। श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज से आज्ञा लेकर देश देशान्तरों में विचरती भी रहीं और दयादि धर्मका उपदेश भी करती रहीं। इस भाद्रपद वदि अमावस

वृहस्पति वार शरीरमें ज्वर होगया संयम वृत्तिके अनुकूल चिकित्सा भी की गई परन्तु कष्ट बढ़ता ही गया जब चेलियों ने श्रीमहासती पार्वती जी महाराज को चिन्तामें देखा तो सबका चित्त उदास हो गया परन्तु श्रीसती भगवानदेवीजीने श्री महासती जी महाराजके चरणोंमें प्रार्थना की, कि हे दीना नाथ? यह शरीर तो एक अनित्य पदार्थ है, जो जन्म लेता है वह मरता भी अवश्य है यह जीव अज्ञानकी बेड़ियोंसे जकड़ा हुआ अनन्त वार जन्म मरण करत ही चला आ रहा है परन्तु ज्ञान वैराग्य त्यागके विना इसको समाधि उपलब्ध नहीं होती। इस लिये अब मेरा अवसर निकट है आप कृपा करके बाह्य अर्थात् शरीर की चिकित्सा छोड़दें, अब अन्तरंग अर्थात् आध्यात्मिक चिकित्सा करें, अर्थात् यह समय सन्थारे का है आप कृपा करके मुझे अन्तिम समाधि में लीन रहने के योग्य बनावें।

श्रीमहासतीजी महाराज उनके इस मृत्यु की असह्य वेदना की दशा में ऐसे साहस युक्त और धीर वचनों को उन्हीं के मुख सुनकर आश्चर्य रह गईं और कहाकि तू धन्य है, और आपने अरिहन्त शरण, सिद्ध शरण, साधू शरण केवली भाषित

दयामयी धर्मका शरण यह चारों शरण उनको सुना कर विधि पूर्वक संथारा करवा दिया। वे ऐसी भाग्यवती थी कि भाद्रपदशुदि पञ्चमी सम्वत्सरीके दिन सबसे खमत खमावना करके सम्वत्सरीका प्रतिकर्मणा सुन लिया तब इस नश्वर जगत् से सदाके लिये वियुक्त होकर मनुष्य देहको तज कर स्वर्ग प्रयाण किया। इनकी आयु लग भग ४१ वर्षकी थी। गुजरांवाला के श्रावकोने वड़े महोत्सवसे उनका संस्कार विहार किया। पश्चात् श्रीपार्वती जी महाराजने धर्मोपदेश देकर शान्तिका स्वरूप दिखलाया और कहा कि यह जीव केवल धर्मसे ही इस भवसागर से तर सकता है। इस चतुर्मासेमें आपने श्रीमती सती राजमती जी को और श्रीसती द्रौपदी जी को ठानाङ्ग और पन्नवणा दो सूत्र पढ़ाए। बाहरसे बहुतसे नगरो के बाई और भाई आपके दर्शनोंको आए थे जिनका आदर सत्कार गुजरांवालेके भाईयोंने बड़ी प्रसन्नता से किया और दोनो पुस्तकें पूर्वोक्त चन्द्रोदय और सूर्य्योदय भी इस चतुर्मासेमें छप कर तैय्यार हो गईं। चतुर्मासे के पश्चात् आप पसरूर, नारोवाल, कलानौर और छोटे छोटे गांओंमें उपकार करती हुईं अमृतसर पधारी।

अमृतसर में दीक्षा महोत्सव ।

अमृतसरके श्रावक लाला ईशरदास जी गोट्टे वाले जो बड़े सरल स्वभाव भद्र पुरुष हैं उनकी पुत्री सोमादेवी जी बाल विधवा हो गई थीं। उनके पिता जी को बड़ी चिन्ता होगई थी कि, बिना ज्ञान और वैराग्यके इसकी आयु कैसे कटेगी। इस लिये उन्होंने अपनी पुत्री को संसारकी असारता दिखला कर कहा कि, हे पुत्रि ! तेरे लिये योग वृत्तिमें होकर रहना उचित होगा। उत्तर दिया, पिता जी ! जैन वृत्ति को पालना बहुत कठिन है। तब पिताने साहस और धीरता धर कर कहा कि अयि पुत्री ? यदि तू संयम ले ले तो तेरे साथ मैं भी संयम लेलेता हूं इस पर कन्या को वैराग्य और साहस हो गया और अपने पिता जी की सम्मतिके अनुसार संयम लेनेको उद्यत होगईं। जब दोनोंकी दीक्षा ग्रहण करनेका दृढ़ संकल्प हो गया तो ईशरदासजी ने अपने अल्प वयस्क पुत्रका विवाह कर दिया तब एक और बाई देहली से दीक्षा लेनेको आ गई जिसका नाम मानक देवी जी है तब लाला ईशरदासजी और उनकी पुत्री सोमावतीजी तथा मानकदेवीजी इन तीनोंकी दीक्षा मिती पोह वदि २ सं० १९६२ को अमृतसरमें

वड़े समारोह के साथ हुई । लाला ईशरदास जी श्री १००८ पूज सोहणलालजी महाराजके शिष्यानुशिष्य हुए और वे दोनों वाईआं श्री१००८ महासती पार्वतीजी महाराजकी शिष्यानुशिष्या होगई । अमृतसरसे विहार करके आप जंडियाला, कपूरथला, जालन्धर, फगवाड़ामें उपदेश रूपी अमृतसे धर्मके अंकुरों को सिञ्चन करती हुई वङ्गा ज़िला जालन्धर में पधारीं । वङ्गा के श्रावक श्राविकाओंने चतुर्मासे की वहुत सी विनती की और कहा कि महाराजजी आप वड़े २ नगरोंमें चतुर्मासा करते हैं कभी वंगा जैसे छोटे नगरोंको भी तारे । आपने उनकी प्रार्थना पर कहा यथा फरसना । वंगाके दस पंद्रह श्रावक जंडियाला श्री १००८ पूज सोहनलालजी महाराज के चरणोंमें उपस्थित हो कर आपके चतुर्मासाकी आज्ञा ले आए आपका चतुर्मासा सं० १९६३ का वंगामें स्वीकार हुआ ।

सं० १९६३ का चातुर्मास्य वंगा में ।

आप नवांशहर, वलाचोर विचरकर वंगा में पधारीं । यह एक छोटा सा नगर है तथापि धर्मका उद्योत आशासे अधिक हुआ । सम्पूर्ण श्रावकोंने यह नियम कर लिया कि व्याख्यानसे पहले कोई

दुकान न खोले और स्वमती व अन्यमती दिन दिन हितोपदेश सुन कर कर्ण और हृदय पवित्र करते रहे और दान, शील, तप, भावना का बड़ा उद्यम हुआ और लगभग पचास नगरोंके श्रावक और श्राविका दर्शनके लिये आए,और हुश्यारपुरसे लाला पिण्डीदासके सुपुत्र लाला गंगाराम व लाला कन्हैया लालके सुपुत्र लाला बंसीलाल व लाला हुकमीचंद के सुपुत्र लाला नंदलाल आदिक लगभग एक सौ भाईयों व बाइयों के साथ आपकी दर्शन यात्राको उपस्थित हुए। बंगा वाले भाईयोंने भी उनका तन, मन, धनसे आदर सत्कार किया, और तपस्या भी आर्य्याओं और बाईयोंमें १५ दिनके व्रत २२ दिनके व्रत तक हुई। चतुर्मासा बड़ी प्रसन्नता के साथ समाप्त हुआ। आप फगवाड़ा, लुधियाना होकर रायकोट में श्री श्री १००८ सती मेलो जी महाराज के दर्शन करके जगराओं पधारीं। यहां मालेर कोटलाके भाई बिनतीके लिये आए और प्रार्थना की, कि हे कृपा निधान ? आपका चतुर्मासा कभी मालेर कोटलामें नहीं हुआ इस लिये अबके अवश्य कृपा करें। महासतीजी महाराजने कहा कि यथा फरसना ॥

सं० १९६४ का चतुर्मासा मालेर कोटला में

इस चतुर्मासे मे जङ्गल देशके लोगोंको आप के दर्शनों और पवित्र वाणीके सुननेका वड़ा लाभ हुआ, क्योंकि उनके लिये यह क्षेत्र निकट है। ओसवाल,वनिये,खत्री,राजपूत, ज़िमींदार आदिक वहुत लोग आपके दर्शनो को वड़े उत्साह से आए और आपके धर्मोपदेश को सुन सुनकर वड़े हर्ष से धर्मका लाभ उठाया । पश्चात् वहां से विहार करके आप रायकोट पधारीं, वहां श्री श्री १००८ श्रीसती मेलोजी महाराज आपकी गुरुणी रुग्णा (वीमार) थीं आपने उनकी सेवा तथा रीति की और अपनी शिष्याओं से भी करवाई और धर्म की भावना सुनाई । आपकी गुरुणीजी गुणोंकी भण्डार थीं। जिन्होंने एक दिनके व्रतसे लेकर ३३ दिनके व्रत तककी तपस्याकी थी और आपके परनाम तप संयम में यथा व्यवहार अच्छे रहे । जव रोग वढ़ गया तो उनको देव अरिहन्त, सिद्ध भगवन्त, गुरु निर-ग्रन्थ और दयामयी धर्म इन चारों शरणों को ग्रहण कराते हुए यथा अवसर सन्थारा समाधि को धारण करा दिया, उन्होंने अपने तनु की प्रीति को मृत्यु से पूर्व ही त्याग दिया अर्थात् पण्डितजन ऐसा

विचार किया करते हैं कि मैं सच्चिदानन्द स्वरूप पवित्र आत्मा हूं कर्मोंके वश होकर इस शरीरमें बंधा हुआ हूं, मेरा इससे जितना संयोग था वह हो लिया। जिस शरीरको मैंने धर्मके अतिरिक्त शेष सब पदार्थों से अधिकतर प्रिय जाना हुआ था, जब वही मुझसे विमुख होरहा है तो मैं इस जड़ से स्वयं ही क्यों न प्रीति तोड़ूं, और अपनी समाधि में प्रीति रखकर क्यों न आनन्द लूं। जैसे लोहे को अग्निमें धर कर घनकी चोट लगाते हैं, वह चोट लोहे पर है, अग्नि पर नहीं परन्तु लोहे के साथ अग्नि पर भी चोट आती है। इसी प्रकार शरीरके साथ जीवको सुख दुःख भोगना पड़ता है, इत्यादि।

सुतरां मार्गशिर शुदि एकम सँ० १९६४ प्रातः काल देवलोक पधारीं। धन्य हैं जिनको पण्डित मरना प्राप्त होता है। वहां के भाईयों ने उनका संस्कार यथारीति बड़े समारोहके साथ किया वहांसे विहार करके आप लुधियाना मालेरकोटला नाभा होकर पटियाला पधारीं, वहां पर जैनमुनि श्री१००८ श्रीगणावच्छेदक स्वामी गणपतरायजी व श्री१००८ श्रीस्वामी मैयारामजी व श्री१००८ श्रीस्वामी गैंडा रायजी आदिक अनुमान २२ साधु विराजमान थे

वहां एक आर्य्या को सम्प्रदाय में सम्मिलित होनेके विषयमें कुछ विरोध था, अर्थात् कई कहते थे कि अपनी सम्प्रदायकी आर्याके नामकी चेली बनाये बिना न मिलाया जाय और कई इसके विरुद्ध थे, इसलिए इस बात का निर्णय यह हुआ कि नाम धराये बिना न मिलाया जाय। फिर आप अमृतसर पधारी। इस स्थान पर आपके दर्शनों को बहुत से भाई स्यालकोट व जम्मूके आए और चतुर्मासे की अतिशय विनती होने पर सं० १९६५ वि० का चतुर्मासा स्यालकोट का स्वीकार हुआ।

१९६५का चतुर्मासा स्यालकोटमें चतुर्थवार

इस चतुर्मासे में धर्मका बहुत उद्योत हुआ बाईओं और भाईयों की लगभग लाख सामायिक हुई और श्रीसती माणकदेवीजी ने २२ दिनका एक व्रत किया और ९ दिन से एक दिनतक के व्रत अनेक श्रावक व श्राविकाओ ने किये और यहां बाईओं को पतले (बारीक) वस्त्र पहनकर घरसे बाहर निकलनेका परहेज कराया गया, और यहां आपके उपदेशोंमें चार बाईयोको वैराग हुआ(१)बाईदुर्गादेवी जिसका अब रत्नदेवी नामहै। (२)बसन्ती जिसका विद्यावती नाम है। (३)धनदेवी। (४) ईश्वरदेवी, और एकदिन एक

दिगम्बरी जैनी उपदेशक जिसका नाम रामलाल जी था, आपके व्याख्यान में आए, और उन्होंने विद्या के विषय पर स्वयं भी लेक्चर दिया। आप के व्याख्यान की जो प्रशंसा उन्होंने समाचार-पत्र में लिखी, वह निम्न लिखित है:—

"जैन गैज़ट भारतवर्षी दिगम्बर जैन महासभा का साप्ताहिक हिन्दी पत्र सम्पादक और प्रकाशक जुगल किशोर मुख्तार देव वंद। जैन गैज़ट १ अक्तूबर १९०८ श्री वीर निर्वाण सं० २४३४ पृष्ट (२०) स्यालकोट- पुनः रावलपिण्डीसे एक दिनको उतरता हुआ, तारीख २३ को स्यालकोट आया यहां दिगंवरी घर केवल ५ हैं, इनमें धर्म रुचिका अभाव है, शेप (२००) से अधिक थानकवासी के घर हैं, नगर के उपासरे में सभा हुई, लगभग ५०० पुरुप उपस्थित थे। विद्या विषय पर व्याख्यान किया, आशा है, पाठशाला स्थापन होजायेगी। विदुषी पार्वती बाई साध्वी का चतुर्मासा है। आप संस्कृत विद्या के सिवाय अंग्रेज़ी उर्दू की भी जानकर हैं, आपका व्याख्यान नित्य होता है। जिसमें प्रायः स्त्री पुरुष उपरोक्त संख्या युक्त एकत्रित होते हैं। आपका व्याख्यान बड़ा रसीला और मनोहर होता है। स्त्री

समाज में तो इनके समान उपदेशिका का होना एक प्रकार अभाव सा ही है वरं पुरुष समाजमे भी कम हैं आपने कई पुस्तकें भी ईश्वर कर्त्ताऽकर्ता विषय आदि पर उत्तम लिखी हैं आपका स्वभाव भी बहुत उत्तम है। आपके साथ चार साध्वी और भी हैं। यहां पर लाला रामजी दास ने (७) साल दीगर महासभा की, मैम्बरी स्वीकार की और २० ग्राहक जैन गैज़ट, एक ग्राहक जैन मित्र का हुआ। पाठक देखिए ? एक दिगम्बरी भाई ने आपका एक ही दिन उपदेश सुनकर आपकी इतनी प्रशंसा की है सच है विद्वानों के गुण विद्वान् ही समझ सकते हैं। चतुर्मासा के पश्चात् आप स्यालकोट से विहार कर के कुञ्जाह जेहलम रोहतास कलर आदि नगरोंमें उपदेश देकर ३ माघ सं० १९६५ को रावलपिण्डी पधारीं।

सं०१९६६वि०का चतुर्मासा रावलपिण्डी में दूसरी वार।

इस स्थान पर आपके आने की सूचना पहले से ही थी। क्या नर क्या नारी सब आनन्द से फूले नहीं समाते थे। रावलपिण्डी के श्रावक और श्राविका बड़े उत्साह से आपकी अगवानी करने

के लिए कई जेलम तक कई वज़ीराबाद तक उपस्थित हुए थे। जिस दिन आप रावलपिण्डी में विराजीं आपके साथ इतनी भीड़ थी कि नगर में एक मेला जान पड़ता था। जैन-धर्म-प्रचारक सभा रावल-पिण्डीकी ओर से मुहल्ला ध्वजा पताका और फ़ानूसों से अलंकृत किया गया।

घर २ में मङ्गल मनाया जाता था सबसे पहले श्रीमहासतीजी महाराजने श्री १००८ स्थविर स्वामी शिवदयालजी महाराज ठाणाचार के दर्शन किये और विधि पूर्वक वन्दना नमस्कार की पश्चात् उसी उपासरे में आपने श्रावकोंकी बिनती पर जीव दया गौरक्षा और स्त्री शिक्षा पर व्याख्यान दिया फिर और आर्य्याओंने भजन पढ़े जिससे बड़ा आनन्द हुआ फिर आपने छोटे उपासरे में पदार्पण किया कुछ दिनों के पश्चात् स्यालकोटकी दो बाईयां श्री मती दुर्गादेवीजी और बसन्तदेवीजी जो उत्तम ओसवाल वंश बड़े खानदान की थीं, संयम धारण करने के लिये रावलपिण्डी आईं, उन्होंने आपके चरणों में उपस्थित होकर प्रार्थना की कि महाराज जी हमको दीक्षा देकर संसार समुद्र से तारें आपने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और वहांके श्रावकों

ने ७ वैशाख की तिथि नियत करदी ।

रावलपिण्डी में दीक्षा महोत्सव ।

रावलपिण्डी जो जैनियोंकी बस्तीके लिहाज़ से पञ्जाबके वड़े नगरों में से है वहां जैनका उत्सव हो तो फिर धूमधाम में क्या त्रुटि होसकती है । रावलपिण्डीकी वरादरीने दिल खोलकर रुपया खर्च किया। लाला भानामल व लाला मैय्यादास दो भाईयों को वरादरी ने शास्त्र और पात्र खरीदने के वास्ते मारवाड़ की ओर भेज दिया जो पुस्तक और पात्र १५००) रु० के खरीद कर अपने साथ ले आए कुछ तो उन्होंने दीक्षा पर देदिये और शेष भण्डारे में रखवा दिये । रावलपिण्डी की वरादरी की ओर से पत्र लिखे गए। इस शुभ अवसर पर और नगरोंसे बहुत स्त्री व पुरुष आए। ६ वैशाख मेंहदीकी रीति को बड़ी धूमधाम से की अर्थात् बाज़ार में नगर कीर्तन हुआ, समस्त वरादरीके साथ भजन मण्डलियां बड़े जोशके साथ भजन गारही थीं, लगभग ३ घण्टे फिर कर सब लोग चौगान भावड़ां में वापस चले गए, वहां जय जयकार की घोषणा से सारा मुहल्ला गूंज उठा । यह उत्सव बड़े समारोहके साथ समाप्त हुआ । ७-वैशाख दीक्षाकी तारीख थी इस

दिन का दृश्य अपूर्व था। राजा बाजार में एक मण्डप कनात व चन्दोए लगाकर जैन प्रचारक सभा रावलपिण्डी की ओर से रचा गया। इस दिन प्रातः काल ७ बजे जुलूस (सवारी) (Procession) निकला भजन मण्डलियां साथ थीं, अन्य वाद्यों के अतिरिक्त फ़ौजी वाद्य (बाजा) भी साथ था दोनों वैरागिन बाईयों को बहुमूल्य वस्त्र भूषणों सहित गाड़ी में सवार करांया गया, भीड़ बहुत थी, बरादरी के अतिरिक्त नगरके इतने लोग साथ थे कि चलने को रास्ता न मिलता था, कई लोग आश्चर्य में थे कि यह फ़क़ीरी कैसी उत्तम विधि से लीजाती है, सभा की भजन मण्डलियां सुरीला गान करती हुई सवारी के आगे आगे चलती थीं तथा जय जयकार शब्द का उच्चारण करती थीं, इस प्रकार बड़ी धूम धाम और समारोह से वह जुलूस मण्डपमें पहुंचा वहां श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज पहले से ही विराज रही थीं, दीक्षाका मुहूर्त मध्याह्न के पश्चात् ३ बजे नियत हुआ था यह सचमुच देखनेके योग्य था, लग भग सात आठ सहस्र नर नारियों की भीड़थी कई एक यूरोपियन साहब भी अपनी लेडियों के सहित सम्मिलित थे। साहब सुपरिन्टैन्डैन्ट स्वयं और

मियांलाल मुहम्मद खान साहव डिप्टी इन्स्पैक्टर भी रक्षाके लिये पधारे हुए थे सव लोग केवल यह देखनेको उत्सुक थे कि जैनके साधु किस विधिसे वनते हैं अनुमान अढ़ाई वजे उन दोनों वैरागिन वाईयोंको श्रेष्ठ स्त्रियोंकी मण्डलीमें लेजाकर वे भूषण वस्त्र उतार कर उनको दे दिये जिनके थे यदि स्वयं दीक्षा वालीके हों तो दान कर दिये जाते हैं (लागीओंको व दयादि परोपकारमें) दे दिये जाते हैं अस्तु नायनने कतरनी (कैंची) से उनके केश उतार कर थालीमें रख दिये फिर गुलावके जलसे स्नान कराकर भिक्षुणि अर्थात् साध्विओंका वेष पहरा दिया फिर दीक्षाकी विधिके लिये वे वहां लाई गई जहां महासतीजी विराजमान थीं उन्होंने सवके सन्मुख पांच महाव्रतोंका पाठ पढ़ा दिया—अर्थात् दया, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पांच यमोंको अवसे आदिजीवन पर्यंन पालन करना यह शिक्षा देकर चोटीके वाल लुंचन करके अपने पास वैठालीं तव सवको जान पड़ा कि जैनकी फ़क़ीरी ऐसे वैरागसे और इस विधिसे लीजाती है। इस प्रकार दीक्षामहोत्सवके पश्चात् इस मण्डपमें श्रीमहासतीजी महाराजने गौरक्षा

पर एक बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया जिस का प्रभाव लोगोंपर ऐसा पड़ा कि, वहुत लोगोंने गौरक्षाके उपाय करनेकी मनमें ठान ली, इसी सायंकाल मिस्टर रेवाशंकर व दुर्लभजी गुजरात काठियावाड़ वालोंने भी आपके समर्थनमें गौरक्षा पर सभामें व्याख्यान दिया। वहांके रयीसोंने पुनः आपकी सेवामें प्रार्थना की, कि, आप एक बार और गौरक्षापर पब्लिकमें उपदेश देवें जिससे लोगों का ध्यान गौरक्षा की ओर और बढ़ जाय सुतरां उनकी प्रार्थनापर आपने चौगान भावड़ांमें जिसमें लगभग पंद्रह सौ नर नारी उपस्थित थे जीवदया गौरक्षा पर उपदेश किया और साहब सिविल सर्जन बहादुरने आपके व्याख्यानका समर्थन करते हुए यह भी कहा कि यदि गौशाला स्थापन हो जाय तो हमको बड़ी प्रसन्नता होगी क्योंकि, शफ़ाखानोंमें जिस जगह चर्बीसे काम लिया जाता है हम उस जगह मक्खनसे काम लेंगे। पंडित गुलाब चन्दजी वकील व लाला हंसराजजी साहनी वकील और लाला उत्तमचन्दजी आदिक प्रतिष्ठित सज्जनों ने भी आपके व्याख्यानका समर्थन किया और लोगोंने गौशाला स्थापन करनेके लिए एक फण्ड

एकत्र कर लिया और उसी समय गोशाला (गौरक्षा) की नींव डाली गई और अब वहांपर बहुत गौओं की रक्षा की जाती है। वहांके श्रावक श्राविकाओं ने दान शील तप भावनामें अच्छा उद्यम किया और आर्य्या श्रीसती माणक देवीजीने मासक्षमण की तपस्या की अर्थात् ३१ दिनका एक व्रत किया और श्राविका (बाईओं) ने १५ दिन १४ दिन १३ दिन १२ दिन तथा आठ दिनके व्रत बहुत किये इस चतुर्मासेमे पंजाबके प्रसिद्ध नगरों—कसूर, रोहतास, जम्मू, स्यालकोट, पसरूर, गुजरांवाला, लाहौर, अमृतसर, जंडियाला, जालंधर, होशियार पुर आदिकके अतिरिक्त भारतवर्षके बड़े २ नगरों कलकत्ता बंबई तकके भाई और बाईआं आपके दर्शनके लिये आए और सब यात्रिओंका आदर सत्कार रावलपिण्डी वालोने तन मन धनसे किया। चतुर्मासा समाप्त होनेपर आपने विहार कर दिया।

आपका रावलपिण्डीसे विहार।

आप विहार करके सदर रावलपिण्डीमें ठहरीं वहां प्रातःकाल ही रावलपिण्डीके बहुत श्रावक और श्राविका दर्शनके लिये आए और छावनी वालोंने आपकी सेवामें व्याख्यानकी प्रार्थना की।

आपने कहा, अच्छा, तब सेठ जहांगीरजीकी कोठीपर आपका व्याख्यान करवाया गया वहां बहुत भीड़ थी पश्चात् एक सन्यासी साधुने भी गौरक्षा पर व्याख्यान दिया और श्रावकों ने भजन गान किये पश्चात् जलसा विसर्जन हुआ। फिर मध्याह्न के पश्चात् आपने विहार कर दिया, जिस प्रकार राम लक्ष्मण सीताके बनवास होनेपर जनता उनके रोकनेपर भी वापस न होती थी, उस दिन रावल-पिण्डी वालोंकी भी यही दशा थी एकके आगे एक दौड़ता था। उनके साथ कई पड़ाव पाँव प्यादा केवल श्रावक ही नहीं प्रत्युत श्राविका भी लगभग २५ मील तक आपके साथ गईं। आप पहले कल्लरमें पधारीं यहां व्याख्यान हुआ वहांसे रोहतास और कुंजाह में दया धर्मरूपी रत्नोंकी वर्षा करती हुईं गुजरांवाला पधारीं। गुजरांवाले में स्यालकोटके श्रावक श्राविका आपके चरणों में बिनती करने आए और आपने उनकी बिनतीको स्वीकार किया फिर स्यालकोट पधारीं। वहां दो बाइयां लाला लद्धेशाह की पुत्री ईशरदेवीजी और भोलूशाहकी स्नुषा (पुत्रबधु) धनदेवीजी दोनों दीक्षा उद्यत हुईं। श्रीमतीजी ने कहा कि पहले माता

पिता और सुसराल वालोंकी अनुमति लेलो आपके इस कथनपर उन्होंने घर वालोंसे अनुमति मांगी उनके सम्बन्धियों ने जैनकी फ़कीरी के कष्ट बतलाकर कहाकि गृहस्थ आश्रममेंही धर्म ध्यान करो संयमका लेना अति कठिन है परन्तु उनको वैराग्यका रंग पक्का चढ़ चुका था इसलिये अन्त में उनको अनुमाति देनीही पड़ी। वहांसे आपने अमृतसरको विहार कर दिया और अमृतसरमे हुश्यारपुरके भाई आपके दर्शनो के लिये आए जिन्होंने चतुर्मासा की विनतीकी और यह भी प्रार्थना की, कि वैरागिन बाइयोंकी दीक्षा हुश्यारपुरमें दीजाय उनकी विनती रीति पूर्वक स्वीकृत हुई परन्तु ईशरदेवीकी माता तथा जेष्ठ पिता जमीताशाह ने अमृतसर आकर विनती की, कि इसको दीक्षा अमृतसरमे ही दीजाय इसलिये उसकी दीक्षा उसके माता पिताकी इच्छानुसार अमृतसरमें ही होगई और धनदेवीजी सती द्रौपदीजीके पास जो हुश्यारपुरमें विराज रही थी पहुंच गई।

आल इण्डिया कान्फ्रेन्सके अधिवेशनपर आपके पधारनेकी आवश्यकता।

इन दिनों जालन्धर नगर मे आल-इण्डिया

कान्फ्रैन्सका चतुर्थ अधिवेशन होनेवाला था और अजमेरसे क्लर्कों सहित दफ़्तर आया हुआ था तथा प्रवन्धकर्त्तृ कमेटीके कई सुप्रसिद्ध मैम्बर भी प्रवन्धकेलिए आये हुए थे उन्होंने आपके चरणोंमें अमृतसर उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि कान्फ्रैन्सके अवसरपर आपके उपदेशकी आवश्यकता है इसलिए आप इस कान्फ्रैन्सके इस अवसरपर जालन्धर पधारनेकी कृपा करें। आपने कहा कि हमारे भाव कान्फ्रैन्सके अवसरपर जानेके नहीं है, फिर उन्होंने श्री १००८ पूज सोहनलालजी महाराजके चरणोंमें प्रार्थना की और कई एक नगरों तथा जालन्धरकी औरसे भी इस विषयके अनेक पत्र पूजजी महाराजके चरणोंमें पहुंच चुके थे। उनमें से एक पत्रकी अनुलिपि नीचे दर्साई जाती है—

जय जिनेन्द्र !

विदित हो कि आपसे पहले भी प्रार्थना की गई है कि आप हमारी ओर तथा अपनी ओरसे पूज्य महाराजकी सेवामें बन्दनाके पश्चात् प्रार्थना करके सतीजी महाराजको जालन्धर विहार करा देवें क्योंकि सतीजी महाराजके जालन्धर पधारनेसे ... शोभा बहुत बढ़ जायगी अन्यथा

कान्फ्रैन्समें बहुत थोड़े लोग सम्मिलित होंगे और कान्फ्रैन्सके दिन बहुत थोड़े रह गए हैं इसलिये निवेदन है कि आप अब शीघ्र जालन्धरमें पधारें और वहां बैठकर कार्य्यको पूरा करें।

१३ मार्च, सन् १९१० | सेठ चांदमलजी पेशावर ।

इसलिए श्री१००८श्रीपूज्य सोहनलालजी महाराज ने श्रीमहासतीपार्वतीजी महाराजको आज्ञादी कि आप जालन्धर पहुंचकर इस अवसरपर व्याख्यान देवें इसपर आपने प्रार्थना की, कि कान्फ्रैंसके अवसरपर मुनिराज भी तो पधारेंगे इसलिए उनका ही उपदेश होना चाहिए जिसपर श्रीपूज्यजी महाराजने कहा कि श्रावक लोग तुम्हारे व्याख्यानकी आवश्यकता प्रकट करते हैं यदि मुनिराज वहां पर पधारेंगे तो भी तुम्हारा व्याख्यान अवश्य होगा। इसालिये आपने पूजजी महाराजकी आज्ञानुसार जालन्धरकी ओर विहार कर दिया और कपूरथले पधारीं। इस समय मारवाड़के बहुतसे सेठ साहुकार आपके दर्शनार्थ और विनतीकेलिए जालन्धरसे कपूरथले गए। सुतरां आप २५ मार्च १९१० प्रातः-काल ९ बजेके लगभग जालन्धर पधारीं, कई सौ

स्वयंसेवक (volenteers) ओर जालन्धरके मैम्बर और स्थान स्थानके सेठ साहूकार जो कान्फ्रैन्सके उत्सवपर आए हुए थे आपकी अभ्यर्थना (पेसगी) के लिये बस्ती बाबा खेल तक पांव-प्यादा गए और सबने विनयपूर्वक बंदना नमस्कार की और भजन गाते हुए स थ हुए। आपकी अभ्यर्थना जालन्धरमें इस समय जो हुई वह जालन्धरकेलिए मानो पहला ही उत्सव था। आप बाबू राधारामजी प्लीडरकी कोठीपर विराजीं, इस अवसरपर जैनमुनि श्रीमान् गणावच्छेदक श्रीस्वामी गणपतरायजी महाराज श्रीस्वामी मैय्यारामजी महाराज और श्रीस्वामी उदयचंदजी महाराज अपने शिष्यों सहित विराजमान थे। जालन्धर इस समय जैनकी एक पुरी बन रहा था। बड़े २ वयोवृद्ध जन कहते थे कि ऐसा उत्सव जालन्धरमें कभी नहीं हुआ। इस कान्फ्रैन्सके प्रैजीडैन्ट रायबहादुर सेठ उमीदमलजी रयीस ए आज़म नियत किये गए थे, लाला रलारामजी आनरेरी मैजिस्ट्रेट जालन्धर, अभ्यर्थना कमेटीके प्रैजीडैन्ट थे।

आपका व्याख्यान आल-इण्डिया जैन कांफ्रैन्स पर दयाधर्म का फोटो।

२८ मार्च १९१० ई० श्री १००८ श्रीमती महासती पार्वतीजी महाराजका व्याख्यान लाला राधारामजी प्लीडर की कोठी में दयाधर्म के विषय पर हुआ, उस दिन तीन चार सहस्र भाई वा वाइयां उपस्थित थीं। हिज़ हाईनैस श्रीठाकुर साहव मौर्वी नरेश श्रीयोग राजा साहव मौर्वी और श्री चूड़ा नरेश व्याख्यान सुनने के लिए पधारे, श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने व्याख्यानमें ऐसा कथन किया। सूत्र! "धम्मो मंगल मुक्किठं, अहिंसा संजमो तवो"॥

अर्थ—धर्म जो है वह सवसे वढ़कर मङ्गल है, अर्थात् धर्म सव प्राणियोंको सुख देने वाला है, धर्म संसार से पार करने को यान पात्र (जहाजवत्) है धर्म ही जीव को पवित्र करता है, धर्म ही से जीव को उच्च गति होती है, धर्मही से इन्द्र, नरेन्द्र, आदिक पद मिलते हैं, क्योंकि यह देखने में भी आता है कि राजे महाराजे सेठ सेनापति आदि वड़े ऊंचे प्रासादों में रहते हैं और सुन्दर रूप वाली रम्भा समान रानियां आज्ञा मानती हैं और अच्छे अच्छा पदार्थवस्त्र भूषण खानपानादि भोगनेमें आते हैं और

सहस्त्रों मनुष्य उनकी आज्ञामें चलते हैं, इत्यादि। और कईएक मनुष्य कुष्ठी, कलङ्की, जलोदर, भगंदर, अश्मरी आदि रोगों से ग्रस्त और नेत्रों से अन्धे नासिका कृमियों ने खाई हुई और टुण्डे पंगुले तन पर वस्त्र नहीं, खाने को टुकड़ा नहीं, बैठने को घर नहीं जब वे भूख के मारे किसीके द्वारे मांगने जाते हैं तो कोई उन्हें पास खड़ा नहीं होने देता, यदि कोई दयावान दे भी तो उनके पास लेने को पात्र नहीं और न वस्त्र, ऐसे अति दुःखित हुए २ जङ्गलों में पड़े पड़े कष्ट सहते हैं अब सोचें कि इन दोनों अवस्था वाले मनुष्यों में इतना अन्तर क्यों है। इससे स्पष्ट है कि जिन्होंने पहले जन्मों में धर्म किया है वे सुखी हैं और जिन्होंने नहीं किया वे दुःखी हैं। अब रहा यह कि वह धर्म क्या है। "अहिंसा लक्षणोधर्मः" अर्थात् धर्मका लक्षण अहिंसा है तात्पर्य्य यह है कि धर्मरूपी महल की नींव दया है। (१) दया धर्म। (२) सत्य धर्म। (३) दान धर्म। (४) ब्रह्मचर्य्य धर्म। (५) सन्तोष धर्म। (६) क्षमा धर्म। (७) संयम धर्म। (८) ज्ञान वैराग्य त्याग धर्म इत्यादि क्रमशः ऊपर २ धर्म की श्रेणी चढ़ते हुए मोक्षको प्राप्त होजाते हैं अब बतलाना यह है कि दया को जो सब

मतोंमें मूलधर्म माना गया है इसका कारण क्या है, इस का कारण यह है कि प्राणी मात्र को अपने प्राणों से वढ़ कर और कोई वस्तु प्रिय नहीं है इस लिए प्राणिओं के प्राणों को अपने प्राण समान समझ कर उनकी रक्षा करना परमधर्म है क्योंकि अपने प्राणों की रक्षाके लिए मनुष्य कितने प्रयत्न करते हैं अर्थात् प्राणों की रक्षा के लिए सुरक्षित स्थानों अर्थात् गाओं और नगरों में रहते हैं प्राणोंकी रक्षा के लिए कोट खाई और दुर्ग (किला) वनवाते हैं प्राणोकी रक्षाके लिए कोस सेना शस्त्र वस्त्र आदि सामग्री रखते हैं, जैसे अपने प्राणोंकी रक्षाके लिए वड़े वड़े प्रवन्ध करते हैं ऐसे ही अन्य प्राणिओके प्राणोको समझ कर दया धर्मको स्वीकार करना उचित है, परन्तु अव अलियुग में दयाधर्म कथन मात्रका देखने में आता है अर्थात् क्या वैष्णव क्या शैव क्या जैनी क्या आर्य्य क्या सनातन क्या सिक्ख और पशुओंकी रक्षा तो करते सो करते परंतु गौको जिससे कि मनुष्यको वड़े वड़े लाभ पहुंचतेहैं, दूध न देनेपर अनार्यों व बूचड़ों के हाथ वेच देते हैं क्या इससे वढ़कर नीचता कोई और भी है फिर श्रीमहासती प्रवर्तिनी पार्वतीजी महाराजने कथन

किया कि जो लोग केवल गौ की रक्षाको ही धर्म कहते हैं वे भी प्रायः जब तक गौ दूध देती है तब तक उसकी सेवा करते हैं अर्थात् उसको चारा देना उसकी पीठ पर हाथ फेरना उसे सर्दी गर्मीसे बचाने के लिए सुरक्षित स्थान में बांधना क्या इसी का नाम गौरक्षा है, नहीं २ कदापि नहीं, यह गौ रक्षा नहीं है यह तो स्वार्थ रक्षा है क्योंकि इस प्रकार तो हिंसक अनार्य्य म्लेच्छ कसाई तक भी गौ के घी दूधके लिये सब प्रकार से सेवा करते हैं तो क्या उन्हें दयालु कृपालु गौरक्षक मान लेवेंगे नहीं नहीं वह तो उनके स्वार्थ की रक्षा है जब तक उनका स्वार्थ निकलता रहै तब तक उसकी रक्षा करते हैं और जब उसके स्तनों में दूध थोड़ा रह जाता है तब उसी गौ की ग्रीवा पर आरा धर देते हैं। अयि अहिंसा परमधर्म के प्रचार करने वालो ? अयि दया धमके पालने वाले आर्य्य पुरुषो ? तुम्हारा यही दया धर्म है कि जब तक गौ दूध दे तब तक उसकी सेवा करना और जब उसके स्तनोंमें दूध न रहे तब उसको बेच देना हे मनुष्य बुद्धि के धारने वाले हिन्दू व मुसल्मान भाइयो ? तनक विचार करो कि जिस गायने पंद्रह व बीस वर्ष तक दूध, दधि (दही), घृत (घी), छाछ

दिया जिससे तुम और तुम्हारे बूढ़े माता पिता और भाई स्त्री बाल बच्चे सारा परिवार पलता है अर्थात् अपनी माताओं के दूध छोड़ने के पश्चात् भी सारी आयु इसीसे पलते हो और जिसके बच्छि बछड़ों ने इस दुग्ध धारा को तुम्हारे गृहों में प्रवाहसे जारी रक्खा है और जिसके बछड़े गेहूं चने आदि सब प्रकारके अन्न फलफूल आदिक मनुष्यके लिये तय्यार करने का एक साधनहैं ऐसी परोपकारिणी गौ जब बूढ़ी हो जाय अथवा दुग्ध का स्वार्थ पूरा न कर सके तो तुम ही इतने आभारी उसके उपकारों को भुलाकर उसकी सेवा न कर सके तो क्या वह करेगा जो इस अवस्था में उसे मोल लेगा नहीं नहीं, वह तो उसकी कोमल ग्रीवा पर तुरन्त आरा फेर कर काट देगा जैसे बड़ी लकड़ी काट दी जाती है इससे सिद्ध हुआ कि जो बूढ़े पशु को बेचते हैं वे कृतघ्न होते हैं, क्योंकि बुरे के साथ बुराई करना तो एक ओर रहा भले के साथ बुराई करना कितना अन्याय है हा! इसी का नाम कलु है इस लिए भूलकर भी किसी पशु का रस्सा अनार्य्य के हाथ में न देना चाहिये, क्योंकि बूढ़े पशु को बेचने वाला, मारने के लिए खरीदने वाला, पशु को मारने

वाला, मांस हड्डी चर्म को बेचने वाला, और इनके ख़रीदने वाला, मांस के पकाने वाला और खाने वाला कसाई को शस्त्र देने वाला और कसावों को व्याजपर रुपया देने वाला ये सबही पण्डितों के मत में कसाई के तुल्य माने गए हैं । यदि कोई मनुष्य बूढ़े पशुको पालने की सामर्थ्य न रखता हो तो वह उसको किसी गौशालादि सुरक्षितस्थान में भेजसकता है परन्तु उनको बध्य स्थानों में कदापि नहीं भेजना चाहिये और नां ही किसी ऐसे दीन व अज्ञात ब्राह्मण को देना चाहिये कि जो उसके पालन करने की सामर्थ्य न रखता हो क्योंकि वह भी किसी अनार्य्य को देगा । और आपने यह भी कथन किया कि जैन सूत्रों से पाया जाता है कि प्राचीन समय में जैनी लोग अर्थात् श्रावक सबसे बढ़कर गौ रक्षक थे अर्थात् गाय बछड़े आदिक बेचते ही न थे इस लिए आनन्दजी कामदेवजी आदिक श्रावक चालीस चालीस साठ साठ सहस्र गौओं की रक्षा करते थे जो उनके गाओं के आसपास की भूमि और बनों में चरती थीं क्या वे लोग ग्वाले व गूजर थे, नहीं नहीं, वे लोग बड़े धनाढ्य थे क्रोड़ों रुपए उनके पास थे परन्तु वे गोधन को बेचते नहीं थे और

वैष्णव मत में भी श्रीकृष्ण भगवान का नाम गोपाल इसी लिए रक्खा गया था कि वे गौओं की पालना करते थे और इसी कारण पूर्व समय में दूध घी आदिक पदार्थ सस्ते और सुलभ थे और दूध घी के सुलभ होने से लोगों में आर्य्य धर्मानुसार वल बुद्धि भी वहुत होती थी, अव ऐसा समय आगयाहै कि हिंदुओं के घरों में गौएं वहुत देख पड़ती हैं जो हैं भी तो पीछे अनार्यों के हाथ वेच देते हैं, दूध घीकी महर्घता काभी यही कारणहै और दूध घीकी महर्घताके कारण अभक्ष्य का भक्षण अर्थात् मांस मेद संयुक्त वस्तुओं का व्यवहार होने लगा जिससे आर्य्य बुद्धि हीन हो गई और आर्य्य बुद्धि के हीन होने से धर्म कर्म भी घट गए इत्यादि।

आप के उपदेश से उपकार।

इस प्रकार के शब्द जव श्रोताजनों के कानों में पहुंचे तो नाम दार ठाकुर साहव चोंड़ाहने कांफ्रेंस के उत्सवमें स्वयं यह कहा कि में जैन कान्फ्रेन्स में पहले पहल आया हूं और प्रतिज्ञा लेता हूं कि मेरे राज्य में सदा काल में जीव हिन्सा न होगी और मैं स्वयं भी किसी जीव का आखेट (शिकार) नहीं करूंगा। इस प्रतिज्ञा से सभासदों को वड़ी प्रसन्नता

हुई । इसके अतिरिक्त बहुत लोगों ने ऐसा प्रण कर लिया कि बूढ़े पशु को नहीं बेचेंगे इत्यादि आपके पवित्र उपदेश से असीम उपकार हुआ । जालन्धर से विहार करके आप होशयारपुर पधारीं वहां बाई धनदेवीजी स्यालकोट वाली की दीक्षा का मुहूर्त मिति चैत्र शुद्धि ५ सं० १९६७वि०का नियत हुआ । जो सेठ साहुकार मारवाड़ व गुजरात काठियावाद से जालन्धर पधारे हुए थे इन में कई एक दीक्षा महोत्सव में सम्मिलित होने की इच्छा से ठहर गए और होशयारपुर चले गए पंजाब के अनेक नगरों से लोग इस अवसर पर आए हुए थे। सुतरां दीक्षा महोत्सव बड़े समारोह से हुआ यहां भी आप का व्याख्यान गोरक्षादि जीव रक्षा पर हुआ इस समय एक सहस्र के लगभग श्रोता उपस्थित थे इस व्याख्यान का एक पुस्तकरूप में ट्रैक्ट भी उर्दू हरूफों में छप चुका है ।

आपका व्याख्यान ब्रह्मचर्य्य के विषय पर।

आपने ब्रह्मचर्य्य विषय पर व्याख्यान दिया जिसका तात्पर्य्य नीचे लिखा जाता है "श्रोताजनो ! मुक्ति के साधन में प्रथम ब्रह्मचर्य्य परम धर्म है साधु जन अर्थात् सन्यासिओं का तो पूर्ण ब्रह्मचर्य्य यह है

कि स्त्री को स्पर्श भी न करना जिस घर में स्त्री रहती हो उस घरमे रहना भी नहीं और स्त्रीकी ओर दृष्टी मिला कर देखना भी नही, कई ग्रन्थ कर्त्ता तो यहां तक लिखते हैं कि स्त्री के साथ दृष्टी मिलाने से कई प्रकार के दोष उत्पन्न होते हैं अर्थात् चंचल दृष्टी वाला जिसकी दृष्टी स्थिर नहीं रह सकती उस से तो अंधा ही अच्छा है क्योंकि अंधा तो दूसरे साधु के आश्रयसे अपना साधुधर्म पाल सकता है परन्तु जो चंचल दृष्टी वाला है जब वह स्त्री की दृष्टी में दृष्टी मिलायगा तो उसके अन्दर विकार उत्पन्न होगा और विकार से प्रीति होगी प्रीति से हास्य विलास होगा हास्य विलास से संयम भ्रष्ट होकर भोगों की इच्छा करने से स्त्री संग से पतित होगा और फिर निन्दा का पात्र होगा निन्दा के होने पर झूठ और छलकी शरणलेगा औरफिर कुछ धनकी आवश्यकता पड़ेगी जिसके लिए चोरी और ठगी भी करनी होगी यदि स्त्रीको गर्भ दोष होजाय तो बाल हत्या अथवा स्त्री हत्याके दोष तक पहुंच जाय तो आश्चर्य्य नहीं जिसका फल यदि इसी स्थान पर प्रकट होजाय तो सरकारसे दण्ड पायगा अन्यथा परलोकमें तो अवश्य ही नरक योनि में और पशु योनि में कष्ट भोगेगा

अर्थात् नरकों में तप्त स्थम्भों के साथ बांधा जायगा और लोहे की पुतली आग में लाल करके उस के साथ चिपकाया जायगा जब वह इस से भयभीत हुआ हुआ यमों से ऐसा कहेगा कि मुझ को इस तप्त पुतली के साथ न चिपकाओ तो वे कहेंगे कि तुमने धर्म को हारकर विषयासक्त होकर स्त्री के अंग से चिपटना स्वीकार किया था इसका फल तो भोगना ही पड़ेगा तब वह कहेगा कि हाय हाय मुझे इस तरह मत फूंको क्षमा करदो फिर कभी स्नेह न करूंगा तब वे यम ऐसा कहेंगे कि यहां क्षमा का काम नहीं है पुराकृत कर्म्मों के फल तो भोगलो फिर आगे को समझ सोचकर चलना जब वह बहुत हाहाकार करता है तो वे यम उसके मुखमें लोहे का वांस चलादेते हैं इत्यादि बहुत काल तक कष्ट होंगे अस्तु ऐसे ऐसे दोष होते हैं इस लिए साधु को स्त्री से दृष्टी भी नहीं मिलाना चाहिए । इसी प्रकार इसाईयों की अंजील (हिन्दी अक्षरों में) अर्थात् उनकी धर्म पुस्तक सं० १८६९ई० ऐशियन प्रैस लुधियानामें छपी हुई जिस के पंचम पर्व पृष्ट १२ और बयान २७ में लिखा है कि "तुमसुन चुके हो कि प्राचीनिओं से कहा गया कि तू व्यभिचार मतकर, जिस स्त्री पर खोटी इच्छा

से देखे उससे व्यभिचार करचुका सो जो तेरी दाहिनी आंख तुझे ठोकर खिलावे तू उसे निकाल के फैंक दे क्योंकि तेरे अंगों में से एकका नाश होना इस से भला है कि तेरी सर्व देह आगमें न डाली जावे" और जैन शस्त्रों मे ब्रह्मचर्य्य की रक्षा के लिए नौ वाड़ कही हैं उनका विस्तृत वर्णन देखना चाहो तो सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन १६ वें में देख सकते हें अथवा १९४६ वि० मे मेरा रचा हुआ ज्ञान दीपिका नाम पुस्तक जो सुगम भाषा में छपा हुआ है देख सकते हें। अव रहा गृहस्थिओंके ब्रह्मचर्य्यके विषयमें।

गृहस्थ में ब्रह्मचर्य्य धर्म ।

गृहस्थधर्म के पालने वाले धार्मिक पुरुषों अर्थात् श्रावक लोगों को पर स्त्री का त्याग करना यही ब्रह्मचर्य्य हे अर्थात् उनको ऐसा समझना चाहिये कि मैं इस विवाहिता स्त्री को छोड़ कर और अन्य स्त्री से कैसे प्रीति कर सकता हूं अर्थात् (१) यह मेरी वह धर्म पत्नी हे जो अपना देश नगर माता पिता भाई भतीजे और परिवार को छोड़ कर मेरे पल्ले लगी हे (२) यह वह पत्नी हे जिसका समग्र आयु का सुख मेरे भरोसे पर निर्भर हे (३) यह वह पत्नी हे जो तन मन से मेरी ही प्रीति में मन देकर मुझ पर ही संतोष

रखती है (४) यह वह पत्नी है जो मेरे घर को और मेरे घर के पदार्थों को प्रयत्न से रखती है (५) यह वह पत्नी है जो मेरे घर का शृङ्गार है (६) यह वह पत्नी है जो मेरे माता पिता आदि वृद्धों की सेवा करती है, मेरे बाल बच्चों को पालती है प्राहुणो और अतिथिओं का सत्कार करती है अभ्यागतोंको दान देती है(७)यह वह पत्नी है जो मेरे दुःख सुख की संगिनी है यह सज्जन पुरुष की पुत्री जो शास्त्रों की विधि से ब्याही हुई है, इसको छोड़कर परस्त्री अर्थात् दूसरे की व्याही हुई अथवा वेश्यादि से प्रीति करना अधर्म नहीं तो और क्या है ? और ऐसा भी समझना चाहिए कि, अपनी स्त्री को वस्त्र और आभूषण बनवाकर दिए जावें तो उसमें गृहकी शोभा बढ़ती है और परस्त्री को वस्त्र आभूषण बनवाकर दिये जावे तो किसी के पूछने पर झूठ बोलना पड़ेगा कि मैंने नहीं दिये मैं तो इसको जानता भी नहीं हूं और परस्त्रीके संगसे तन, धन और धर्मका नाश होता है और रोग शोक बढ़ते हैं तथा दुर्गति भी भोगनी पड़ती है इत्यादि दोष जानकर परस्त्री का त्याग करना परमधर्म है और इसी प्रकार स्त्री को भी चाहिए कि अपने पति से अन्य सब पुरुषों

को पिता तथा बन्धुओं के समान समझे अपने पति पर ही सन्तोष रक्खे अर्थात् (१) यह मेरा वह पति है जो मुझे मन्त्रोंकी साक्षी से पाणि ग्रहण करके अर्थात् विवाह करके लाया है (२) यह वह पति है जिसने मुझे घर बार धन सम्पत्तिकी स्वामिनी बना दिया है अर्थात् सब कुछ मेरे भरोसे पर छोड़ दिया है। (३) यह वह पतिहै जो बड़े परिश्रमसे धन कमा कर लाता है अर्थात् दुकानदारी व नोकरी व मजदूरी अथवा युद्ध क्षेत्रमें जाना व कृषि आदि करना इत्यादि साधनों से रुपया लाकर मुझे देता है (४) यह वह पति है जो मेरे धर्म और कर्मकी रक्षा करता है (५) यह वह पति है जो मेरी सन्तानका पालन पोषण करता है इत्यादि ऐसे प्रिय पतिसे मन हटाकर और से लगाना अधर्म नहीं है तो और क्या है प्रत्युत महा अधर्म है सती धर्मका नाश करना है, यदि अपने पतिको कुसंगतिसे कुमार्ग में जाता देखे तो उसे मधुर वचनों से समझा कर सुमार्ग पर लाना चाहिए, यदि देव वशात् न भी समझे तो सन्तोष करके अपने सती धर्मको न छोड़ना चाहिए,यदि अपना पति निर्धन हो तो थोड़े ही पदार्थों में सन्तोष करना चाहिए

कि जब प्रारब्धमें झोंपड़ी है तो महल कहांसे मिल सकता है अपनी झोंपड़ीमें ही संतोष करके सुख से बैठना चाहिए दूसरेके महलको देखकर मनको न ललचाना चाहिए। यदि एकको छोड़ दूसरेसे मन लगाया जावे फिर वहां भी संतोष न आनेसे अथवा उसके मर जानेसे फिर तीसरेके साथ तो फिर तुम में और वेश्या में क्या भेद रहेगा इसलिये प्राणान्त तक भी अपने सती धर्मको न छोड़ना चाहिए। और यह भी है कि स्त्री को अधिक खाना पीना फिरना लड़ना हंसना बोलना ठट्ठा करना गालिआं देना दृष्टी से दृष्टी मिलाना इत्यादि बातों से दूर रहना चाहिए और विधवा स्त्रीको तो विशेषतया इनसे बचना चाहिए बस यही गृहस्थका ब्रह्मचर्य्य अर्थात् सती धर्म और यति धर्म है।

ब्रह्मचर्य्य की विशेष विधि ।

जैन सूत्रोंमें ऐसा लिखा है कि, श्रावकको अष्टमी चौदस अमावस्या पूर्णमाशि अर्थात् एक मासमें ६ तिथि अवश्यमेव ब्रह्मचारी रहना चाहिए अर्थात् पोषदव्रत (पोषा) करना चाहिए।

यथा सूत्र भगवती सतक २ उद्देश ५ वां।

चाउद्दसठ्ठ मुद्दिठ्ठ पुण्णमासिणोसु पडि पुण्णं

पोसहं सम्मं अणुपाले माणा विहरंति ॥

इसका अर्थ यह है कि, श्री मद्भगवान् श्री जिनेन्द्र देवजीने जो धर्म परलोकके सुधारनेके अर्थ कहा है इसमें साथही इस लोकका भी लाभ है क्योंकि इन तिथिओंमें उत्पन्न हुई हुई संतान भी दुष्ट होती है अर्थात् क्रोधी, कपटी, अनाचारी, आज्ञाभंगी अर्थात् माता पिताकी आज्ञाका उल्लङ्घन करने वाली, चोर, निन्दक, दरिद्री इत्यादिक जिसका प्रमाण सूत्रोंमें प्रकट है यथा जहां कहीं किसीको दुष्ट (बुरा) जानकर ताड़ना पड़ता था अथवा कुछ क्रोधमें कहना पड़ता था वहां ऐसे शब्द कहे जाते थे। यथा सूत्र।

अपत्थ पत्थिया, दुरंत पंत लक्खणा, हीण पुण्ण,चाउद्दसिया,हिरी,सिरी,धीई,कित्तिपरि वज्जिया

अर्थात् (१) जिसको कोई न चाहे उसको चाहने वाला अर्थात् मृत्युका चाहने वाला (२) खोटे लक्षणों वाला (३) लक्ष्मी और शोभासे धीर्य और कीर्तिसे वर्जित (४) पुण्यहीण (दरिद्री) (५) चाउ-द्दसिया चौदस (तथा अष्टमी अमावस और पूनमका जन्मा (उत्पन्न) हुआ हुआ) इसी कारण तू दुष्ट है। इसकी साक्षी अन्य मतके शास्त्र भी देते हैं जैसे

मनुस्मृति अध्याय ४ श्लोक १२८।

अमावस्या मष्टमीञ्च पौर्णमाशी चतुर्दशीम्।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्य मप्यृ तौ स्नातको द्विजः॥

अर्थः—अमावस्या अष्टमी पूर्णमाशी और चतुर्दशीको धर्मके जानने वाले कदाचित् स्त्रिओंसे भोग न करें अर्थात् ब्रह्मचारी रहें अतएव मतिमानों का विचार है कि इन तिथिओंमें उत्पन्न हुई सन्तान दुष्ट होती है इसी कारण इस समय में जो शास्त्रों के न जानने वाले और न सुनने वाले हैं वे शास्त्र मर्य्यादासे बाहर चलते हैं अर्थात् इन पूर्वोक्त तिथिओंमें मैथुनके त्याग विना उत्पन्न हुई हुई सन्तान दुष्ट होती है अर्थात् बहुधा देखा जाता है, पुत्र व पुत्री व बहु माता पिता व सास सुसरका सामना करते हैं मर्य्यादाका उल्लङ्घन करते हैं शत्रुकी नाई अपने बड़ोंकी निन्दा करते हैं और बहुलता प्रकृति के भी मूर्ख होते हैं अर्थात् विद्या विहीन होने से व्यभिचारी चोर, जुआरी और सुथरे शाहीकी न्याईं लड़ने वाले होते हैं इसी कारण माता पितादि को दुःखी होना पड़ता है और चिन्ता के कारण धर्म कर्म में हानि पड़ती है और प्रतिष्ठा का भी भय लगा रहता है यहां तक कि, मृत्युको चाहने लगते हैं

कि ऐसी सन्तानके हाथोंसे तो अपनी प्रतिष्ठा (इज्जत) लेकर मर जानाही अच्छा है इत्यादि। विचार वानोंको यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पत्नीके अर्ध गर्भसे लेकर जब तक बालक १ वर्षका न हो जाय तब तक ब्रह्मचारी रहना चाहिए यदि इतना सन्तोष न हो तो छे मास व चार मास परन्तु ४० दिन तो अवश्य ही ब्रह्मचारी रहना चाहिए इसमें परलोककी भी सिद्धि है और अपनी सन्तान भी बुद्धिमान् और बलवान् होती है फिर नेत्ररोग व ज्वरादिक किसी प्रकारकी व्याधि तनु में हो जावे तो बुद्धिमानोंको ब्रह्मचर्य्यकी शारण लेनी चाहिए क्योंकि पूर्वोक्त व्याधिओंसे मैथुन करनेसे व्याधिआं बढ़ जाती हैं जिससे धर्म कर्ममें हानि पड़ती है और ब्रह्मचारी रहना रोगोंसे शीघ्र मुक्त होनेका उपाय है, फिर ग्रन्थोंमें ऐसा भी लिखा है कि प्रत्येक सन्धि कालमें अवश्य ब्रह्मचारी रहना चाहिए अर्थात् प्रातःकाल, मध्याह्न काल, सायं काल और अर्ध रात्रि काल, यथा श्लोक बृहद उपदेश माला—

चत्वारि खलु कर्माणि, संध्या काले विवर्जयेत्।
आहार मैथुनं निद्रा, स्वाध्यायस्तु विशेषतः॥

आहाराज्जायते व्याधि, क्रूर गर्भश्च मैथुनात्।
निद्रया धन नाशः स्यात्, स्वाध्याये मरणं भवेत्॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए चार कर्म निश्चय कर के संध्याकाल में वर्जें (१) आहार अर्थात् भोजन करना (२) मैथुन अर्थात् स्त्री संग करना (३) निद्रा अर्थात् सोना (४) स्वाध्याय अर्थात् सूत्रका पाठ करना। अर्थात् इन चार सन्ध्याकालों में यह चारों कर्म किये जावें तो चार दोष होते हैं (१) आहार करने से व्याधि अर्थात् रोग उत्पन्न होनेका कारण है (२) मैथुनसे क्रूर गर्भ अर्थात् संतान दुष्ट होती है (३) निद्रासे धनका नाश होता है क्योंकि इन समयों में चोरादि अकसर फिरते हैं (४) स्वाध्यायसे मरणकष्ट होने का कारण है। ऐसे विचारवान् मर्य्यादामें चलने वाले पूर्व समयमें प्रायः बहुत लोग हुआ करतेथे इसी कारण पूर्व समयमें आयु, बल और बुद्धि अधिक होती थी और संतान के सुपात्र होने से उन का जीवन बड़े सुखसे कटताथा और जीवनके अन्तिम भागमें प्रायः गृहस्थी लोग अपने पुत्रों को घरबार का भार अर्थात् सम्पूर्ण कार व्यवहार सौंप कर आप केवल धर्म कार्य्य में लग जाते थे जिससे उन का लोक परलोक सुधर जाता था इत्यादि, और

अव इस समयमें सन्तानके प्रायः कुपात्र होने से माता पिता उन पर भरोसा न करते हुए पदार्थों को अपने ही अधिकारमें रखते हैं इसलिए मरण पर्य्यन्तभी तृष्णा और चिन्ताओं से विमुक्त नहीं हो सकते इसी कारण धर्म में दृढ़ चित्त नहीं होता और धर्म में दृढ़ हुए विना लोक परलोक भी नहीं सुधर सकता इत्यादि, इस उपदेशसे लोगों के मनों पर मानो ब्रह्मचर्य्य के महत्वका चित्र खिंच गया। पश्चात् सं० ११७६ वि० मे जैनाचार्य्या श्री १००८ श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने इसी विषय पर दृष्टांत सहित एक पृथक् ब्रह्मचर्य विधि नामक पुस्तक भी रचाहै निस्संदेह यह पुस्तक ब्रह्मचर्य्य के साधन करने की शिक्षा देने को शिरोमणिहै।

सं०१९६७काचातुर्मास्यहोश्यारपुरछटीवार

होश्यारपुरमें आपके उपदेशों से धर्म ध्यान का वड़ा उद्यम होता रहा और तपस्याभी यथा शक्ति अच्छी होती रही। कार्तिक मास में आप को ज्वरहो गया और दुर्वलता अधिक होती गई भाईयों ने घवरा कर कई स्थानों पर तारें दे दीं और वहुत स्थानो से साता पूछने के लिए तारें

आईं किन्तु चतुर्मासा समाप्त होने तकभी ज्वर दूर न हुआ इसलिए श्रावकों ने बिनती की कि आप विहार न करें परन्तु आपने अपने मनके बल से निर्बलताका ध्यान न किया और जालन्धर को विहारकर दिया कई दिनमें आप जालन्धर पहुंची परन्तु कुछ दिन यथोचित चिकित्सा करने से स्वास्थ्य ठीकहो गया जालन्धरमें कुछ दिन धर्म उपदेश करके छावनी फगवाड़ामें विचरकर लुधियाना पधारीं वहां आपके धर्मोपदेश कुव्यसनों के निषेधपर होते रहे जिसका एक छोटासा पुस्तक भी श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने सं० १९७१ वि० में रचा जिसका नाम कुव्यसन निषेध है यह पुस्तक कुकर्म और उस के फल का चित्र है यह पुस्तक मनुष्यके जीवनके लिये ज्योति रूपहै यह पुस्तक मनुष्यको सुमार्ग पर चलाने के लिए एक सड़कहै धर्मके प्रेमिओंको इसे अवश्य पढ़ना चाहिए।

आठलेश्या का स्वरूप चित्र सहित।

एक दिन लाला सोहनलालजी वकील लुधियानाने आपके चरणों में प्रार्थनाकी कि चिरञ्जीव बनारसीदास जो इंगलैन्ड में इञ्जनीयरिंग विद्या

के सीखने के लिए गया हुआ है वह लिखता है कि लण्डनमें जैन सोसायटी स्थापित होगई है, जिसमें कईएक अंगरेज़ भी सम्मिलित हैं, अंगरेज़ों ने जैन के कई ग्रन्थ व सूत्र पढ़कर मुझसे यह प्रश्न पूछा है कि जैनमें लेश्या किसे कहते हैं आप कृपा कर के किसी पण्डित साधु से पूछकर लेश्याका विस्तृत वर्णन लिखकर भेज देवें, इस लिए आपके चरणोमें प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके आप लेश्या का स्वरूप बतला देवें तो मैं लिखकर विलायत में भेज दूं। आपने बड़ी प्रसन्नता से लेश्या का स्वरूप वर्णन किया जो नीचे लिखा जाता है।

इस जीवात्मा के शरीर में श्वासोच्छासके प्रयोग से परमाणुओं का समूह रूप द्रव्य अर्थात् सूक्ष्म पदार्थ (मादा) बाहर से खिंचकर फिर योगों द्वारा अर्थात् मन वाणी कर्मणा द्वारा खिंचकर अन्तःकरण अर्थात् सूक्ष्म शरीर (तेजसकार्माण) में इकट्ठा होता है फिर वह लेश्याओंद्वारा (वासनाओं द्वारा) अन्तःकरण में लिप्त जाता है (चपक जाता) है, उसको संचित कर्म कहते हैं यदि द्रव्यलेश्या और साथ में भावलेश्या भी शुभ हों तो वह परमाणु स्कन्ध द्रव्य भी शुभ होजाता है जिससे नाना प्रकार के शुभ संकल्प अर्थात् अच्छे

विचार (ख्यालात) उत्पन्न होते हैं यदि द्रव्यलेश्या और भावलेश्या दोनों अशुभ हों तो परमाणु मय स्कन्ध द्रव्य भी अशुभ होजाते हैं जिससे नाना प्रकारके अशुभ संकल्प अर्थात् दुष्ट विचार उत्पन्न होते हैं, तात्पर्य्य यहहै कि संकल्पों अर्थात् विचारों (ख्यालातों) की जड़ (बुन्याद) लेश्या होती हैं जिनको किसी रीति से अध्वसाय भी कहते हैं और जिनको मतांतरी लोग वासना भी कहते हैं। इन लेश्याओं का स्वरूप षड्विध व अष्टविध, सूत्र प्रज्ञापन्न व सूत्र उत्तराध्ययन अध्ययन चोत्तीसवें में सविस्तर वर्णन किया है।

फिर श्रीमहासतीजी महाराज का विचार हुआ कि यदि मैं इनका चित्र बनाकर दिखला दूं तो इनका स्वरूप भली भान्ति पाठकों की समझ में आसकता है देखो चित्र।

१—महाकृष्ण लेश्या का महा कालावर्ण, इस पंखड़ीमें—(१) हिंसा (२) झूठ (३) चोरी (४) क्रोध (५) मांस मद भक्षण आदिमें मन रहता है, महाअधर्म्मी नीचोंके प्रसंग से इस पंखड़ीमें मन आकर ठहरता है।

२—कृष्ण लेश्या का काला वर्ण, इस पंखड़ी में—(१) रुदन (२) घृणा (३) लोभ (४) कपट (५) आदिक में मन रहता है दुष्ट जनों के प्रसंग
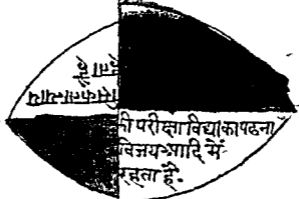
से इस पंखड़ी में मन ठहरता है ।

३–नील लेश्या का नीलवर्ण, इस पंखड़ी में–(१) हास्य (२) रति (३) अरति (४) काम क्रीड़ा (५) शोक भय आदि में मन रहता है, कामिनी आदिक के प्रसंग से इस पंखड़ी में मन ठहरता है ।

४–कपोत लेश्या का अकाशनी वर्ण, इस पंखड़ी में–(१) पदार्थ की रक्षा (२) वस्तु की परीक्षा (३) विद्या का पढ़ना (४) कुलाचार (५) लज्जा आदि में मन रहता है, कलाऽचार्य्यादि के प्रसंग से इस पंखड़ी में मन ठहरता है ।

५–तेजो लेश्या का लालवर्ण, इस पंखड़ी में–(१) सत्य भाषण (२) पूरा तोलना (३) साहसिकता (४) न्याय (५) निर्वाह आदिक में मन रहता है, विद्या गुरु के प्रसंग से इस पंखड़ी में मन ठहरता है ।

६–पद्म लेश्या का पीत वर्ण, इस पंखड़ी में–(१) देवगुरु की भक्ति (२) माता पितादि की सेवा (३) धर्म शास्त्र का अभ्यास (४) दया का पालना (५) परोपकार आदि में मन रहता है, बुद्धिमानो के प्रसंग से इस पंखड़ी में मन ठहरता है ।

७–शुक्ल लेश्या का श्वेत वर्ण, इस पंखड़ी में–(१) दान (२) शील (३) तप (४) भावना (५) क्षमा

आदि में मन रहता है। धर्मात्माओं के प्रसंगसे इस पंखड़ी में मन ठहरता है।

८-महाशुक्ल लेश्या का शुद्ध श्वेत वर्ण, इस पंखड़ी में-(१) ज्ञान (२) वैराग्य (३) त्याग (४) विवेक (५) संतोष आदि में मन रहता है। सत्य गुरों के प्रसंग से इस पंखड़ी में मन ठहरता है। यह हृदय कमल जिसकी लेश्या रूप आठ पंखड़िआं हैं और मन रूप वायु इन पंखाड़िओं पर क्रम क्रम से अन्तर्मुहूर्त अर्थात् थोड़े थोड़े समयमें सब पंखड़िओं पर घूमता रहता है। उपरोक्त कथनके अनुसार कुसंग और अनाचार तथा सुसंग और श्रेष्ठाचार के अंभ्यास से मन इन पंखाड़िओं में स्थित होता है, इस कारण योगेश्वरों का उपदेश है कि अपना संग और आचार श्रेष्ठ रखना चाहिए जिससे अच्छी पंखाड़िओं में मन को ठहरने का अभ्यास रहे इस का नाम योगाभ्यास भी कहसकते हैं। इसप्रकार महासती श्री पार्वतीजी महाराजने यह उपर्युक्त लेश्याओं का स्वरूप दर्शाया और लाला सोहनलालजी ने लिखकर मिस्टर बनारसीदास साहब को इंगलैण्ड में भेज दिया और महासतीजी महाराज के चरणों कर जोड़ प्रणाम करके कहा कि आपने बड़ी कृपा

की कि जो ऐसा अन्तरंग सूक्ष्म भाव का स्वरूप संक्षिप्त शब्दों में वर्णन कर दिया, इत्यादि।
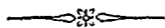
ईश्वर की सर्वज्ञता पर शास्त्रार्थ।

एक दिन एक समाजी ने श्री १००८ श्रीमती महासतीजी महाराज श्रीपार्वतीजी से कुछ प्रश्न किये जो नीचे लिखे गए हैं:—

प्रश्न समाजी—आपके तीर्थंकर सर्वज्ञ होते हैं?

उत्तर महासतीजी—हां।

प्रश्न समाजी—आपके तीर्थंकर जीवोंका आदि (आरम्भ) भी जानते हैं?

उत्तर महासतीजी—नहीं।

प्रश्न समाजी—तो फिर आपके तीर्थ कर सर्वज्ञ कैसें हुए अर्थात् सर्वज्ञ नहीं वरं अल्पज्ञ ठहरे क्योंकि वे जीवों का आदि भी नहीं जानते हैं।

उत्तर में प्रश्न श्रीमहासतीजी का—क्या आप का ईश्वर अनादि है व आदि वाला?

उत्तर समाजी—अनादि।

प्रश्न श्रीमहासतीजी—ईश्वर अपना आदि जानता है?

उत्तर समाजी—हां जानता है।

प्रश्न श्रीमहासतीजी--तो फिर आप का ईश्वर आदि वाला ठहरा अनादि न रहा क्योंकि जब वह अपना आदि जानता है तो उसका आदि हुआ अब आप लोग ईश्वर को अनादि नहीं कहसकते।

उत्तर समाजी—(कुछ विचार कर) नहीं नहीं ईश्वर अपना आदि नहीं जानता।

प्रश्न श्रीमहासतीजी—तो फिर आपका ईश्वर सर्वज्ञ न हुआ प्रत्युत अल्पज्ञ हुआ जो अपना आदि भी नहीं जानता।

उत्तर में समाजी--(चुप)

प्रश्न श्रीमहासतीजी—चुप क्यों रहे कुछ विचार करना चाहिये कि जो सर्वज्ञ होते हैं वे जो जो पदार्थ होंगे उन्हीं को जानेंगे जो पदार्थ हैं ही नहीं उनको वे जानेंगे कैसे अर्थात् जब ईश्वर का आदि है ही नहीं तो जाने कैसें इसी प्रकार जब जीव का आदि नहीं है तो तीर्थंकर वीतराग सर्वज्ञ जानें कैसें, इस लिए सर्वज्ञ अनादि का आदि और अनन्त का अन्त जो है ही नहीं उसे जाने कैसे इत्यर्थः

उत्तर समाजी--आप का कथन न्याय युक्त और यथार्थ है। अतः लुधियाना के श्रावक व श्राविकाओं ने आपके चरणों में प्रार्थना की, कि आप

का चतुर्मासा यहां पर पहले सं० १९५० में हुआ था जिसको १७ वर्ष हो चुके हैं इस लिए अब के अवश्य चतुर्मासे की कृपा करें बड़ा उपकार होगा, सुतरां उनकी धर्म रुचि को देखकर आपने सम्वत् १९६८ वि० का चतुर्मासा वहां का स्वीकार करके माछूवाड़ा को विहार कर दिया और वहां आपके धर्मोपदेश से बड़ा उपकार हुआ अर्थात् जैन सज्जनोंके अतिरिक्त वैष्णव, शैव, सिक्ख, मुसल्मान और कसाब तक व्याख्यान में आते थे वहां अवसर देखकर आपने जीव हिसा के दोषों को व्याख्यान में प्रकट करके सुनाए।

जीव हिंसा के दोषों पर व्याख्यान।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराजने कथन किया कि जैन सूत्रों में अठारह प्रकार के पाप लिखे हैं जिनका फल संसार में महा दुःखदाई होता है अर्थात् नरकों के दुःख और पशु योनि के दुःख अर्थात् नाक छेदकर नकेल का डलना (१) पीठ पर बोझ का लदना (२) कंधों पर जूए का धरना (३) पैनीयों की मार का सहना (४) और कहीं कीचड़ व रेत में गड्ढों के फंस जाने पर पूंछ आदि का खिंचना (५) कठोर मार का सहना (६) थोड़े बलके होते हुए अधिक बोझ का लदना (७) भूखे प्यासे रहना (८) शीतोष्ण का

सहना और कभी कभी सर्वथा थक जाने (हार) जाने पर स्वामी का जंगलमें छोड़ जाना वहां उष्णकाल में दिन के तापका सहना और शीतकाल हो तो रात की सर्दी का सहना दिन में चील, कौए, गिद्ध, कुत्ते आदि का नोच नोच कर खाना और रात को गीदड़ आदि मांसाहारी जन्तुओं ने फाड़ फाड़ कर खाना, इस प्रकार तड़प तड़प कर मरना इत्यादि दुःख पशु योनि में भोगते हैं । अठारह पापों में सब से पहला पाप प्राणातिपात अर्थात् जीव घात है क्योंकि सर्व प्राणिओं को अपना जीवन प्यारा होता है और मृत्यु से सब को भय लगता है । यथा श्लोक—

अमेध्य मध्ये कीटस्य सुरेन्द्रस्य सुरालये ।
समाना जीविताऽकांक्षा सम मृत्यु भयं द्वयोः ॥

अर्थ—विष्टा में कीड़ा और स्वर्ग में इन्द्र दोनों को ही जीवन की इच्छा बराबर है और मरने का भय भी बराबर है तो फिर अपने समान औरों के प्राण क्यों नहीं समझे जाते । यदि अपने तनु में एक कांटा भी लगजाय तो उसकी पीड़ा से हाय का शब्द मुख से निकलता है और दूसरों की ग्रीवा पर छुरी चलाते भी हाय नहीं निकलती यह पत्थर चित्त वाले दुष्टों ही का काम है जो पराई पीड़ा को न जाने और

उन्हीं का नाम अनार्य्य व म्लेछ व कसाई रक्खा गया है फिर आपने यह भी कथन किया कि इस स्थान पर यह वर्णन कर देना भी उचित जान पड़ता है कि एक वार हम गुजरांवाले से वज़ीरावाद जारहे थे मार्ग में एक गांव के वाहर एक वृक्ष के नीचे कुछ समय के लिए ठहर गए उस वृक्षके नीचे भी कई लोग गाड़ी वान आदिक वैलों को छायामे ठहराए हुए वैठे थे उनमें से एक मनुष्य वैलों की चिचड़ियां उतार उतार कर आगमें डालता था उसको देखकर हम ने कहा कि, अरे भाई यह तू कैसा बुरा काम करता है, इन जीवों को आग में डालता है, उसने उत्तर दिया कि यह हमारे वैलों को चोंट चोंटकर खाती हैं, हमने कहा यह वैलों को तोड़ तोड़कर खाती हैं जानसे तो नहीं मारती हैं इसका वदला तो इतना ही है जो तोड़कर अलग कर रहा है, परन्तु यह अत्याचार क्यों किया जाता है जो इनको आग में डाला जाता है, क्यों भाई खून का वदला खून होता है कि चूंटने का, और यह चूंटना भी तो इन का दोष नहीं है क्योंकि जिसकी उत्पत्ति जिस स्थान में होती है वह खाना भी उसी स्थान से खाता है जैसे वच्चा माता का दूध पीता है जैसे गाओंके रहने

वाले गाओंसे ही फल फूलादि खाते हैं ऐसे ही जब इन की उत्पत्ति इन्हीं के शरीर में हुई है तो खाने को कहां जाएं इस लिए इन निरापराधी जीवों को मारना बड़ा पाप है और इसका फल भी बड़ा दुःखदाई होता है। उस समय एक सिक्ख वहां खड़ा हुआ इस उपदेश को सुन रहा था वह नेत्रों में आंसू भरकर ऐसा बोला कि अजी माई जी इन चिचाड़ियों का पाप आप क्या कहते हैं आप मेरा पाप सुनें कि मैं कैसा पापी हूं मैं झटका किया करता हूं एक बार मैंने एक बकरा पाला था वह मेरे साथ बहुत प्यार किया करता था जब मैं कहीं से आता तो मैं मैं ऐं ऐं करके मेरे साथ लाड़ करने लगता जब मैं कहीं जाता तो वह मेरे पीछे घास दाना न चरता उदास होकर खड़ा रहता और लौटआने पर प्यार भरी दृष्टि से देखकर जितलाता कि तुसी कहां गए थे, वह मुझको ही अपना प्राणाधार और हितैषी समझता था, जब वह बकरा मोटा ताज़ा होगया एक दिन हमारे त्यौहार था तो हमने महाप्रसाद करना था इसलिए उस बकरे का कान पकड़ कर मैं एक तरफ़ ले चला तो वह मेरे साथ पहले की तरह खुशी खुशी कूदता कूदता चल पड़ा परन्तु

जब उसने मेरा भाई पीछे से म्यान से तलवार निकालता देखा तो वह कांपता कांपता दौड़कर मेरे दोनों पाओं के बीच में पड़कर मेरे मुंह की तरफ़ ऊंची गर्दन करके मैं मैं करने लगा अर्थात् फ़रियाद करने लगा कि यह कौन आगया है जब मेरे भाई ने तलवार मुझे पकड़ाई तब मेरे हाथमें तलवार पकड़ी देखकर फिर तो वह भागा और दीवारों पर चढ़ने लगा और पीछे गिरने लगा जिसका भय के कारण मिंगणें और मूत्र बारम्बार निकलता था और कभी कुप्प के पीछे छिपता था अन्त में मेरे पाओं में आकर लेट गया और मैं मैं करता हुआ उठा और मेरी तरफ़ तिर्छी आंखों से देख कर जाने यूं जितलाने लगा कि आप तो मेरे हो और आप ही ने मुझ को पाला है और मैं केवल आप ही के भरोसे पर हूं मैंने क्या अपराध किया है जो मुझे मारने लगे हो ऐसे फ़रियाद जितलाने के पीछे उसने मेरी आंखों की ओर देखा तो घुटने ज़मीन पर लगा कर मेरे पाओ में अचेत होकर चारों टांगें पसारदीं परन्तु मैं विश्वास घाती निर्दयी ने उसको कान से पकड़कर खड़ा करके उस पर तलवार चलानी चाही; हाय जान प्यारी! हाय मौत का भय, वह प्राण

बचाने के कारण फिर दौड़ा पास एक छोटासा कूआं था उस में गिर गया, हम ने झट बाहर निकाला, तो वह दोनों पिछले पाओं मेरे पाओं पर धर और अगली गोडियां मेरे घुटनों पर धरकर लाड़ करने लगा तब मुझे भी दया तो आगई, पर हाय लोभ ! एक ने पाओं पकड़े एकने कान और मैंने ऐसी तलवार मारी कि उसका सिर कट कर अलग जापड़ा और एक घण्टे से अधिक देर तक तड़पता रहा उस समय मेरे मन में ख़याल आया कि यह काम सचमुच ही बहुत बुरा है पर खोटे प्रसङ्ग से फिर वहीं काम करने पड़ते हैं परन्तु अब आपकी अमृत वाणी को सुन कर मेरे मन पर बड़ा असर पड़ा है, मैंने यह पक्का विचार कर लिया है कि अब से मैं यह काम कभी नहीं करूंगा। तब मैंने कहा कि शपथ उठाओ अर्थात् कसम खाओ कि आगे को जीव घात नहीं करूंगा, तब वह सिक्ख हाथ जोड़कर कहने लगा कि अजी महाराज शपथ खाने से क्या होता है हम लोग नित शपथ खाया करते हैं और फिर वही काम करते हैं, जब तक मन पर चोट न लगे तब तक शपथ क्या कर सकती है, बस मैं मन से कह चुका हूं कि अब मैं यह अनार्य्य काम न करूंगा और आप

की इस शिक्षा को औरों को भी सुनाता रहूंगा अर्थात् औरों को भी ऐसा बुरा काम करने से वर्जता रहूंगा। इस समय और भी बहुत से लोग आते जाते खड़े होकर सुन रहे थे, उन में से भी कईएक के मन पर दया का भाव प्रकट हुआ और कईयों ने हाथ जोड़कर इस कर्म को त्याग दिया, अस्तु सुनने का यही लाभ है कि अपने जन्मको निष्फल न गंवाओ वरं दया धर्म को अंगीकार करके सफल करो जिससे तुम्हारे आत्मा को सदा सुख हो। पस आपके इस व्याख्यान को सुनकर बहुत लोगों ने जीव घात और मांस भक्षण त्याग दिया। माछूवाड़ा के भाईयोंने विनती की कि यदि आप इस वार चतुर्मासे की कृपा करें तो बहुत लोग सुधर जाएंगे और कसावों ने भी प्रार्थना की, कि जो आप यहां चतुर्मासा करेंगे तो हम कसाब खाना ही उठा देंगे परन्तु आप लुधियाना वाले भाईयों की विनती स्वीकार कर चुकी थीं और माछूवाड़ा में श्री १०८ श्रीस्वामी गेंडेरायजी महाराज चतुर्मासा मान चुके थे इसलिये सं० १९६८ वि० का चतुर्मासा आपका लुधियाना में हुआ।

——o——

सँ० १९८८ वि० का चातुर्मास्य लुधियाने में दूसरी वार ।

यहां आपके उपदेशों से धर्म ध्यान का बड़ा उद्योत हुआ और आपने यह भी उपदेश दिया कि आर्य्य लोगों को हड्डी और चमड़े की वस्तुएं न बर्तनी चाहिएं क्योंकि उनकी जितनी खरीद अधिक होती है, उतना ही पशुओं का घात अधिक होता है, अर्थात् चमड़े की टोपी, बटुआ, बैग, पिटारा आदिक और हड्डी के आभूषण चूड़ा, छल्ले, बटन, और चाकू आदि के दस्ते, छड़ी, छतरियों के मुठे आदि न बर्तो। इस पर बहुत से लोगों ने इन उपरोक्त वस्तुओं का त्याग किया और किसी किसी ने चमड़े की जूती तक का भी त्याग कर दिया, इत्यादि और बाइयों को पतले (बारीक) कपड़े लेकर बाहर न निकलना चाहिये ऐसा उपदेश भी किया। इस अवसर पर दो वैरागिन बाईयां रावलपिण्डी की जो लाला जीवाशाहजी भावड़ा की पौत्र वधु लक्ष्मी जी और लाला नानकुशाह भावड़ा की पुत्र वधु विशन देवीजी जिन्होंने लगभग दो वर्ष से अपने घर का सर्वारम्भ अर्थात् काम काज छोड़ा हुआ था, अर्थात् पलंग पर सोना, रज़ाई व तुलाई आदि

का ओढ़ना आभूषण आदि का पहनना हरी सब्जी फल आदि रस का खाना इत्यादि यह दोनों अपने सम्बन्धियों से आज्ञा लेकर लुधियाने आपके चरणों में दीक्षा लेने को उपस्थित हुई इनको श्री १००८ श्री महासतीजी महाराज लगभग चार मास संयम की रीति सिखलाती पढ़ाती रही फिर लुधियानाके भाईयोने दोनों बाईओं की दीक्षाका मुहूर्त मृगशर वदि ६ सं० १९६८ का नियत किया और पञ्जाव के कई नगरोंमें इस शुभ महोत्सव की सूचना देदी जिससे नियत तिथि पर बहुत भाई व बाईयें लुधियानेमें एकत्र होगए, और लुध्यानेके श्रावकों ने आए हुए प्राहुणों की तन, मन, धन से खान पान स्थानादिक की सेवा की और प्रोसैशन की शोभा दर्शनीय थी। भजन मण्डलियों का नगर कीर्तन था और साथ साथ उपदेश भी होता था, और वैरागिन बाईओं के त्याग वैराग्य की प्रशंसा होती थी। रियासत फ़रीदकोट वाली सरायमें इन बाईओं को दीक्षाका पाठ पढ़ाया गया। जनता की भीड़ इतनी थी कि बहुत से स्त्री पुरुष सरायके बाहरही रह गए। अस्तु दीक्षा महोत्सव के पश्चात् आप रायकोट, मालेर कोटला, सनाम, संगरूर में

धर्म उपदेश करती हुई रियासत पटियाला पधारीं।

वहां आपके व्याख्यान अनेक मत मतान्तरों के लोग वड़ी रुची से सुनते थे और उन्हीं दिनों में एक वैरागिन बाई जो लाला मिट्ठनलाल कैथल ज़िला करनाल की भगिनी पार्वती अपर नाम प्यारा देवी जी दीक्षा लेने के भाव से पटियाला में आई जिनकी दीक्षा की तारीख़ २३ चैत्र सं० १९६८ वि० नियत की गई पञ्जाब के बहुत से नगरों के भाईओं को आमन्त्रित किया गया, वहुत लोग इस अवसर पर आए इस दीक्षा महोत्सव का विस्तृत वर्णन एक पृथक् पुस्तक में किया गया है जिसका नाम "व्याख्यान श्रीपार्वतीज़ी महाराज" है जो लाला जमनादास श्रावक पटियाला निवासी ने उर्दू में लिखा है।

पटियाले वाले भाईयों ने श्रीमहासती पार्वती जी महाराज की सेवा में प्रार्थना की, कि अबके आप यहां चतुर्मासा की कृपा करें, सुतरां आपने उनकी बिनती पर सं०१९६९का चतुर्मासा पटियाला का स्वीकार किया।

सं १९६९का चातुर्मास्य पटियाला में

पटियाले में स्वमत और अन्यमतों के लोग ओसवाल अग्रवाल क्षत्रिय ब्राह्मण सिक्ख आदिक

आपके व्याख्यानों से धर्म का लाभ उठाते रहे और श्रावक श्राविकाओंने तपस्या,दया,पोसा,सामायिक आदिक धर्ममें वहुत उद्यम किया और जो लोग बाहर से श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज के दर्शनों को आए उनका पटियाला निवासियोंने आदर सत्कार वहुत किया। इस चतुर्मासे में लाला जमनादास पटियाला निवासी ने दो तीन पुस्तकें उर्दू भाषा मे लिखीं जो व्याख्यानमें धार्मिक पुरुषोंका वर्णन श्री महासतीजी महाराज करती थीं उसको वे लेखनी वद्ध करते रहते थे जिनका नाम "वैराग्य प्रकाश जैन कथा रत्नमाला" आदिक है। चतुर्मासेके समाप्त होने पर आप नाभा, मालेर कोटला, लुध्याना जालंधर विचरती हुई अमृतसर पधारीं, इस समय अमृतसरमें श्री १००८ श्रीपूज सोहनलालजी महाराजने अपने शिष्य श्रीस्वामी काशीरामजी महाराजको पूज पद देने का दिन श्रीमहावीर निर्वाण सं० २४३९ फाल्गुण शुदि ६ प्रातःकाल साढ़े नौ वजे नियत किया था,इसलिये चारों तीर्थोंका वहां इकट्ठ था। आप वहां से विहार करके जंडियाला होती हुई कपूरथला पधारीं ॥

आपका व्याख्यान कपूरथला में ।

एक दिन मध्यान्ह के पश्चात् दो बजे माईके ठाकुरद्वारे में खत्री ब्राह्मणों की प्रार्थना से श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज ने व्याख्यान दिया । यहां पर लगभग तीन सौ भाई वा बाई उपस्थित थीं, जिनमें लाला नत्थूमलजी लाला बनारसी दासजी जो जैन श्रावक हैं उनके मित्र दीवान बहादुर लाला भगवानदासजी रिटायर्ड चीफ़ सैक्रेटरी रियासत कपूरथला भी व्याख्यान में उपस्थित हुए । श्री महासतीजी महाराजने प्रथम मंगलाचरण करके कहा कि, हे आर्य्य देशमें उत्पन्न हुए हुए स्त्री व पुरुषो ! तुम्हारे पुण्योदय से तुम्हारा आर्य्य देश और आर्य्य कुलमें जन्म हुआ है, जहां पर धर्म के पालने वाले और बताने वाले साधु साध्वी महात्माओं का दर्शन होता है और उनके मुख से सत्योपदेश अर्थात् धर्मका श्रवण होता है और दान का देना और भजन का करना आदि भी बन सकता है तो फिर तुमको चाहिए कि प्रातःकाल उठते ही नित नियम सामायिक पाठ आदि अवश्य करें और रसोई के समय सुपात्र को यथा अवसर यथा रीति दान देवें और धर्म उपकार अर्थात् जीव रक्षा (गौ रक्षा)

आदि तथा अनाथों और अस्सहाय विधवाओं के सत्य धर्म रखने आदि में सहायता देवें, क्योंकि यदि अनार्य्य कुलों में जन्म लेते तो यह उपर्य्युक्त धर्म कार्य्य कैसे बन सकते। इस लिए पुरुषों को चाहिए कि ऐसे २ उत्तम कुलों में श्रेष्ठ माताओं की कुक्षि से जन्म लेकर माताओं की निन्दनीय सन्तान न बनें, अर्थात् लोग तुम्हें यह कहने का अवसर न पाएं कि यह कपूत है, यह झूठा है, यह चोर, जूआरी, निर्लज्ज, शराबी, कबाबी, शिकारी है, इत्यादि क्या तुम को लज्जा नहीं आती कि हम कुलीन होकर ऐसे २ कुत्सित कर्मों के करने वाले कहलाएं, और स्त्रियों को भी ऐसे नाम न धराने चाहिए कि यह कलहनी है, कुपत्ती है अर्थात् माता पिता सास सुसर का साम्हना करने वाली है, निर्लज्जा है, कुलटा और व्यभिचारिणी है, झूठी है, कपटिन, विद्या हीन मूर्खा है, इत्यादि हे स्त्रियो! क्या तुम को यह नाम धराते लाज नहीं आती कि हम उत्तम कुलों में जन्म लेकर और सत्कुल में विवाह कराके ऐसे ऐसे बुरे नाम अपने ऊपर लेती हैं। हे पुरुषो! हे स्त्रियो!! तुमको ऐसे ऐसे नाम धराने चाहिएं कि यह पुरुष बड़ा सुपात्र है, योग्य है, दानी है, धर्मात्मा है, सत्य-

वादी है, शूरबीर है, लज्जालु है, सुशील है, देव गुरु धर्म का भक्त है, माता पिता की सेवा करने वाला है, परोपकारी है, इत्यादि। किसी कविने भी कहा है:—

क्या तो जननी भक्तजन, क्या दाता क्या सूर।
नहीं तो बंध्या ही भली, काहे गंवावे नूर॥

स्त्रियों को भी ऐसे ही नाम धराने चाहिएं, कि यह कुलवती है, लज्जावती है, सत्यवादिनी है, सुशीला है, पतिव्रता है, दान की दातृ है, सास सुसरादि बड़ों की भक्ति करने वाली है, बुद्धिमती है, अतिथियों का सत्कार करने वाली है, कुल की शोभा बढ़ाने वाली है इत्यादि। इसके पश्चात् सात कुव्यसनों का स्वरूप दिखलाया अर्थात् (१) जूआ खेलना। (२) मांस भक्षण। (३) मद पान। (४) वेश्या गमन। (५) आखेट (शिकार) करना। (६) चोरी करना। (७) परस्त्री गमन तथा झूठी साक्षी देना, पराई धरोहर को लेकर मुकर जाना। राज्य करमें चोरी करना, कम तोलना, कम मापना, इत्यादि यह सब कर्म धर्म के विरुद्ध हैं, और लोक परलोक में दुःखदाई हैं, इस लिए प्रत्येक नर नारिओं को त्यागनें चाहिएं। इस व्याख्यान को सुनकर श्रोताओं के मन पर बहुत प्रभाव पड़ा और बहुत

से नर नारियों ने कई प्रकार के त्याग भी किये और दीवान बहादुर लाला भगवानदासजी के मन पर तो धर्म का बड़ा ही निश्चय होगया और अपनी धर्मपत्नी और कुटुम्बके लोगों को श्रीमहासतीजी महाराजके चरणों में धर्मोपदेश सुनने के लिये भेजते रहे और जैनसूत्रों और ग्रन्थों के पढ़नेमें और सुनने में बहुत ही प्रेम होगया। इस प्रकार कुछ दिन धर्मोपकार करके आपने जालन्धर को विहार कर दिया।

जालन्धर नगरमें दीक्षा महोत्सव।

श्रीमहासती पार्वतीजी महाराज जालन्धर नगरमें पधारीं, आपके साथ श्रीमहासती राजमती जी व श्रीमथुरोजी व श्रीचन्दाजी व अन्य आर्य्या १६ थीं। आपने धर्मका बहुत प्रचार किया। इस अवसर पर दो वैरागिन बाईयां, जम्बु रियासत से लाला गुरुमुख शाह की पुत्र वधु विधवा जमना देवीजी और लाला गोबिन्द शाह की पुत्र वधु विधवा धनदेवीजी दीक्षाके लिए जालन्धर नगर में पधारीं, जो उच्च वंश की और सहस्रों रुपये त्याग कर वैराग्य को प्राप्त हुई थीं, अर्थात् बाई धनदेवी जी ने अनुमान ७५ तोला सोना अपनी ननंद को दिया और कई सहस्र रुपया अपने जेठ व देवर

तथा ननंद के पुत्र और पुत्री के विवाह वास्ते दिया और चार सौ रुपया जम्बु स्थानक, दो सौ रुपया गौशाला जम्बु, चार सौ रुपया अमरसिंह हाई स्कूल के लिए और एक सहस्र रुपया शास्त्रों के लिये दान किया और बाई जमना देवीजी ने अपने आभूषण अपनी सास को दे दिये और एक सौ रुपया अमरसिंह हाई स्कूल को देने के लिये अपनी सासको कह दिया। जालन्धर के भाईओंने बड़े हर्षसे ३ जेठ सं० १९७० वि० दीक्षा उत्सव की तारीख़ नियत करके पञ्जाब के बहुत से नगरों में श्रावकों को पत्र भेज दिये कि आप लोग आकर इस उत्सव की शोभा को बढ़ावें, सुतरां बहुतसे नगरोंके श्रावक व श्राविका इस शुभ अवसर पर पधारे। प्रोसैशन लगभग ७ बजे ख़ज़ानाचिओं के मकान बाज़ार नौहारिओंसे रवाना हुआ, दोनों वैरागिन बाईआं पीनसोंमें बिठलाई गईं यह दोनों देविआं अपने पाससे दीन दुःखिओं में रुपये बांटती जाती थीं और बहुतसे नगरोंकी भजन मंडलिआं बाज़ारों में जैन धर्मका गौरव दिखला रही थीं, इस दिन नगरमें बड़ा मेला था बहुत शीघ्रता करते हुए ग्यारह बजेके लगभग प्रोसैशन कन्या महाविद्यालय के मन्दिर में पहुंचा।

वहां पर श्री १००८ श्री महासती पार्वती जी महाराज १६ आर्य्याओं सहित विराज रही थीं सवारीके साथ इतनी भीड़ थी कि मकान के अन्दर कई सहस्र मनुष्यों के चले जाने पर भी वहुत से लोग स्थानाभाव से वाहर ही रह गए । इस समय इन दोनों वाइओंने धर्मार्थ रुपया वांटा जिसका व्योरा निम्न लिखित हैः—

५००) रु० दीक्षा-महोत्सवके खर्चकेलिए, ५०) रु० जैनसभा जालन्धर, २५०) रु० जैनसभा छावनी १००) रु० गौशाला पिञ्जरापोल जालन्धर नगर ५०) रु० गौशाला टांडा, ५०) जैन ट्रेनिंग कालेज रतलाम, ५०) रु० जीव फण्ड भीनासर, २५) जैन सभा अमृतसर, ५०) रु० कन्यामहाविद्यालय जालन्धर नगर, ७५) लाईब्रेरी जालन्धर नगर, १००) रु० लाला फत्तुराम को पुस्तकें छपवाने के लिये लुधियाने भेज दिया । धन्य है इन दाता वाइओं को फिर दोनों देविओंने गृहस्थाश्रमका वेप अर्थात स्वर्ण-भूपण और रेशमी वस्त्र उतार दिये और सिरके केश नाईनसे कतरवाकर थालमें रख दिये और इस नाईनको रेशमी वस्त्र कुछ आभूपण और कुछ रुपये पारितोपिक प्रदान किया और स्वयं गुलाब

जलसे स्नान करके फ़कीरी वेष धारण किया अर्थात् श्वेत साढ़ी, चादर, मुखवस्त्रिका, ऊनका ओघा (रजोहरण) और काष्ठके पात्र इत्यादि और फिर हाथ जोड़कर श्रीमहासतीजी महाराजके चरणोंमें उपस्थित होकर प्रार्थना की, कि महाराज हमें दीक्षाका पाठ पढ़ावें इस समयकी इस सच्चे वैराग्यकी जीवित जागृत मूर्तिने एक बार तो पत्थर दिलोंको भी हिला दिया कि कहां तो गृहस्थका वेष और कहां फ़कीरी वेष और कठिन वृत्तिका धारण करना, गृहस्थीके लिए एक पैसेका छोड़ना कठिन है परन्तु इन देवियोंने सहस्रों रुपये एक बार ही छोड़ दिये लोग कहते थे कि जैन फ़कीरी क्या है मानो त्याग व वैराग्यका सच्चा चित्र है। श्रीमहासतीजी महाराजने इन दोनों देविओंको पांच महाव्रतका पाठ पढ़ा दिया अर्थात् आजीवन (१) हिंसाका त्याग दया का पालन करना (२) झूठका त्याग सत्यका धारन करना (३) चोरीका त्याग, दान दतका ग्रहण करना, (४) मैथुनका त्याग, ब्रह्मचर्य्यमें रहना, (५) परिग्रह (धन) का त्याग, निर्ममत्व अर्थात् सन्तोषका ग्रहण करना और रात्रि-भोजनका त्याग इत्यादि। पाठ पढ़ानेके पश्चात् आवश्यक शिक्षा देकर श्री १००८ श्री

महासती श्रीपार्वतीजी महाराज समग्र चेलिओंके सहित मकानकी ओर पधारीं, जिस बाज़ारसे वैरागिन बाईआं बड़े समारोहके साथ गई थी उसी बाजारसे जब लोगोंने उन्हे फ़कीरी वेषमें आते देखा तो लोगोंके नेत्रोंसे धर्म प्रेमका नीर वहने लगा कि देखो यह जैनकी फ़कीरी त्याग वैराग्यका कैसा सच्चा और ज्वलित उदाहरण है। बाई जमनादेवी जी व बाई धनदेवीजीकी ओरसे जालन्धर नगर मे एक लाईब्रेरी स्थापन की गई, जिसका नाम "जैनाचार्य्या श्रीमहासती पार्वतीजी जैन-लाईब्रेरी जालन्धर नगर" रक्खा गया। इस प्रकार दीक्षा-महोत्सव बड़े आनन्द और उत्साहसे पूर्ण हुआ, फिर श्रावक श्राविकाओंने हाथ जोड़कर विनय-पूर्वक श्री १००८ श्री जैनाचार्य्या श्रीमती पार्वतीजी महाराजके चर्णोंमे प्रार्थनाकी कि श्रीमहीसतीजी ? इस वर्षका चतुर्मासा इसी क्षेत्रका स्वीकार करनेकी कृपा करो, आप करुणाके सागर हैं, इसलिए सं० १९७० का चतुर्मासा जालन्धर नगरका स्वीकार किया।

सं० १९७० का चातुर्मास्य जालन्धर नगरमें दूसरी वार ।

इस चतुर्मासामें धर्म ध्यानका उद्यम अच्छा होता रहा और इसी चातुर्मास्यमें श्रीमहासती जैनाचार्य्या (प्रवर्तिनी) पार्वतीजी महाराज का जीवनचरित्र भी सं० १९७० वि० तकका सम्पूर्ण किया ।

लेखक जैनधर्म्मानुयायी देश के हितैषी मान्यवर लाला रलाराम साहिब आनरेरी मैजिस्ट्रेट जालन्धरका सुपुत्र—

श्रीसङ्घसेवक पन्नालाल जैनी ।

जैनाचार्य्या श्री १००८ श्री पार्वतीजी
महाराज के जीवन चरित्रका
द्वितीय भाग समाप्तम्

अशुद्धि शुद्धि पत्रम् ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
३	१	उनका	इनको
३	१४	मजीजी	सती जी
६	३	वीस	वीम
७	६	आये	आय
८	१३	लिय	लिये
११	२१	विरादरी	वरादरी
१२	१४	प्रोशैसन	प्रोशैसन नगरकीर्तन
१७	५	और एक	और दूसरे
२१	५	आवेष	आवेश
२६	६	आये	आए
३३	१६	अनाशन	अनशन
३४	२	तपश्चर	तपश्चिर
३४	२	क्षीघ्र	चीघ्र
४०	३	करगोन-	करगाने
४१	१७	वैश्या	वेश्या
४६	७	अरू	करूं
४७	६	एकदाचतु मांसे के	चतुर्मासा
४९ ऊपरकी म० १६५१ कि लेखामें का चातुर्मा	१	सा सियालकोट में तीसरी बार।	आत्माराम जी सम्वेगी से वार्तालाप
५१	६	और श्रावक	श्रावक
५१	६	और श्री	और चेत शुदी ९ म स १६५२ वि० को थी
५१	१३	सूत्रों का	सूत्रों के
५३	१७	विछेक के	विछेदक के
५४	५	ने लुदि	लुधि
५५	१	श्रीमत	श्रीमान्
५६	१	घ आदि	आदि
५७ ऊपरकी छपरोलीमें लेखामें दुसरी बार	१		छपरोली में
५७	१६	कौं की	कौं का
६१	१०	अपने	आपने
६१	१६	पृथग्	पृथक्
६२	२१	फरदी	करदी
६३	२	उस	उन
६७	२१	अर्थ है	अर्थ हैं
६८	२	वनु	धनु
६८	२	मा।	मग्रा
६८	२२	रची	रचा
७७	८	नगरों	देशों
७७	१४	चरणों	चरण
७८	१५	ग्रा	ग्रा
८६	१५	धर्म्म	धम्म
८८	६	की	को
८८	६	आती	आती

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
८८	१६	(विवट)	(केवट)
९२	६	ग	फ
९३	५	लेर्नेका	लेने का
९५	८	कुसार	कुमार
१०२	१	समाज	समाजी
१०२	२	मिलोइ	मिलाई
१०४	६	धर्म	धर्मः
१०६	१५	ज्यों	ज्यो
११०	४	राज	राजा
११७	४	साहब	साहिब
११८	१८	धार	द्वार
१२१	२०	व्यसनों	व्यसनों
१२५	८	धर्मने	धर्म के
१२६	६	मैंने मिथ्या	मैंने अच्छी तरह देख लिया है इसका नाम मिथ्या
१२६	१०	यथार्थमें रक्खा	यथार्थ रक्खा
१२६	११	है। इसका मन अच्छी तरह देख लिया है	है। यह प्रमाण करताहूं।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि
१२७	१	स्रियाल	स्गाल
१२९	१	उसके	ईश्वर को
१२९	१	सेमें	जैसे ईश्वर में
१२९	१	सिद्ध	सिद्ध होते हैं ऐसा प्रकट
१२९	२	किये गये हैं	किया गया है
१३१	१	परिदंचामे	परिपूर्ण में
१३५	१२	वाह्य अ	बाह्य उपाय अ
१३९	११	तथा	यथा
१३९	११	रीति की	रीति से की
१३६	१५	परनाम	परिणाम
१४१	१८	देशों में	देशों से
१४२	१	जिसका	जिनका
१४२	१६	जायेगी	जायगी
१४२	१८	कर	कार
१४३	१०	की	के
१४५	१५	की	किया
१५०	११	कैवल	केवल
१५४	६	सथ	साथ
१५४	१०	छेक	च्छेदक
१५८	१५	धम	धर्म
१७१	११	शारण	शरण इत्यादि

इन से अतिरिक्त इस पुस्तक में किसी प्रकार की त्रुटियें यदि पाठक महाशयोंकी दृष्टि में आवें क्योंकि कई कथन ग्रंथों के देखने से कई सुनने से पुस्तकों में लिखे जाते हैं इस लिये अथवा कई अशुद्धियें छपने में भी रह जाती हैं। तो हितेच्छु बन कर सूचना देने की कृपा करेंगे तो हम उनके आभारी होंगे और द्वितीयावृत्ति में शुद्ध कराने के अधिकारी होंगे॥ ॥ शुभं भूयात्॥